

ISSN 2350-1065 MUKTANCHAL

वर्ष : 09 अंक : 34 अप्रैल-जून 2022

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्ताचल

पीयर रिव्यूड त्रैमासिक

मूल्य : 100 रुपये



विद्यार्थी मंच

उस पार से ...

गोरख पाण्डेय

(जन्म 1945 - 29 जनवरी 1989)



बीसवीं सदी

यह सदी

बीसवीं सदी

यह खून और अंगारों की

यह समझौतों की और कपट व्यापारों की

यह कठिन स्वार्थ के जटिल तर्क जालों से बिल्कुल लदी

बीसवीं सदी।

यह मेहनतकशों गुलामों की

यह अब तक के गुमनामों की

यह प्रबल मुक्ति संघर्षों की

यह जीवन के उत्कर्षों की

यह समय गर्भ से फूटी आजादी की अविरल नदी

बीसवीं सदी।

गोरख पाण्डेय विशेषांक

रचनाकाल - 1987

शोध, समीक्षण, सृजन एवं संचार का

मुक्तांचल

पीयर रिव्यूड त्रैमासिक

वर्ष-9, अंक- 34, अप्रैल-जून 2022

संपादक : डॉ. मीरा सिन्हा

प्रकाशक : विद्यार्थी मंच

प्रबंध संपादक : सुशील कुमार पांडेय

कला संपादक : शुभागता श्रीवास्तव

प्रसार प्रबंधक : रमेश कुमार शर्मा

आकल्पक : लखनपति झा

प्रूफ संशोधक : परमजीत पंडित

परामर्श एवं विशेष सहयोग :

प्रो. दामोदर मिश्र : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, विद्यासागर विश्वविद्यालय

डॉ. कृष्ण कुमार : अध्यक्ष, गीतांजलि बहुभाषिक साहित्यिक समुदाय, (बर्मिंघम, यू.के.)

डॉ. पंकज साहा : खड़गपुर कॉलेज, पश्चिम बंगाल

डॉ. अरुण कुमार : प्राक्तन प्रोफेसर, राँची विश्वविद्यालय

डॉ. रणजीत सिन्हा : मिदनापुर कॉलेज (ऑटोनोमस), मिदनापुर

डॉ. निशांत : काजी नजरूल विश्वविद्यालय, आसनसोल

डॉ. रामप्रवेश रजक : हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय

व्यवस्थापन एवं प्रबंधन :

विनोद यादव, विनीता लाल, पार्वती शॉ एवं बलराम साव (98318-89154)

संपर्क एवं प्रसार :

चाँदनी सिन्हा (बर्मिंघम, यू.के.) : +447411412229

कुणाल किशोर (के.वि. हिमाचल प्रदेश): 7998837003

लेखकों से अनुरोध किया जाता है कि मुक्तांचल में प्रकाशन हेतु सामग्री यूनिकोड वर्ड (Unicode Word) या (Kurtidev010) में भेजें।

पत्रिका में व्यक्त विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं 'मुक्तांचल' से संबंधित सारे विवादों के लिए न्याय-क्षेत्र कलकत्ता उच्च न्यायालय होगा।

पीयर रिव्यूड टीम :

डॉ. धूपनाथ प्रसाद : महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ. विश्वजीत भद्र : प्राध्यापक, नेताजी नगर कॉलेज (कलकत्ता विश्वविद्यालय)

प्रो. मोहम्मद फ़रियाद : प्राक्तन अध्यक्ष, जनसंचार विभाग, मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

डॉ. सुनील कुमार 'सुमन' : प्रभारी, क्षेत्रीय केंद्र कोलकाता, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र

प्रो. मंजु रानी सिंह : विश्वभारती, शांतिनिकेतन

प्रो. अरुण होता : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, स्टेट यूनिवर्सिटी, बारासात

प्रो. मनीषा झा : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, उत्तर-बंग विश्वविद्यालय

डॉ. सत्या उपाध्याय : प्राचार्य, कलकत्ता गर्ल्स कॉलेज, कोलकाता

डॉ. अंजनी कुमार झा : एसोसिएट प्रोफेसर, मीडिया स्टडीज, महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतीहारी (बिहार)

डॉ. शुभ्रा उपाध्याय : अध्यक्ष, हिंदी विभाग, खुदीराम बोस सेंट्रल कॉलेज, कोलकाता

मुक्तांचल: A/c- 50200014076551, HDFC BANK BURRABAZAR, KOLKATA- 700007, IFSC CODE- HDFC0000219

संपादकीय कार्यालय :

आधुनिक अपार्टमेंट, 6/2/1 आशुतोष मुखर्जी लेन सलाकिया, हावड़ा-711106, पश्चिम बंगाल

संपर्क - 033-26751686, 9831497320, 9681105070

ई-मेल - muktanchalpatrika@gmail.com
sinhameera48@gmail.com

मुद्रक : शिक्षण, 50, सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता-700009

पत्रिका का मूल्य : एक अंक - 100 रुपये

सदस्यता शुल्क : वार्षिक- 500 रुपये, आजीवन-2500 रुपये

संस्थाओं के लिए : वार्षिक-550 रुपये, आजीवन-3000रु.

डाकखर्च (प्रत्येक अंक के लिए) अतिरिक्त 30 रुपये।

मुक्तांचल अप्रैल-जून 2022

अवस्थिति

शो ध	6	संस्तुति आलेख	
	8	सुभाषचन्द्र गुप्त	बॉब डिलन: प्रतिरोध की संस्कृति का गायक
	16	पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'	अशोक वाजपेयी
स मी	25	शशिभूषण द्विवेदी	लीलाधर जगूड़ी : अकविता के तांडव से सभ्यता के पेंचों तक भाया मनुष्य-मन
	35	माधव नागदा	युवा मन को संस्कारित करने में सक्षम हैं लघुकथाएँ (संदर्भ पाठ्यक्रम में लघुकथाएँ)
	40	रणजीत कुमार सिन्हा विमर्श	शिवदान सिंह चौहान और हिंदी आलोचना
क्ष ण	46	श्रीनारायण पाण्डेय संस्मृति	प्रेमचन्द की लेखकीय प्रतिबद्धता
	53	कौशल किशोर शोधार्थी की कलम से	रामनिहाल गुंजन: रचना विवेक के अप्रतिम उदाहरण
	59	नगीना लाल दास यात्रा-वृत्तांत	प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों का स्वरूप एवं महत्व
सृ ज न	65	विनोद साव कहानी	होसपेट, हमपी और तुंगभद्रा
	72	प्रवीण कुमार सिंह	आत्मा की शांति
	80	संजय कुमार सिंह समय की शिला पर	पुनर्जीवन
सं चा र	86	निशांत कविता	जो छपा, वही मेरा है
	89	मनीषा झा	मनीषा झा की दो कविताएँ
	90	शिवदयाल	शिवदयाल की तीन कविताएँ
	91	लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव	लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव की दो कविताएँ
	92	राजकुमार जैन	राजकुमार जैन 'राजन' की पाँच कविताएँ

शो	सरगम के सुर साधे	
	94 मदन कश्यप	कविता ही प्रतिपक्ष है
ध	पुस्तकायन	
	98 संजय देसाई	भिन्न परिवेश के सचाइयों की दास्तान : अंतिम साक्ष्य
स	103 प्रियंका शाह	मधुपुर आबाद रहे
	भाषांतर	
मी	105 डॉ. अमूल्य रत्न महांति	देश (मूल ओड़िआ : डॉ. ममतामयी चौधुरी)
	संचार	
क्ष	107 अशोक कुमार मीणा	न्यू मीडिया : अवसर और चुनौतियाँ
	111 तेजस पूनिया	क्षेत्रीय सिनेमा की उलझनों को सुलझाती 'ग्रुप-डी सीजन 2'
ण	साक्षात्कार	
	113 प्रदीप कुमार	कविता समाज को बदलने का एक औजार है : जितेन्द्र श्रीवास्तव
सृ	120 गतिविधियाँ	विश्व के सर्वश्रेष्ठ कथाकार है संजीव : नरेश सक्सेना।
		कविता पर केंद्रित कार्यक्रम 'एक साँझ कविता की - 8' संपन्न।
ज		
न		
सं		
चा		
र		

संस्तुति

प्रस्तुत अंक में कविता पर विशेष रूप से चर्चा हुई है। जरूरत है कविता पर जमकर बहस चलाने की और उसके लिए 'मुक्तांचल' एक जुझारु मंच हो सकता है, जहाँ पर कविता-संवाद की गति ले सके। कविता साहित्य की आदिम विधा है। अविरल तथा अजस्र स्रोतस्विनी, भावोच्छलन की असीम क्षमता से सम्पन्न कविता आज कहीं रुग्ण होकर कमजोर हो चली है जैसे उसका दम घुट रहा हो। आज का सांस्कृतिक परिवेश अनेक किसिम के दूषणों से ग्रस्त है। विद्रुप और विभेद की धूल गर्द से सनी रचनाशीलता राह ढूँढ़ रही है और पंक में फँसी कविता पनाह चाहती है क्योंकि, परिस्थितियों की झपट ने उसे बेचैन कर दिया है।

रचनात्मकता जब विचारों का परिधान धारण करती है तो उसके सामने उसका 'पक्ष' खड़ा हो जाता है जिसका अतिक्रमण वह नहीं कर सकती, अपना 'पक्ष' या अपना 'जस्टीफिकेशन' छुपाना मौत की सजा झेलने जैसा हो सकता है जिसमें जनतांत्रिकता का कहीं लेश भी नहीं होता जिससे थोड़ी ताजी हवा मिल सके; अंधेरी गुफा की यात्रा में रत रचनाशीलता असमंजस या 'कनफ्यूजन' को जन्म देती है।

आज का सांस्कृतिक प्रदूषण से भरा परिवेश विद्रोह की जगह विभेद की सृष्टि में रत है। वस्तुतः, विद्रोह की भूमिका जहाँ अस्वीकार से शुरू होकर बदलाव तक खिंचती है और अन्ततः इंकलाब लाकर दम लेती है वहीं विभेद विखण्डन की तरफ ले जाकर लोक मानस में विष वपन करता है। विभेद का आधार जड़ता एवं कूपमण्डुकता है अतः नकारात्मक है। 21वीं सदी का लोकमानस कहीं न कहीं संकीर्णता एवं कट्टरता की शिकार होकर विभेद की भावना से ग्रस्त है। विभेद ने इन्सानियत की इमारत में गहरी दरारें डाल दी हैं। सोच और समझ के साथ-साथ अपना-अपना पक्ष तैयार होता है और उसे व्यक्त करने की आजादी लोकतंत्र की आधारशिला बनाती है। परन्तु आज संसार के पटल पर से जन के तंत्र का अपहरण हो रहा है। मूलतः मानव मूल्य में टूट-फूट और विखराव जारी है।

कविता एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो भावोच्छलन की कतार में सबसे आगे खड़ी मिलती है और किसी भी सोच या समझ के पक्ष में पूरी ईमानदारी से अपने को झोंकती है लेकिन, आज के समय का दृश्य पटल पर फिर वही कुहेलिका राह रोके खड़ी हो जाती है - यक्ष प्रश्न अपने को दुहराता है कि क्या कोई अपनी सोच और समझ की सचाई को या यों कहें कि अपने पक्ष को पूरी शिद्दत के साथ व्यक्त कर सकता है? यहीं-कहीं.... रोक लिये जाते हैं रचनाकार... कलाकार... विवेकपूर्ण अस्वीकार के सामने खड़ा मिलता है, 'बेरिकेड' और मुकम्मल नहीं हो पाती वो बातें जिन पर चढ़कर रचनाशीलता परवान लेती है। असमंजस में भटकती रह जाती है कविता और वह वह नहीं रहती कोई दूसरी ही जाती है।

अस्तु, मुक्तांचल के अगले अंकों में कविता पर संवाद जारी रहेगा और उम्मीद है इस पहल पर कवि, कृति और कविता पर ढेर सारी बातें खुलकर सामने आयेंगी।



संपादक

मुक्तांचल अप्रैल-जून 2022

6

बॉब डिलन: प्रतिरोध की संस्कृति का गायक

सुभाषचन्द्र गुप्त

सन 2016 में जब बॉब डिलन का नाम नोबेल सम्मान के लिए घोषित किया गया तो दुनिया के पूरे साहित्य-जगत में गहरी हैरानी की लहर फैल गई थी। यह हैरानी स्वाभाविक भी थी क्योंकि उपन्यास, कहानी, कविता वगैरह डिलन के सृजनकर्म के माध्यम कभी नहीं रहे। यही कारण रहा कि 'स्टॉकहोम' में जब इस पुरस्कार की घोषणा की गई तो पूरी दुनिया के लिए यह एक अचरज का कारण बना। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, किपलिंग, विलियम फॉकनर, जॉन स्टेनबेक, हेमिंग्वे, गैब्रियल गार्सिया जैसे दुनिया के महान साहित्यकारों की कतार में डिलन नहीं आते। गीत लिखने, मंचों पर गाने और एलबम निकालने के कारण डिलन की पहचान गीतकार और गायक की रही है। समूची दुनिया में डिलन को लोकगीतों के 'रॉकस्टार' के रूप में जाना जाता है। इसलिए यह कहा गया कि नोबेल पुरस्कार देने वाली संस्था 'स्वीडिश एकेडमी' ने नोबेल पुरस्कार के मानदण्डों को बदल दिया है।

24 मई 1941 को मिनेसोटा के डुलुथ में एक साधारण परिवार में जन्में डिलन का असली नाम है रॉबर्ट जिमरमेन। उन्होंने किशोर वय में ही हारमोनियम, गिटार, माउथ ऑर्गन तथा पियानों बजाना सीख लिया था और गायन के क्षेत्र में अपने को स्थापित करने के लिए संघर्ष शुरू कर दिया था। 20वीं सदी के साठ के दशक में डिलन ने कला-जगत में अपनी उपस्थिति दर्ज करायी और अपने गीत, संगीत व गायन के आंदोलनकारी तेवर के कारण विशिष्ट पहचान बनाने में सफल रहे। दो राय नहीं कि डिलन ने अमेरिकी जनसंगीत के साथ जाने-अनजाने अपने को जोड़ लिया है। अमेरिका के लोकसंगीत और लोक गायकी का इतिहास डिलन की चर्चा के बगैर अधूरा माना जाएगा। बड़े पैमाने पर अतीत के भूले-बिसरे प्रेरक चरित्रों, रागों, मनोभावों का एक रासायनिक घोल बनाकर डिलन जिस प्रभावी और विचारोत्तेजक शैली में लोगों के समक्ष पेश करते रहे हैं, वह अद्भुत रहा है। भारत में जिस तरह झूमर, भैरवी, विरहा, बधाइयाँ, समदवन जैसे लोकसंगीत के विविध रूप और राजा भरथरी, सोरठी वृजाभार, आल्हा-उदल जैसी लोक-कथाएँ विस्मृति के कगार पर हैं-इन्हें बचाये रखने के लिए भारतीय लोक-गायकों को डिलन से प्रेरणा लेने की जरूरत है। पाँच दशक से डिलन के जादुई गीत उदासी, उल्लास, निराशा, प्रतिरोध, जिजीविषा की सृष्टि करते आ रहे हैं।

अमेरिकी बीट पीढ़ी और डिलन

गौरतलब है कि डिलन उस दौर में कला-जगत के सामने आए जब दुनिया के विभिन्न देशों में, यहाँ तक की अमेरिका में भी एक ऐसी युवा पीढ़ी का उभार हो रहा था, जो अपनी सोच और अपने चरित्र में साम्राज्यवाद विरोधी चेतना से लैस थी। यह

वही दौर है, जब भारत में भी एक ऐसी युवा पीढ़ी आंदोलनात्मक आकार ले रही थी, जिसके विचार और रचनाकर्म में भारतीय आजादी की अर्थहीनता का बोध, नेहरूयुगीन अर्थनीति व राजनीति से मोहभंग और इस मोहभंग से उपजने वाली आक्रामक नाराजगी की अभिव्यक्ति होने लगी थी। इसी दौर में फ्रांस में 'आउटसाइडर पीढ़ी', ब्रिटेन में यंग्री यंगमैन पीढ़ी, जर्मनी में 'छली गई पीढ़ी', अमेरिका में 'बीट पीढ़ी', जापान में 'हिबाकुष पीढ़ी', भारत में 'भूखी पीढ़ी' आदि का जन्म और विकास हुआ। इसी दौर में अमेरिकी बीट पीढ़ी के महत्वपूर्ण विचारक और प्रखर कवि एलेन गिन्सबर्ग का भारत में आना हुआ और जिन्होंने कई माह कोलकाता एवं वाराणसी में गुजारे। इसी क्रम में भारत की युवा पीढ़ी का एक वर्ग एलेन गिन्सबर्ग के माध्यम से 'बीट पीढ़ी' के सान्निध्य में आए और उसका प्रभाव भारतीय युवा रचनाकारों पर भी पड़ा। एलेन गिन्सबर्ग का सबसे गहरा प्रभाव बंगला और हिंदी के रचनाकारों पर पड़ा। डिलेन और एलेन गिन्सबर्ग दोनों न केवल समकालीन थे, बल्कि दोनों समान विचारवाले भी रहे हैं। दोनों के अभिव्यक्ति के माध्यम, भले ही अलग-अलग रहे हैं, पर दोनों के कलात्मक गन्तव्य एक रहे हैं। डिलेन 'बीट' पीढ़ी के वैचारिक और सांस्कृतिक आंदोलन के समर्थक रहे हैं।

अमेरिकी बीट पीढ़ी : एक संक्षिप्त परिचय

विश्व इतिहास का यह काला सच है कि साम्राज्यवादी शक्तियों की विस्तारवादी महत्वाकांक्षाओं ने पूरी दुनिया में तनाव, गुटबंदी और युद्ध की शृंखलाओं को जन्म दिया। युद्ध की शृंखलाओं ने जहाँ विजयी पक्ष के भीतर विजयोन्माद का संचार किया, वहीं पराजित पक्ष को अवसाद, अपमान और अस्तित्व संकट के 'यातनामय बोध' के अंधेरे में डुबोया। इस 'यातनामय बोध' की अभिव्यक्ति राजनीतिक और

सांस्कृतिक दोनों क्षेत्रों में हुई। राजनीति के क्षेत्र में पददलित राष्ट्रों द्वारा अपने को सामरिक दृष्टि से अधिक शक्ति सम्पन्न बनाने और एक नये युद्ध की तैयारी के साथ-साथ कूटनीति का सिलसिला शुरू किया गया, तो साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में इस परिदृश्य की अभिव्यक्ति निषेधवादी मानसिकता और व्यक्तिवादी विद्रोह के रूप में सामने आई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उत्पीड़ित देशों के पुनर्निर्माण का फलता-फूलता बाजार और उन्नत विध्वंसकारी टेक्नोलॉजी की सम्पन्नता से मदांध, साम्राज्यवादी शक्तियों का सरगना अमेरिकी साम्राज्यवाद सुपरपावर के रूप में विश्व राजनीति के पटल पर उभर कर आए। बाजार हासिल करने के क्रम में अमेरिकी साम्राज्यवाद इस कदर वहशी और निरंकुश होता जा रहा था कि उसकी नजर में समानता, स्वतंत्रता, विश्व-बंधुत्व, विश्व-शांति जैसे आदर्श फालतू हो गए थे। लेकिन अमेरिकी समाज में एक वर्ग ऐसा था जो समानता, स्वतंत्रता, सह-अस्तित्व और विश्व-शांति का पक्षधर था। यही संवदेनशील वर्ग अमेरिका में बीट पीढ़ी के रूप में सामने आए। इसमें दो राय नहीं कि वस्तुतः अमेरिकी बीट पीढ़ी जनतंत्र और शांति की पक्षधर थी। यह पीढ़ी न तो तो अर्थवादी थी और न हथियारों की होड़ की पक्षपाती थी। बीट पीढ़ी को उस अमेरिकी समाज और जीवन-संस्कृति से सख्त नफरत थी जो अर्थलोलुपता में डूबी थी और उसकी नजर में अमेरिका वह देश नहीं रह गया था जहाँ व्यक्ति की आत्मिक स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी थी। बीट पीढ़ी के अनुसार जनसंचार के साधनों ने व्यक्ति की वास्तविक अनुभूतियों को दबाकर उस पर एक यांत्रिक चेतना आरोपित कर दी है। गिन्सबर्ग और उनके समानधर्मा कवियों की कविताओं को जनता का अपार स्नेह तथा विश्वास मिला, लेकिन अमेरिकी

प्रशासन ने एक खतरे के रूप में उनकी कविता की नोटिस ली और कई कारण दिखाकर उस पर प्रतिबंध भी लगाया।

अमेरिकी बीट पीढ़ी और बंगला तथा हिंदी की भूखी पीढ़ी

अमेरिकी बीट पीढ़ी का जन्म और विकास छठे दशक के वर्षों में हुआ। छठे दशक के अंत तक आते-आते पश्चिम का बौद्धिक समुदाय अपने को आत्मनिर्वासित महसूस करने लगा था और आधुनिकता की अवधारणा जिनको लेकर उसे गर्वबोध था, उससे मोहभंग होने लगा था। इस दौर के भारतीय परिदृश्य पर नजर डालें, तो यहाँ भी समानांतर जीवनबोध पनपता हुआ दिखायी देता है। आजादी के बाद के वर्षों में भारत की अर्थनीति एवं राजनीति पश्चिमी आधुनिकता की नकल की प्रयोगशाला बनी है। छठे दशक के वर्षों में यदि पश्चिम में आधुनिकतावादी विकास मॉडल के विरुद्ध एक मुखर बौद्धिक आंदोलन चला तो भारत में भी नेहरूवादी विकास मॉडल की विफलता की तीखी प्रतिक्रिया हुई और यहाँ का बौद्धिक जगत भी खासकर युवा पीढ़ी, आत्मनिरीक्षण और आत्मालोचना के क्रम में अमेरिकी बीट पीढ़ी के संपर्क में आयी। हालांकि साहित्यिक आलोचकों के एक वर्ग ने अमेरिकी बीट पीढ़ी और उससे प्रभावित भारत के लेखकों-कवियों को दिशाहीन, नकारात्मक, सनकी तथा मनोरोगियों का जमावड़ा माना। सच यह है कि भारत की भूखी पीढ़ी, जिसमें हिंदी के राजकमल चौधरी, मुद्राराक्षस आदि और बांग्ला के समीर राय चौधरी, सुविमल बसाक, उत्पल कुमार बसु आदि थे- इन तमाम रचनाकारों ने गिन्सबर्ग के राजनीतिक विचारों के साथ सहमति जताई, पर बीट पीढ़ी के स्वच्छन्द आचरण का कभी समर्थन नहीं किया। दरअसल भारत की भूखी पीढ़ी के रचनाकारों ने दुनिया के उन तमाम संगठनों व आंदोलनों का

समर्थन किया जो अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्षरत थे। भूखी पीढ़ी के रचनाकारों ने एक बयान जारी कर अपने आलोचकों को खुला जबाव दिया था-“गिन्सबर्ग और उसके गीत व हमराहों को सबसे पहले पिता देश अमेरिका से इसलिए निकाल दिया गया है क्योंकि, वे लोग वियतनाम की बेताज महारानी मादाम नू को हसरत और प्यार की निगाहों से देखते हैं, क्योंकि वे क्यूबा जाते हैं और अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ जहर उगलते हैं, क्योंकि वे लिखते हैं कि न्यूयार्क सागर के किनारे खड़ी एक सौ बावन गज लम्बी स्वाधीनता की देवी को समुद्र में प्रवाहित हो जाना चाहिए, क्योंकि देवी के हाथ की मीशाल बुझ चुकी है।” सवाल यह उठता है कि यदि भारत की भूखी पीढ़ी के रचनाकार बीट पीढ़ी के रचनाकारों के साथ खड़े होते हैं क्योंकि वे अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ जहर उगलते हैं या अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्षरत वियतनाम और क्यूबा को प्यार करते हैं, तो यह पक्षधरता गलत कैसी थी, यह पक्षधरता भारत की भूखी पीढ़ी के रचनाकारों के वैचारिक साहस, स्पष्टता और उनकी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना की परिचायिका है। यह ठीक है कि बीट पीढ़ी की कमजोरियाँ भी थीं, बावजूद इसके यह पीढ़ी अमेरिकी साम्राज्यवाद का विरोध कर रही थी, तो यह विरोध एकीनन उसकी जीवन्तता, जागरूकता और जनवादी विचारों का परिचायक था। साम्राज्यवाद एक संगठित शोषणतंत्र, अपराधतंत्र और मनुष्यविरोधी तंत्र है। ऐसे में साम्राज्यवाद के खिलाफ आवाज बुलंद करनेवाला रचनाकार विचारहीन कैसे हो सकता है?

बॉब डिलन का उत्थान और कम्युनिस्ट आंदोलन

सन 1960 में मात्र 19 साल की उम्र में बॉब डिलन न्यूयार्क शहर पहुँचे। उन दिनों अमेरिका में संगीत दो धाराओं में बंट चुका था जो कि

कहीं न कहीं राजनैतिक पटल पर दो धाराओं का प्रतिनिधित्व कर रहा था। पूँजीवादी विचारधारा तथाकथित आधुनिक संगीत (पॉप म्यूजिक, रॉक एंड रोल) को आधुनिक तकनीक व विशाल प्रचार के माध्यम से सामने ला रही थी और इधर कम्युनिस्ट विचारधारा आंदोलन और लोकसंगीत समर्थक हो चुकी थी। इन लोक संगीतों में अमेरिका के आम जन की संवेदनाएँ, जिजीविषा और सपनों की बातें होती थीं। इस संदर्भ में सबसे पहला नाम आता है वूडी गुथरी का। वूडी गुथरी ही वह गायक हैं, जिन्होंने विश्व प्रसिद्ध गीत “दिस लैन्ड इज योर लैन्ड” की रचना की थी। यह गीत उन दिनों अमेरिका को और साथ ही साथ पूरी दुनिया को झकझोर दिया था। वूडी गुथरी अमेरिकी कम्युनिस्ट आंदोलन के सांस्कृतिक मोर्चे के पहली कतार के संगठक थे। इन्होंने सैकड़ों की संख्या में लोकगीतों की रचना की थी जो अमेरिका में काफी लोकप्रिय हुए। बॉब डिलन न्यूयार्क आकर सबसे पहले वूडी गुथरी से ही मिले थे और उन्हीं का शिष्य बनकर कुछ कर गुजरने का संकल्प उन्होंने लिया था। पर अफसोस वूडी ज्यादा दिन जीवित नहीं रहे। इन्हीं दिनों बॉब डिलन का परिचय हुआ एक और प्रख्यात लोकसंगीत गायक पीट सीगर से। उनको ‘अमेरिका का विवेक’ भी कहा जाता था। पीट सीगर मात्र 17 साल की आयु में एंग कम्युनिस्ट लीग के सदस्य बने थे और बाद में अमेरिकी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य भी बने। पीट सीगर के गीत सिर्फ अमेरिका में ही नहीं, पूरी दुनिया में लोकप्रिय हैं। चाहे वह क्यूबन क्रांति हो या फिर स्पेन का फासिज्म विरोधी गृहयुद्ध, पीट सीगर ने प्रगति के पक्ष में और साम्राज्यवादी-पूँजीवादी जुल्म के खिलाफ अनवरत गीत गाते रहे। “वी शैल ओवरकम” गीत को विश्वप्रसिद्ध करने का श्रेय पीट सीगर को ही जाता है और यह पीट सीगर ही थे, जिन्होंने बॉब

डिलन को मंच प्रदान किया था, बड़ी-बड़ी जनसभाओं और कॉन्सर्टों में गाने का मौका दिया था। बॉब डिलन ने भी अनायास ही पीट सीगर को अपने मार्ग दर्शक के रूप में स्वीकार कर लिया।

बॉब डिलन में असाधारण संगीत प्रतिभा थी। वे बहुत जल्द लोकसंगीत के जरिये अमेरिकी जनता के दिलों में राज करने लगे। इसी दौरान डिलन का परिचय एक उभरती हुई कलाकार के साथ हुआ, जिसका नाम सुजी रोटोलो था। रोटोलो भी एक अत्यंत प्रतिभाशाली गायिका थीं। जल्द ही दोनों में एक मधुर संबंध तैयार हो गया और दोनों एक दूसरे के प्यार में बंध गए। रोटोलो खुद और उसका पूरा परिवार उन दिनों सक्रिय रूप से अमेरिकी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ जुड़े हुए थे। डिलन जो भी गीत रचना करते थे, उसे वे पहले रोटोलो को सुनाते थे। रोटोलो उस गीत में जो भी फेरबदल करने को कहतीं, डिलन बेहिचक उसमें फेरबदल करते। कुल मिलाकर उस समय का दौर, डिलन के आस-पास के लोग और अमेरिकी जनता में प्रगतिशील विचारधारा के प्रति बढ़ते आकर्षण ने डिलन को प्रेरित किया- प्रतिवाद, प्रतिरोध, संघर्ष, उम्मीद और सपनों से भरे हुई गीतों की रचना करने के लिए।

डिलन के रचनात्मक पड़ाव

बॉब डिलन इसी तूफानी दौर में एक ओजपूर्ण युवा संगीतकार व गायक के रूप में असीम संभावनाओं के साथ उभरकर आए। उनके प्रशंसकों में ट्रक ड्राइवर से लेकर दुनिया के लब्धप्रतिष्ठ लेखक-विचारक हैं। उनके गीत संघर्षधर्मी ऊर्जा से लैस होने के कारण अद्भुत बिंबों का निर्माण करते हैं और सुननेवालों-पढ़नेवालों को प्रतिवाद करने के लिए बेचैन कर देते हैं। उनके गीत उनकी पीढ़ी के स्वर तो रहे ही हैं, उनके गीतों ने कई पीढ़ियों तक को प्रभावित

किया है। डिलन के गीत चुप्पी और सन्नाटे को तोड़नेवाले गीत हैं। उनके गीत सुरक्षा के घेरे में बैठकर आमजन के दुख-दर्द को क्लिक करनेवाले इन्टरनेटी गीत नहीं हैं। डिलन के गीत उन मेहनतकश के हाथों से अलग नहीं हैं, जो जंजीरों में तो जकड़े हैं, लेकिन प्रतिरोध में उठते भी हैं। उनके गीतों की जुबान और होंठ उन असंख्य जुबानों व होठों में से एक है जो काट और सिल दिये जाने के बाद भी बेजुबान नहीं हुई है। डिलन के गीतों में गहरी निराशा, हताशा व उदासी भी है, पर साथ ही संघर्ष के थपेड़े खाती जिजीविषा, जीवन के रागात्मक उत्साह को खोजती हुई भी दिखाई देती है। उनके गीत अंधेरे में प्रकाश, निराशा में आशा, उदासी में उल्लास की खोज करते हैं और यह खोज जीवन की खोज है, सुकून की खोज है, संकीर्णताओं से मुक्त एक सहज, मानवीय और सामाजिक आत्मीयता की खोज है। उनके गीत यह अहसास कराते हैं कि रचनाकर्म सिर्फ शब्दों का खेल नहीं है, असल में एक आंदोलन है, एक नारा है-बेहतरी के लिए, बदलाव के लिए, बस उस नारे को गढ़ना आना चाहिए। डिलन का एक गीत है-“ड्रीम ऑफ बॉब डिलन” जिसमें वे लिखते हैं-“बहुत समय लगा/पर मुझे मालूम है/एक परिवर्तन आएगा/हाँ यह आयेगा।”-ऐसी ही परिवर्तनकामी रचनात्मक चेतना को लुकाच ने संभावित संसार की खोज कहा है।

बॉब डिलन ने ‘प्रतिरोध गीतों’ के अलावा प्रेम गीतों का भी सृजन किया है, जिनमें ब्रेख्त की संवेदनात्मक झलक दिखाई देती है। ‘ब्लोइंग इन द विंड’ (जो उनका पहला पब्लिक प्रदर्शन था) के प्रेमगीत संबंधों को नया जीवन और जीवन को जिजीविषा की ऊर्जा देकर मानवीय संवेदना को संपूर्णता प्रदान करते हैं। ब्रेख्त से किसी ने पूछा था कि क्या अंधेरे समय में प्रेम के गीत गाये

जाएंगे? तो उन्होंने कहा था कि हाँ गाये जाएंगे, लेकिन, वे मनुष्यता से जुड़े प्रेमगीत होंगे। हिंदी के अग्निधर्मा कवि गोरख पाण्डेय के गीत रचना की पंक्ति है-“तुम्हारी आँखों में देखता हूँ दर्द का समन्दर/जितना जल्दी हो इस दुनिया को बदल डालो।” घरेलू जीवन का दुखबोध किस तरह सार्वजनिक दुख बोध में तब्दील हो जाता है-सृजन की यह प्रक्रिया गोरख पाण्डेय, पाश आदि के यहाँ उसी तरह दिखाई देती है, जिस तरह डिलन के गीतों में दिखाई देती है। डिलन की गीत-रचनाएँ ऊपर से महज भावुकता के सिवा कुछ नहीं लगती, पर गीत की समाप्ति पर एक नई आकृति का निर्मल भावबोध गतिशील दिखाई देता है। उनकी प्रेमपरक रचनाएँ समृद्ध रचनात्मकता का प्रमाण देती हैं। उनका प्रेमानुभव जीवन-यथार्थ के बीच से निकलने वाला राग-भाव है। उनके प्रेम गीतों में भी समय का दंश है। ‘द फीव्लीन’, ‘स्पेनिश हारलम इंसीयेंट’, ‘टूरमोना’ डिलन के लोकप्रिय प्रेमगीत हैं। उनके कई गीतों में रहस्यवाद की झलक मिलती है। ‘टू राइडर्स बेयर अप्रोचिंग’, ‘द विंड बिगैन, टू हाउस’ जैसी गीत-रचनाओं में रहस्यवादी चेतना के स्वर हैं। ‘बेबी ब्लू’, ‘इट्स आलराइट’- डिलन की दो महत्वपूर्ण गीत-रचनाएँ हैं। डिलन के गीत साठ के दशक में अमेरिकी जन-आंदोलनों के समवेत-गान बन गए थे। जाहिर है, उनके गीतों के मर्म को समझने के लिए अमेरिका के इतिहास और सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों के पड़ावों को जानना जरूरी है। डिलन के गीतों में मिट्टी की महक है, जिनमें हाशिए के लोगों की निःशब्द पीड़ा है और इस पीड़ा को जन्म देने वाली बर्बर ताकतों की गहरी शिनाख्त भी है। डिलन अपने स्टेज-प्रोग्राम के दौरान ऐसे गीत गाते रहे हैं जो आम लोगों के जीवन से जुड़े रहे हैं।

1963 में डिलन का एक एलबम आया

था 'ऑक्सफोर्ड टाउन' जो अपने विषय-वस्तु के कारण चर्चित रहा। यह 'एलबम' मिसिसिपी विश्वविद्यालय' में प्रवेश लेने वाले प्रथम अश्वेत छात्र जेम्स मेरेडिथ की कठिनाइयों को संबोधित है। उनके दूसरे एलबम 'द फीव्लीन' में कई ऐसे गीत हैं जो प्रतिरोध के पर्याय बन गए हैं और परिवर्तनकारी आंदोलनों को ऊर्जा देने वाले हैं। इसी दौरान बॉब डिलन ने कई गीत लिखे जो कि दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी ताकतों के खिलाफ जंग का एलान था। आयोजक जब डिलन को कन्सर्ट के लिए बुलाते थे, तो वे शर्त देते थे कि डिलन कृपया इन भड़काऊ गानों को न गाएँ, पर डिलन समझौते के लिए तैयार नहीं थे। ऐसे शर्त के कारण उन्होंने कई कन्सर्ट में गाने से इनकार कर दिया था।

डिलन मात्र एक गीतकार नहीं हैं, बल्कि उनकी एक खास विचारधारात्मकता भी रही है। इसीलिए उनके गीत किसानों और मजदूरों को संबोधित हैं। 'ब्लोन इन द विण्ड' एलबम के तमाम गीत अपनी बनावट एवं लय में 'दास-गीत' (स्लेव सांग) की परम्परा से सम्पृक्त लगते हैं। गीतों में गरीबी, युद्ध, हथियारों की होड़, साम्राज्यवादी षड़यंत्र आदि के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर बुलन्द करनेवाले डिलन को अमेरिका का इतिहासकार भी कहा जाता है। गीतों में इतिहास को डालनेवाले अद्भुत कलाकार हैं बॉब डिलन।

उल्लेखनीय है कि डिलन ने जितने भी स्टेज प्रोग्राम किये हैं, उनका एक बड़ा हिस्सा 'चैरिटी' से जुड़ा है। वे गीत-सृजन के साथ-साथ, समय-समय पर 'चैरिटी' के लिए स्वयं भी कार्यक्रम आयोजित करते रहे हैं और लोगों से अपील भी करते रहे हैं। उनकी ऐसी ही अपील से प्रभावित होकर विली नेलसन ने कर्ज में डूबे अमेरिकी किसानों की सहायता के लिए 'फार्म

एड' नाम से एक व्यापक अभियान शुरू किया था। 1971 में 'ब्लैम पैथर' जॉर्ज जैक्सन को जब जेल में मार दिया गया, तो उसकी मृत्यु पर शोक-संवेदना व्यक्त करते हुए डिलन ने उसी वर्ष 'जॉर्ज जैक्सन' के नाम से गीतों का एलबम बनाया और उससे होनेवाली आय को जैक्सन के परिवार को दे दी।

जीवन और विचार में परिवर्तन

प्रतिरोध, आंदोलन और लोगों की व्यथा को संगीत की लय में पिरोनेवाले बॉब डिलन में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा। अमेरिका में लोगों ने डिलन की विस्मयकारी प्रतिभा को देखकर सोचा था कि अब अमेरिका को दूसरा वूडी गुथरी मिल चुका है। प्रगतिशील सोच वाले लोगों को उम्मीद थी कि बॉब डिलन न सिर्फ पॉल रोबसॉन, इरविन सील्वर, पीट सीगर जैसे लोकप्रिय और जनगीत गानेवाले महान संगीतज्ञों की गौरवशाली परंपरा को आगे बढ़ायेंगे, बल्कि उनसे भी आगे निकल जाएंगे, परंतु ऐसा नहीं हो पाया। डिलन का रास्ता धीरे-धीरे अलग होने लगा था।

सभी जानते हैं कि अमेरिका में 1947 में बाद कई सालों तक मैकार्थी युग चला था, जिसके तहत सैकड़ों गायकों, कवियों, चित्रकारों, फिल्म निर्माताओं तथा रंगकर्मीयों पर 'कम्युनिस्ट' होने के आरोप में प्रतिबंध लगाया गया था। पॉल रोबसॉन, पीट सीगर जैसे लोकप्रिय गायकों पर भी प्रतिबंध लगाया गया था। पर प्रतिबंध से या दमन से ये कलाकार डरे नहीं, बल्कि संघर्ष की आग में तपकर उनमें और निखार आता गया। पर बॉब डिलन उनके बाद की पीढ़ी के गायक थे। तब तक सोवियत संघ पर संशोधनवादी-अवसरवादी नेतृत्व का कब्जा हो चुका था। साम्यवादी आदर्शों के मौलिक प्रतिमानों से सोवियत संघ भटक चुका था। कम्युनिज्म के महान आदर्श को सोवियत संघ दुनिया के सामने कुछ हद तक

धूमिल कर चुका था। रूस में संशोधनवाद व भटकाव आने के बाद अमेरिकी सरकार इस विषय पर लोगों को कुछ हद तक दिग्भ्रमित करने में सफलता पाई। बॉब डिलन में भी परिवर्तन आने लगा था। वे पहले से ही पीट सीगर जैसे सिद्धांतवादी नहीं थे। बॉब डिलन का नजरिया कुछ अलग होता जा रहा था।

यह सभी जानते हैं कि महान गायक पीट सीगर ही थे, जिन्होंने बॉब डिलन को न्यूपोर्ट फोक फेस्टिवल, जो कि लोक संगीत का सबसे बड़ा मंच था, में गाने का मौका प्रदान किया था। डिलन के शुरूआती संघर्ष के दिनों में पीट सीगर ने बरगद की छाँव बनकर डिलन को सपोर्ट किया था। पीट सीगर का व्यक्तित्व ही ऐसा था कि अपने जीवन में राजनैतिक उथल-पुथल में गोते लगाने के बावजूद व्यक्तिगत रूप से उनका कोई दुश्मन नहीं था। इसीलिए तो लोग उन्हें 'अमेरिकी विवेक' कहकर पुकारते हैं। ऐसा व्यक्ति यदि किसी पर खफा हो जाए तो जरूर उसमें कोई बात होगी। पीट सीगर खफा थे डिलन पर।

उन दिनों जो लोक गायक हुआ करते थे, वे बहुत कम वाद्य-एंनों का इस्तेमाल करते थे। पीट सीगर ने तो हाथ में सिर्फ एक बैजो लेकर पूरे अमेरिका को झकझोर दिया था। उसमें लिखा होता था 'यह वाद्ययंत्र नफरत को खत्म करेगा'। वूडी गुथरी सिर्फ एक गिटार लेकर गाते थे, जिसमें लिखा होता था 'यह यंत्र फासिस्टों का नाश करेगा।' डिलन के निजी जीवन में, पुरानी विचारधारा के साथ-साथ उनके संगीत जीवन में, और वाद्ययंत्रों के इस्तेमाल में भी परिवर्तन आने लगा था। उन्होंने एक कन्सर्ट आयोजित किया, जहाँ पहली बार आधुनिक इलेक्ट्रिक वाद्ययंत्रों व तामझाम का जमकर इस्तेमाल किया गया। लोक संगीत के जितने भी गायक उस समय थे, सभी ने इसका पुरजोर विरोध किया।

पीट सीगर ने तो कहा था कि 'मेरे पास यदि एक कुल्हाड़ी होती, तो मैं इस इलेक्ट्रिक तार को ही काट डालता'। उनकी इस बात से देश भर में सनसनी फैल गई। दशकों बाद सीगर ने एक इंटरव्यू में कहा था, "मुझे सचमुच बहुत बुरा लगा था। डिलन अमेरिका का एक अत्यंत लोकप्रिय लोकगीत 'मैगीज फार्म' गा रहे थे और उस गाने का एक वाक्य भी समझ में नहीं आ रहा था। सिर्फ इलेक्ट्रिक वाद्ययंत्रों की आवाजें सुनाई दे रही थीं।" कई कन्सर्ट में श्रोताओं की ओर से भी डिलन की हूटिंग हुई। हालाँकि डिलन काले लोगों पर जुल्म के खिलाफ, नागरिक अधिकार के सवाल पर कुछ-कुछ गीतों की रचना करते रहे, पर मुख्यतः प्रतिरोध के गीत गानेवाले डिलन कहीं खो गए। सोवियत संघ के पतन के बाद डिलन निराश हो गए थे। उन्होंने घोषणा कर दी कि अब वे जनआन्दोलन और अभियानों के लिए गीत नहीं लिखेंगे, अब वे खुद के लिए लिखेंगे, खुद को व्यक्त करने के लिए गायेंगे। क्रमशः डिलन का रूपांतरण एक लोक गायक से आधुनिक पॉप स्टार जैसा हो रहा था। रॉक एंड रोल की ओर झुकाव, निओन लाइट, बिटल्स जूता, रात में भी सनग्लास आदि के सहारे वे साठ के दशक के शुरूआती दौर के डिलन को लगभग खत्म कर चुके थे। अमेरिकी जनता डिलन के इस नए रूप को दिल से स्वीकार नहीं कर पा रही थी। डिलन के शुरूआती दिनों के संगीत गुरु कहलाने वाले कई संगीतकारों ने डिलन से दूरी बना ली थी। इसी दौर में डिलन के गीत और स्टेज प्रोग्राम की स्तरीयता को लेकर भी सवाल उठने लगे। उन पर आरोप लगते रहे हैं कि वे दूसरों की गीत-रचनाओं में छेड़छाड़ कर अपने नाम से बेचते हैं और सस्ती लोकप्रियता के लिए फूहड़ की हद तक भी चले जाते हैं। मसलन 1966 का एक स्टेज कार्यक्रम काफी विवादास्पद रहा, जिसमें

डिलन ने 'मिस्टर टैम्बूरिन मैन' गाया था। यह गीत रचना आदर्शवाद विरोधी थी और इसमें व्यावसायिक लटके भी थी।

इसी दौरान डिलन एक सड़क हादसे में घायल हो गए। चोट उतनी गंभीर नहीं थी। पर डिलन थक चुके थे, विश्राम लेने की सोच रहे थे। यह दुर्घटना एक मौका लेकर आई। बॉब डिलन लम्बे समय तक सार्वजनिक जीवन में नहीं आए। 8 वर्ष तक संगीत से वे दूर रहे। पर जो संगीत, विचार व सिद्धांत डिलन के खून में दिल में समा चुका था, वह पूरी तरह से कभी मिट नहीं पाया। एक्टिविज्म से दूर होने के बावजूद जब अमेरिका में एक प्रख्यात निग्रो मार्क्सवादी नेता की हत्या की गई, तो बॉब डिलन ने सन 1971 में विख्यात बॉक्सर रूबीन 'हरिकेन' कार्टर की गिरफ्तारी के खिलाफ भी उन्होंने प्रतिवादी गीत लिखा। अभी सन 2010 की बात है अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने व्हाइट हाउस में गाने के लिए बॉब डिलन को आमंत्रित किया था। बॉब डिलन के लिए व्हाइट हाउस में गाने का यह पहला मौका था। बराक ओबामा लिखते हैं, "कार्यक्रम से पहले व्हाइट हाउस में कई दिनों तक रिहर्सल चला। डिलन एक बार के लिए भी रिहर्सल में नहीं आए। इस कन्सर्ट के लिए कई म्यूजिशियन, तकनीकी विशेषज्ञ रात-दिन एक करके परिश्रम कर रहे थे। इन लोगों में गजब का उत्साह था, मेरे साथ और मेरी पत्नी के साथ फोटो खींचवाने का। मुख्य कार्यक्रम के दिन डिलन आए, अपने गीत प्रस्तुत किये, स्टेज से नीचे उतरकर मेरे साथ हाथ मिलाये और चल दिये। लगा ही नहीं कि वे अमेरिकी राष्ट्रपति से मिल रहे हैं।"

कुछ साहित्यिक आलोचकों का आरोप है कि 21वीं सदी के मौजूदा दूसरे दशक में जबकि डिलन शोहरत और दौलत के शीर्ष पर विराजमान हैं, तो वे क्या कर रहे हैं? सोवियत संघ के विघटन के बाद एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था बनी है और उसका नेतृत्व अमेरिकी साम्राज्यवाद कर रहा है। इस अमेरिकी नेतृत्व के तहत दुनिया के विभिन्न हिस्सों में मसलन इराक, अफगानिस्तान, पाकिस्तान, सीरिया, सोमालिया, हरजेगोबिना, उक्रेन आदि देशों में बने हालातों के लिए जो ताकतें जिम्मेदार हैं, डिलन उनके खिलाफ प्रतिरोध के गीत न सही, प्रतिरोध के अखबारी बयान भी क्यों नहीं दे रहे हैं? दुनिया के प्रसिद्ध गीतकार, रंगकर्मी, गायक, कवि, लेखक आदि कलाकारों के जीवन पर यदि गौर किया जाए, तो हम देखेंगे कि उनका जीवन काफी उतार-चढ़ाव व संघर्षपूर्ण रहा है। व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन में संघर्ष, समकालीन आर्थिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य का प्रभाव, विचारों का टकराव आदि उनके जीवन को आकार प्रदान करता आर्य है। चूँकि इस द्वन्द्व में लगातार परिवर्तन होता है, इसलिए एक कलाकार के जीवन और विचार में भी लगातार परिवर्तन होता है। डिलन के जीवन में भी ऐसा ही हुआ। हाँ, यह सत्य है कि वो बॉब डिलन आज नहीं हैं, जो कभी साम्राज्यवाद विरोधी, फाँसीवाद विरोधी, युद्ध विरोधी जनांदोलनों के मोर्चे पर दिखायी देते थे, पर यह भी उतना ही सत्य है कि प्रगति के लिए, मनुष्यता की रक्षा के लिए, शोषण-जुल्म के खिलाफ जब कभी संघर्ष होगा, वहाँ बॉब डिलन के गीत मौजूद रहेंगे- अपने पूरे वजूद के साथ लोगों को प्रेरित करेंगे और जुल्मी हुक्मरानों के दिलों में भय पैदा करते रहेंगे।

सम्पर्क : हिंदी विभाग, करीम सिटी कॉलेज, जमशेदपुर, झारखण्ड, मो.-9430260514

हिंदी के सांस्कृतिक-सांस्थानिक शलाकापुच्छ! ललित कलाओं में गहरी अभिरुचि। वाणी और लेखनी- दोनों ही दृष्टियों से तेजस्वी और यशस्वी! सामर्थ्यवान, उच्च पदस्थ राजयोग सम्पन्न। मार्क्सवाद-जनवाद के समांतर अपने शिविर की रचना। हिंदी के अनेक रचनाकारों के विकसित और स्थापित करने का श्रेयस्वी व्यक्तित्व! भाषा की धड़कन को सुनने वाला जन्मजात लिरिकल संवेदना का कवि : अशोक वाजपेयी!

साफ रंग, लम्बा कद। भरा हुआ शरीर। ऊपर की ओर उठाकर सँवारे गए लम्बे पके-अधपके बाल। बड़े आकार के चश्मे से आँखों की फिसलती चमक। आत्मदर्प से भरा हुआ मुखमंडल! आवाज़ में तुरी और खनक! हिंदी और अंग्रेजी- दोनों ही भाषाओं में वक्तृता पर पूरा अधिकार! श्रोताओं के चित्त पर अपने पद-मद और अधिकार-क्षेत्र को स्थापित करने का सफल प्रयास। आवेग में बोलते हुए कथनीय और अकथनीय भाषा-व्यवहार का अविवेक!

अशोक वाजपेयी के नाम से मेरा पहला परिचय सागर विश्वविद्यालय के उप कुलसचिव श्री परमानन्द वाजपेयी के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में हुआ था, जो अंग्रेजी में एम.ए. थे और हिंदी में लिखा करते थे। वह भारतीय प्रशासनिक सेवा में नियुक्त हुए थे और भोपाल में कार्यरत थे। तब मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह ने उन्हें सांस्कृतिक विभाग का सर्वोच्च प्रशासनिक अधिकारी बना दिया था। यही से उनके साहित्यिक शिविरवाद का आरंभ हुआ।

हिंदी में उन दिनों रचनाकारों, साहित्यकारों के तीन शिविर बने। इनमें पहला शिविर नामवर सिंह का था, दूसरा शिविर अशोक वाजपेयी का और तीसरा शिविर राजेन्द्र यादव का था। इन तीनों में एक समानता थी कि ये तीनों ही एक-एक पत्रिका के सम्पादक थे। नामवर सिंह 'आलोचना' के, अशोक वाजपेयी 'पूर्वग्रह' के और राजेन्द्र यादव 'हंस' के सम्पादक थे। नामवर सिंह जे.एन.यू. में हिंदी विभाग के प्रोफेसर थे और उनके हाथों में और अधिकार में हिंदी के विद्यार्थियों, शोधार्थियों के भविष्य-निर्माण की शक्ति थी। अशोक वाजपेयी के अधिकार में प्रशासन था, संस्था थी, मंच था, देने के लिए पुरस्कार-सम्मान था और राजेन्द्र यादव के पास 'हंस' का पूर्वग्रस्त नीर-क्षीर अविवेकी स्वत्व था। इस प्रकार अशोक वाजपेयी हिंदी के तीन प्रभुत्वशाली स्तम्भों में दूसरे शक्ति-सम्पन्न स्तम्भ थे।

मैंने अशोक वाजपेयी की कविता तो बाद में पढ़ी, पर उनका गद्य-लेखन मेरी मेज पर पहले से पढ़े जाने के लिए प्रतीक्षित रहा। मैंने सबसे पहले 'फिलहाल' में उनके दो आलेख पढ़े- 1. 'भयानक खबर की कविता' और 2. 'बूढ़ा गिद्ध क्यों पंख फैलाये'? ये दोनों आलेख क्रमशः मुक्तिबोध और अज्ञेय पर लिखे गए थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनका पहला लेख ईमानदारी से लिखा गया था। पर उसकी दुर्बलता यह थी कि वह कविता की बाह्य संरचना तक ही सीमित रह जाता था, उसकी आंतरिक संरचनाओं या कि अर्थगह्वर में प्रवेश नहीं कर पाता था। दूसरा आलेख स्पष्ट तौर पर एक मारक आलेख था।? उसमें बेईमानी तो थी ही, शरारत भी थी। यह लेख यह बताता था कि अशोक जी को उखाड़-पछाड़ की कला आ गई है। हजारों प्रसाद द्विवेदी जिसे 'उत्खाट-रोपण' न्याय कहते थे, उसमें वह पारंगत हो चुके हैं। आज जब मैं 'बूढ़ा गिद्ध क्यों पंख फैलाये'- जैसे शीर्षक पर

विचार करता हूँ, तो मुझे लगता है कि अशोक वाजपेयी आज अज्ञेय से भी बूढ़े हो चुके हैं। जनवरी 2021 में वह अस्सी (80) वर्ष के हो गए। पर अज्ञेय 76 वर्ष में ही दिवंगत हो गए थे। 'फिलहाल' का जब वह निबन्ध आया था तब वह प्रौढ़ ही थे, हम लोगों की तरह ही वृद्धता उन्हें ग्रस नहीं पाई थी। रही लेखन की वृद्धता तो सरस्वती की जवानी उसकी कविता होती है और बुढ़ापा उसका दर्शन! पर अज्ञेय के मरणोपरान्त अशोक वाजपेयी ने उन पर नया आलेख लिखकर अपने पूर्व लिखित आलेख का प्रायश्चित्त ही किया है। आज अशोक वाजपेयी इस स्थिति में हैं कि अज्ञेय के समग्र काव्य-लेखन की तुलना वह अपनी कविताओं के साथ करते हुए उनका और अपना मूल्यांकन कर सकें और काव्य के बूढ़े गिद्ध की उड़ान को सार्थक या निरर्थक सिद्ध कर सकें।

कभी मंच से व्याख्यान देते हुए पचासों श्रोताओं के बीच अशोक वाजपेयी अपने दाहिने हाथ की हथेली को ऊपर उठाते-गिराते हुए कुछ लेखकों के नाम लेते हुए यह कह जाने से नहीं हिचकते कि इन सबको 'मैं यूँ-यूँ' उछाल दूँगा। घमंड से भरी उनकी ऐसी चैलेंजिंग अभिव्यक्ति को लेखिका सुनीता जैन ने मुझे सुनाया था और हिंदी के साहित्यकारों की ऐसी कुंठित मनोग्रंथि के उद्घाटन से दुखी हुई थी उन्होंने अपनी संक्षिप्त आत्मकथा 'शब्दकाया' में इसे लिखा भी है।

अशोक वाजपेयी 'रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और नाद' के प्रेमी हैं। गोष्ठियों-संगोष्ठियों में कामिनियों का आकर्षण और सान्निध्य-साहचर्य बना लेने की उनमें अनोखी और अद्भुत कला है। आयोजनों में रस-पान से कंठ को तरलायित करते रहने की उनमें आकुल पिपासा है।

श्री वाजपेयी से सम्पर्कित होने का पहला

अवसर मुझे तब मिला जब वर्धा में, स्थापित महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के वह प्रथम कुलपति नियुक्त हुए थे। उनका यह कार्यकाल न केवल उत्तरदायित्वों से भरा, अपितु जकड़ा हुआ था। एक दिन जब मैंने अपनी आँख खोली तब उसमें वाजपेयी जी द्वारा हस्ताक्षरित एक टंकित पत्र मुझे मिला। यह पत्र विश्वविद्यालय में भाषा-प्रौद्योगिकी विषय को आरंभ करने और उसका पाठ्यक्रम बनाने से संबंधित था। मैं उस समिति का सदस्य बनाया गया था और उसे विमर्शित-स्वरूपित करने और परिपूर्णता प्रदान करने के लिए मुझे निश्चित तिथि पर बुलाया गया था। बैठक हैदराबाद में आयोजित थी। पत्र हिंदी में टंकित था। हिंदी विश्वविद्यालय के लिए यह स्वाभाविक भी था और अपेक्षित भी। पर उस पृष्ठ में सबसे ऊपर विश्वविद्यालय के लिखे गए नाम में 'अन्तरराष्ट्रीय' शब्द की वर्तनी (दर्रा) अशुद्ध थी। 'अन्तरराष्ट्रीय' की जगह 'अन्तर्राष्ट्रीय' लिखा गया था। 'रा' के ऊपर ही 'रेफ' (') लगा दिया गया था। मुझे लगा कि सबसे पहले विश्वविद्यालय के नाम की वर्तनी ही ठीक करा देने की अपेक्षा है। अतः मैंने अशोक वाजपेयी को तत्काल पत्र लिखकर इसकी अशुद्धि की ओर उनका ध्यान खींचते हुए इसे संशोधित कर लेने का आग्रह किया। उसमें मैंने यह भी लिखा कि 'अन्तर्देशीय' के अनुरूप 'अन्तर्राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ 'Intranational' या In Nation होगा, जबकि हमारा अभिप्राय अनेक राष्ट्रों के बीच का है। मैं उस बैठक में जा तो नहीं पाया, क्योंकि उसी नियत तिथि को मैं संघ लोक सेवा आयोग, नयी दिल्ली की किसी बैठक में जाने के लिए पहले से प्रतिश्रुत था। श्री वाजपेयी ने मेरा पत्र विद्यानिवास मिश्र जी को दिखाया और उनके द्वारा इसे सम्पुष्ट किये जाने के बाद इसे संशोधित कर दिया गया।

हाँ, इतना अन्तर अवश्य रहा कि 'अन्तरराष्ट्रीय' नहीं लिखकर इन दोनों शब्दों को मिलाकर 'अन्तरराष्ट्रीय' लिखा गया। इसमें से 'हाइफ़न' (-) को हटा दिया गया। मुझे अशोक वाजपेयी के इस निर्णय से प्रसन्नता हुई। साथ ही परितोष भी हुआ कि हिंदी विश्वविद्यालय के नाम से वर्तनी की अशुद्धि हट गई।

वाजपेयी जी से मेरा पहला प्रत्यक्ष परिचय लखनऊ में विश्वविद्यालय के द्वारा चलाये जा रहे भाषा-केन्द्र में हुआ। वर्षों में तो कई वर्षों तक न ही भवन बन पाया और न ही अध्यापन आरंभ किया जा सका। पर इस बीच विद्यानिवास जी के प्रएत्न से उसका एक केन्द्र लखनऊ में खोल दिया गया। यह केन्द्र मूलतः विद्यानिवास जी के दिशा-निर्देशन में हिंदी का सर्वांगीण व्याकरण तैयार करने की परियोजना को क्रियान्वित करने की दृष्टि से खोला गया। इसके प्रभारी लखनऊ विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान विभाग के तत्कालीन रीडर अध्यक्ष डॉ. ऋषभ प्रसाद जैन बनाये गए। अपना कार्यभार संभाल लेने के बाद ही योजना के अतिरिक्त उन्होंने अशोक वाजपेयी से आग्रह कर वहाँ भाषाविज्ञान और अनुवाद में डिप्लोमा पाठ्यक्रम और फिर बाद में दोनों विषयों में एम.फिल. की अध्यापन-कक्षाएँ आरंभ करायीं। पंडित विद्यानिवास जी और डॉ. जैन का आग्रह रहा कि मैं वहाँ अतिथि अध्यापक के रूप में विद्यार्थियों को लाभान्वित करने के लिए समय-समय पर उनका आमंत्रण मिलने पर आता रहूँ। इसके अनुरूप मैं वहाँ आता-जाता रहा। पर 2002 में डॉ. जैन ने मुझे एक वर्ष के लिए भाषा केन्द्र में विजिटिंग प्रोफ़ेसर के रूप में अशोक वाजपेयी से आग्रह कर नियुक्त करवाया बाद में उन्होंने इसकी सूचना मुझे दी। मैंने उसे स्वीकार भी कर लिया। एक महीने बाद मैं सपत्नीक वहाँ चला भी गया।

विश्वविद्यालय के इस भाषा केन्द्र में पीएच.डी. शोधकार्य कराने की भी शुरुआत हो रही थी। इसके लिए शोध-समिति की बैठक हो रही थी। उन दिनों मैं वहीं था। कुलपति अशोक वाजपेयी लखनऊ पधारे थे। विशेषज्ञ के रूप में अनुसंधित्सु का साक्षात्कार लेने के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय के भाषाविज्ञान के प्रोफ़ेसर मेरे मित्र आर.एस. शर्मा आये थे। समिति के एक सदस्य जे.एन.यू. के प्रो. कपिल कपूर भी थे। पर वह योग्यता पर प्रश्न करने का आग्रह करते थे और अन्त में स्वयं भी प्रश्न किया करते थे। इसी बीच अपने अनुक्रम पर जब एक छात्रा इंटरव्यू-कक्ष में इंटरव्यू देने आयी तब वाजपेयी जी ने उसे बैठने के लिए कहाँ, आरंभिक औपचारिकताएँ पूरी करने के तत्काल बाद उनसे स्वयं कुछ प्रश्न करना आरंभ किया, क्योंकि वह रूस में रह चुकी थी, रूसी जानती थी और उसी पर शोध भी करना चाहती थी। उस अभ्यर्थी का विषय रूसी-हिंदी भाषा-साहित्य पर आधारित और शीर्षकित था। वाजपेयी जी उससे रूस जाने के बारे में, वहाँ के शहरों में घूमने के बारे में और अपनी देखी जगहों को उसके द्वारा देखे जाने या नहीं देखे जाने के बारे में पूछते रहे। वह उसके महत्त्व को भी उसे समझाते हुए पूछते रहे। उसका रूसी भाषा पर अधिकार जानने के लिए रूसी भाषा के कुछ शब्द और एक-दो वाक्यों का हिंदी अर्थ उससे मैंने जानना चाहा तब यह जानकर कि मैं रूसी जानता हूँ वाजपेयी जी ने स्वयं पूछना बंद कर दिया। बैठक समाप्त होने के बाद चाय-पान करते समय मेरी उनकी कुछ अनौपचारिक बातें हुईं। यहीं मैं यह जान सका कि वाजपेयी जी ने अधिकाधिक विदेश-भ्रमण किया है। डॉ. जैन ने वहाँ लंच की सारी व्यवस्था कर रखी थी। पर वाजपेयी जी किसी के घर पर ठहरे थे। रेखा जी प्रतीक्षा कर

रही होंगी। अतः वह तुरन्त वहीं लंच करने चले गए। इस बैठक में दो-तीन घंटे साथ-साथ रहने के बाद मैंने उनके व्यक्तित्व के विषय में कुछ निष्कर्ष निकाले। इनमें पहला निष्कर्ष तो यह था कि उनमें अधिकारी-अधिकृत का आठवें दशक का बोध जबरदस्त था। इसी तरह अपने विषय में उनमें उच्चता और श्रेष्ठता का भाव भी प्रचुर था। वह अपने को पूरी तरह समर्थ कर्ता मानते थे। दुनिया की बहुत सारी जगहों का भ्रमण कर चुकने के कारण उनका जीवन-विवेक जाग्रत था। पर वह साहित्यानुरागी बन्धुता से भी भरे थे।

मेरा यह अनुमान है कि जब अशोक वाजपेयी ने 'बूढ़ा गिद्ध क्यों पंख फैलाये' जैसा ध्वंसक आलेख लिखा था, तब उसके मूल में नामवर सिंह का आग्रह और अभिप्रेरण भी सक्रिय रहा होगा। हिंदी में ऐसा मारक आलेख लिखवाने का काम नामवर सिंह ने पहले भी किया था। उन्होंने रमेश कुन्तल मेघ को अभिप्रेरित कर महादेवी पर मारक आलेख लिखवा कर उसे अपनी 'आलोचना' पत्रिका में छपा था। डॉ. नगेन्द्र के विरोध में भी मेघ जी से ऐसा ही आलेख लिखकर देने के लिए वह बार-बार कहते रहे। पर नगेन्द्र जी से अपने निजी संबंध रहने के कारण मेघ जी ने वह प्रस्तावित आलेख नहीं लिखा।

भोपाल में भारत भवन का संचालन करने, आयोजन करने और उसे प्रतिष्ठा दिलाने की दृष्टि से अशोक वाजपेयी स्मरणीय रहेंगे। उनके व्यक्तित्व के दो पहलुओं में एक पहलू उनके 'ब्यूरोक्रैट' होने का, प्रशासक होने का है, तो दूसरा पहलू उनके साहित्य-सर्जक, साहित्यानुरागी और साहित्य-संवर्धक तथा पोषक होने का। भारत भवन के माध्यम से उनके व्यक्तित्व के इन दोनों पहलुओं की एकात्मता तथा एकाकारिता से भारत भवन का नाम ऊँचा हुआ। 'भारतभवन' के माध्यम

से उन्होंने नये उभरते हुए और प्रतिष्ठित हो रहे साहित्यकारों का दिशा-निर्देश किया और उन्हें एक उपयुक्त मंच प्रदान किया। इस प्रकार नामवर सिंह की समतुल्यता में अप्रतिबद्ध साहित्यकारों का एक ऐसा शिविर बन गया, जो वाजपेयी जी के प्रति प्रतिबद्ध बना रहा। पर उनके द्वारा आयोजित समागमों और आयोजनों में प्रतिबद्ध और तथाकथित प्रतिक्रियावादी-दोनों ही बुलाये जाते रहे। नामवर जी उनके आयोजनों में अधिकाधिक आमंत्रित होते रहे। इस संबंध में एक रोचक संस्मरण मुझे हिंदी के कवि प्रभात त्रिपाठी ने सुनाया था। नामवर जी कभी-कभी निर्धारित तिथि पर अपनी पूर्वनिश्चित व्यस्तता का उल्लेख कर तिथि को बदलवाने का प्रयास किया करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर वाजपेयी जी ने अपने सुहृदों के बीच कहा कि नामवर जी अपने-आपको क्या समझते हैं? यदि वह नहीं आयेंगे, तो क्या आयोजन सफल नहीं होगा? हम उनके मुखपेक्षी नहीं रहेंगे और उनके बिना ही अपना आयोजन सफल-सार्थक कर लेंगे। वाजपेयी जी ने ऐसा ही किया। बिना नामवर जी की उपस्थिति के वह आयोजन हुआ और बहुत अच्छा रहा। पर आयोजन समाप्त होने के बाद सबके चले जाने के बाद उन्होंने वहाँ उपस्थित अपने कुछ मित्रों से कहा-देखिए, बिना नामवर जी के भी हमारा यह आयोजन कितना सफल रहा, उनकी उपस्थिति में होने वाले आयोजनों से भी अच्छा रहा। इतना सुना कर प्रभात त्रिपाठी हँसने लगे थे और टिप्पणी की थी कि जब हमने नामवर जी के बिना अपने आयोजन को इतना सफल और सार्थक बना ही लिया था, तब अंत में भला नामवर जी का नाम लेकर उन्हें याद करने की क्या जरूरत थी?

वाजपेयी जी वैयक्तिक मुलाकातों में, चाहे वह औपचारिक ही क्यों न हो, मुझे सदैव हँसमुख,

सौम्य और शालीन लगे। 1998 या 1999 का वर्ष था। मैंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग में अपनी बृहत् शोध-परियोजना हेतु आर्थिक अनुदान के लिए आवेदन कर रखा था। अचानक निर्धारित साक्षात्कार-तिथि की सूचना और साक्षात्कार हेतु आने का आमंत्रण मिला। जब मैं निश्चित दिन आयोग के कार्यालय में पहुँचा मुझे निश्चित समय पर अपनी परियोजना पर प्रकाश डालने के लिए विशेषज्ञ-समिति के सामने बुलाया गया, तब मैंने देखा कि वहाँ जो विशेषज्ञ बैठे थे उनमें एक अशोक वाजपेयी थे और दूसरे मेरे मित्र बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर श्याम सुन्दर शुक्ल थे। मेरा विषय था- 'रामचरित मानस' में संकेत-विसंरचनात्मक शैली वैज्ञानिक प्रोक्ति-विमर्श। उन्होंने हँसते हुए कहा आपका विषय बड़ा कठिन और जटिल लगता है। तब मैंने कहा- सुनने से ऐसा ही लगता है और सामान्यतः है भी। पर मेरे लिए ऐसा नहीं है। इस विषय के अंतर्गत मुझे क्या करना है, उसका स्वरूप मुझे स्पष्ट है। अनुमति दें, तो मैं एक उदाहरण से इसके व्यवहार-पथ को समिति के सामने स्पष्ट कर दूँ। उनकी स्वीकृति मिलते ही मैंने मानस के अयोध्याकांड में वर्णित राम, लक्ष्मण और सीता को गंगा पार कराते समय की केवट-विषयक यह प्रोक्ति "सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। विहँसे करुणा नयन चितइ जानकी लेखन तन।" फिर मैंने यह बताया कि यहाँ मैं केवल भाषेतर संकेतों को लूँगा। यहाँ हँसी का आभिप्राय संकेत है। इस संकेत में अर्थ गोपित है। फिर राम द्वारा सीता और लक्ष्मण को देखे जाने का संकेत है। यहाँ भी इसका मर्म गोपित है। इसे शब्दों में बोलकर स्पष्ट नहीं किया गया है। केवट राम के पाँव धोना चाहता है। राम उसे आज्ञा देने के पूर्व सीता और लक्ष्मण को देखते हैं। मानो सीता को

याद दिला रहे हों कि देखो, मेरे पाँव धोने और पखारने का जो सुयोग तुम्हारे पिता को निरंतर था, जिसे उन्होंने तुम्हें मुझे देकर प्राप्त किया था, उसे यह केवट यूँ ही प्राप्त करना चाह रहा है। यही नहीं, लक्ष्मण के पाँव धोने-पोंछने का अधिकार भी माँग रहा है। संकेत से यह बताकर राम केवट को यह अधिकार दे भी देते हैं। इसी प्रकार 'मानस' के हर कांड की ऐसी वार्तालाप कि प्रोक्तियों या ऐसे कथनों में व्यवहृत संकेतों के निहितार्थ का संकेत विज्ञान, शैलीविज्ञान और विसंरचना (डीकंस्ट्रक्शन) के सम्मिलित आधार पर किया जाएगा। वाजपेयी जी प्रभावित हुए और कहा - मुझे विश्वास है कि आप यह कार्य अच्छी तरह सम्पन्न कर लेंगे। मैं उन्हें धन्यवाद देकर बाहर आ गया।

इसके बाद के भी कुछ परोक्ष आंशिक प्रसंग याद आते हैं। गंगा प्रसाद विमल ने मुझे बताया था जब हम लोग संघ लोक सेवा आयोग में सिविल सर्विस परीक्षा की उत्तर-पुस्तिकाएँ जाँच रहे थे। मैं वैकल्पिक हिंदी के परचे में और विमल जी सामान्य हिंदी के परचे में प्रधान परीक्षक थे। चाय पीने की अन्तराल-वेला में उन्होंने मुझे बताया था कि कल संध्या में वह अशोक वाजपेयी के साथ बैठे थे। पारस्परिक बातचीत में जब मेरा नाम आया, तो वाजपेयी जी ने कहा कि बहुत सुपठित और विद्वान व्यक्ति हैं वे। इसके पहले भी लखनऊ के बृजेश श्रीवास्तव ने मुझे बताया था कि उनकी पत्रिका के दूसरे अंक में नामवर सिंह पर मेरी जो प्रत्यालोचना छपी थी, उसे पूरा पढ़ लेने के बाद उन्होंने श्रीवास्तव जी से उस पत्रिका का पहला अंक माँगा था, जिसमें नामवर जी का सम्पूर्ण व्याख्यान प्रकाशित हुआ था। मेरी प्रत्यालोचना ने उन्हें मूल व्याख्यान पढ़ने हेतु विवश किया था।

अशोक वाजपेयी जो चाहते हैं, प्राप्त कर लेते हैं। साहित्य-सेवा के नाम पर 'बिरला फाउंडेशन' की स्थापना की गई थी। ज्ञानपीठ की तरह ही यह फाउंडेशन सरस्वती सम्मान और व्यास सम्मान प्रतिवर्ष साहित्यकारों की श्रेष्ठ पुस्तकों पर दिया करता है। साथ ही एक वर्ष के लिए तुलनात्मक अनुसंधान या अध्ययन करने के लिए शोधवृत्ति भी देता है।

जब वाजपेयी जी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के कुलपति नहीं रहे तब उन्होंने बिरला फाउंडेशन की अनुसंधान वाली शोधवृत्ति के लिए एक कागज पर हाथ से अपना विषय-शीर्षक लिख कर फाउंडेशन के कार्यालय में जमा करवा दिया था। फाउंडेशन के निदेशक बिशन टंडन थे। वह अवकाश प्राप्त प्रभुत्वशाली ब्यूरोक्रेट थे। लगता है, अशोक वाजपेयी के सवालीपन में बिशन टंडन ने उनका यह काम करवाया हो पर यह भी संभव है कि इस शोधवृत्ति को दिलाने के लिए अशोक वाजपेयी ने स्वयं बिशन टंडन से कहा हो और आवेदन याल दिया हो। 2004-05 में इसकी निर्णायक-समिति के सदस्यों में प्रो. चंद्रकान्त बांदिडवेडरक और प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल थे। निश्चित समय पर बैठक हुई। योग्यता में अभ्यर्थी को सभी ने उसके सटीक विषय पर उसकी प्रस्तावना, रूपरेखा, विषय की सोद्देश्यता और सार्थकता आदि से संतुष्ट होकर समिति में जब निर्णय कर दिया तब बैठक समाप्त होते ही बिशन टंडन ने उन्हें अपने कमरे में बुलाया और उनके द्वारा इस किये गए निर्णय के विषय में पूछा। इससे अवगत होते ही उन्होंने कहा- आप लोगों ने अशोक वाजपेयी को इस वर्ष की शोधवृत्ति नहीं दी। सदस्यों ने कहा- उनका तो केवल एक कागज पर विषय-शीर्षक और कुछ पंक्तियाँ ही लिखी थीं। वह

समकालीन भारतीय भाषाओं की कविताओं का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं। पर उनकी न रूपरेखा है, न प्रयोजन, न सोद्देश्यता और न इन्होंने प्रपत्र पर इसे भर कर दिया है। बिशन टंडन ने उन्हें अशोक वाजपेयी को शोध-वृत्ति देने के लिए कहा और उन्हें आश्वस्त किया कि ये सारी खामियाँ दूर करवा देंगे। समिति को विवशता में यह करना पड़ा। यह पूरी घटना बड़े दुःखी मन से मुझे चंद्रकान्त बांदिडवेडरक ने विस्तार से बतायी थी। मुझे भी समिति का निर्णय बदलवा देने की अन्तःकथा से आश्चर्य हुआ था। वाजपेयी जी इस वृत्ति के लिए उपयुक्त सिद्ध हो सकते थे। पर कागजी कमियों को बैठक से पहले ठीक करवा दिया जाना चाहिए था। संभव है समिति ही उन्हें चुन चुकी होती।

याद आता है, उनका 'आविन्यो' उसको पढ़ते हुए अशोक वाजपेयी की एक कविता मेरे मन-प्राण में बस गई थी। वह आज भी रची-बसी है। भूली नहीं मुझे। वह कविता एक पत्थर पर लिखी गई थी- 'प्रतीक्षा करते हैं पत्थर'! पत्थर (प्रस्तर) के विषय में ऐसी संवेदना, ऐसा अनुभावन, ऐसी सोच, ऐसा आन्तर गायन मैंने अब तक संस्कृत, हिंदी, बंगला, पंजाबी, मराठी, अंग्रेजी जैसी किसी भी भाषा में नहीं सुना-पढ़ा था। यह एक कविता ही अशोक वाजपेयी को सच्चा कवि बना देती है। भाव है- पत्थर प्रतीक्षा करते हैं, पता नहीं किसकी? पर जो भी हो, वह प्रतीक्षा न किसी देवत्व की है और न किसी काल की। कवि ने अनुभव किया है उसके रेशा-रेशा, शिरा-शिरा का छिलना, वह अनुभव करती है उसकी किसी प्राचीन धुन का आरोह-अवरोह, अभेद्य हृदय में उसका स्पन्दन।

"मेह मिला है, धूलि पतियाँ,
धूप खिलती है, गिरती है आवाज़ें।

माय-भाय करता रात का बियाबान अंधेरा।”

अशोक की कविता का प्रत्यक्ष बिंबात्मक-रूप-विधान कल्पित-रूप-विधान से संश्लिष्ट होकर अर्थ दर्शाने लगता है- “हरे सपने, भूरी पहेलियाँ, पीला पत्ता समय/अंतिम पंक्ति भाषा, आदि अंधेरा/सब घेरता है पत्थरों को।” उसकी अंतिम पंक्तियाँ याद आती हैं- विनाश कविता लिखते हैं पत्थर/पता नहीं, किसकी प्रतीक्षा करते हैं पत्थर?”

भौतिक-विज्ञानी कहते हैं, पत्थरों में भी गति होती है। पर वह गति सोई हुई होती है। अशोक जैसा कवि उसकी उस जीवन्त धड़कन, स्पन्दन का जीवन्त अनुभव करता है और उसे भावों की आँखों के रंग से रंगते हुए तरलायित कर देता है। निःशब्द की गूँज सुनकर वह इस कविता को अविस्मरणीय बना देता है। अंग्रेजी में लिखी हेनरी वॉन की कविता से कहीं बड़ी अहसास-भरी कविता है यह।

अशोक को समकालीन हिंदी कविता में देहवादी या कि रीतिकालीन काया-केन्द्रित कवि के रूप में बदनाम करने का प्रयास भी किया गया था। पर अशोक की कविता बहुआयामी है। मुक्तिबोध की पंक्तियाँ याद आती हैं- “एक पैर रखता हूँ/कि सौ राहें फूटती हैं/और मैं इन सबसे गुजरना चाहता हूँ।” अशोक की सिसृक्षु स्पृहा ऐसी ही है।

अशोक वाजपेयी की कविता में माँ सहेजती है आसमानी कांच के टुकड़े पर बिछलती सूर्य की कण्ठा। माँ का अहसास कवि के हृदय में कविता बन अंकुरित होता है और फिर पूरी कोंपलों और फूलों के साथ कविता अभिव्यंजित हो उठती है। माँ की आँखों में नई आँखों के छोटे-छोटे दृश्य हैं, माँ के कन्धों पर नये कन्धों का दबाव है, माँ के होंठों पर नयी बोली की पहली चुप्पी है और माँ की उंगलियों के पास माँ के अनेक

सपनों के उग आने का अहसास कवि को होता है और वह अनुभव करता है कि उसकी जन-कथा कितनी ‘ताज़ी’ और अभी-अभी की है।

अशोक वाजपेयी की कुछ कविताएँ मुझे बहुत प्रिय हैं। उनमें एक कविता है- ‘वह नहाती है’। इस नाम की तीन छोटी-छोटी कविताएँ उन्होंने लिखी हैं। जब मैंने इन्हें पहली बार पढ़ा था, तो अनायास निराला की स्नानातुर सरोवर में प्रवेश करती युवती का प्रत्यक्ष रूपविधान स्मरण हो आया था- “दूर गाँव की कोई वामा/आया मन्द चरण अभिरामा /उतरे जल में अवसर श्यामा/ अंकित उर-छवि सुन्दरतर हो।”

‘निराला’ की ‘उर छवि’ की व्याख्या है मानो अशोक की यह कविता। यह उसमें अंकित हुई छवि है और अवसन जल में उतरी युवती की उर-छवि भी है, उर के उभार की कुच और कुचाग्र की छवि भी है। मैं नहीं जानता कि अशोक ने निराला की यह कविता पढ़ी भी है या नहीं। पर ‘अंकित’ शब्द दोनों ही जगहों पर है। वह अपने शरीर को शरीरांगों को, कुचाग्र को, नाभि को, नेत्रों को पानी से नहलाती है या अपने अन्तर्मन को स्मृति-सलिला में उसी से नहलाती है। पहले आशय में वह अपने शरीर पर अंकित नख-शिख चुम्बन की वास-जुठास को धोती है और दूसरे आशय में वह अपने शरीरांगों को अपने अन्तर्मन में चुम्बनों की अधीर लौ में तपते-कसमसाते नहलाती और नहाती है, स्वयं स्नात होती है-“और पाती है सद्यः स्नात कुचाग्रों,/नाभि को/चकित नेत्रों को/उन्हीं चुम्बनों की अधीर लौ में/तपते-कसमसाते।”

इसी शीर्षक की दूसरी कविता में नहाने वाली एकवचन, स्त्रीलिंग अन्य पुरुष सर्वनाम ‘वह’ यह उसकी प्रेमिका के रूप में सामने आती है। पर कवि उसका अमूर्तन करता हुआ उसे ‘मेरा

प्रेम' कहता है- 'मेरा प्रेम छूता है जल को' और 'जल उसकी देह के दिगम्बर वैभव को'। "यहाँ 'दिगम्बर वैभव' को, उसकी सुषमा को पानी की वाष्प-शिथिल आँख धोती-निहारती है। निहारते समय यह आँख अनुभावों से भर उठती है- लज्जा से लाल पड़ी आँख और चकाचौंध हुई जल की आँख' नहाने की ये दोनों ही अभिव्यक्तियाँ देह-सौंदर्य की सात्विकता को उजागर करती हैं। 'निराला' की एक और कविता याद आती है- "यह वही घाट जिस पर हँसकर/वह कभी नहाती थी धँसकर/आँखें रह जाती थीं फँसकर/ कँपते थे दोनों पाँव बन्धु।" पर जो वहाँ विवक्षित रह गया है, उसे अशोक ने यहाँ कह दिया है- 'मेरा प्रेम जल को छूता है'।

उसकी तीसरी कविता भी मुझे 'निराला' की याद दिलाती है और अशोक को प्रियतर बनाती है, जहाँ बंद स्नान घर भी खुला नदी-तट है'। यहाँ जल और शरीर का पारस्परिक लगाव इनकी पारस्परिक पहचान अनुभवगम्य है। दो बार पहले से स्नात इस देह में उत्तुंग और गहरे बसे उरोज को जल पहचानता है, पहचानता है 'श्यामाच्छादित त्रिभुज' को। यह प्रयोग अद्भुत है, जो अभिव्यक्ति की श्लीलता को अक्षत रखता है। कवि कल्पना करता है कि वह 'आँगन के ओसारे' में नहाती है। कविता के गवाक्ष, उसकी आँखों के नीचे, जहाँ से वह यह सब देखती है और विरोधाभास यह कि मानो वह उत्तेजित कविता के जल से ही नहाती हो। आँगन के ओसारे में नहाने वाली वह प्राचीन तन्वंगी अनन्त में, आकाश में जल-वृष्टि के बीच काँपती विद्युत्लेखा बन कर भी प्रत्यक्ष हो उठती है।

अशोक की कविता में रंगों का रेला-मेला खूब है। मुक्तिबोध को भी रंगों से प्यार है और अशोक को भी। हम कविता पढ़ते हुए इन रंगों

को 'सरपास' कर कविता के मर्म तक नहीं पहुँच सकते, क्योंकि इन रंगों में भी अर्थ-लय की गूँज विद्यमान है। उनकी कविता में सांगीतिक शब्दों के भी प्रयोग हैं। ये प्रयोग उनकी कविता को और अमूर्त करते हैं; और उनके कथ्य को अर्थ-विस्तार भी देते हैं।

उनकी एक कविता है- 'एक से पाँच, पाँच से एक'। इसमें वह काल का रूपक स्थल में गढ़ते हैं इसे पढ़ते हुए मुझे तैत्तिरीय उपनिषद् की पंक्तियाँ याद आ गईं- "स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमेच्छत! एकोऽहं बहुस्याम।" अशोक इस कविता का अंत करते हैं- "लीलातुर लीलाधीर ब्रह्म/मुरति।" अशोक की कविता में प्रायः स्वर्ग है, नरक है, ईश्वर है। वह बूढ़ा भी हो जाता है। लगता है उनके यहाँ अँधेरा और वय की तरह वृद्धता का आद्यबिंब भी उभरता रहता है। उनके यहाँ निर्जनता, सूनापन, सुनसान उदासी आदि भी हैं। ये सब निर्मल वर्मा की याद दिलाते हैं। समकालीन कविता में अशोक वाजपेयी की पहचान विशिष्ट है। वह धूमिल और लीलाधर जगूड़ी तथा बाद के अपने समय में अनेक कवियों से अधिक कवित्वपूर्ण हैं। साथ ही मर्मोद्भावन तथा अभिव्यंजन में गहरे हैं। वह सर्वथा मौलिक भी हैं। उनके यहाँ सांस्कृतिक स्मृतियाँ सुरक्षित हैं और कल्पना किसी भी रूप में अरक्षित नहीं है, जैसा अनेक समकालीन कवियों के यहाँ मिलता है। वह पिष्टोक्ति के कवि नहीं हैं। 'समय के उद्यान की नारंगी आभा' उनकी कविता है, 'देखने के पहले नेत्र दृश्य है' जैसी अभिव्यक्तियाँ जहाँ पाठकीय बोध को चुनौती भी देती हैं। इसी का मर्म इस पंक्ति में निहित है- "बचपन की हैरानी अब तक गई नहीं। अपने आंतरिक निर्मल अबोधपन से वह बाह्य का पर्यवेक्षित करते हैं। जब कविता के रूप में मुखर होता है, तब मुझे ही

नहीं, कविता के किसी भी सही पाठक को आह्लादित कर जाता है। कविता की दुनिया में अशोक वाजपेयी के सदैव विद्यमान बने रहने की क्षमता है। उनकी कविता काल का अतिक्रमण करती है और अनुभावन का गहन अंकन करती है। उनके कवि की दोनों आँखें काल की दृष्टि भी है और स्थल का व्यापक दृश्य भी है।

अशोक प्रकृति, संस्कृति, मिथक, ब्रह्म, परिवार, समाज काल, स्थल, अनुभावन और चेतना के अन्तर पाठों के कवि हैं। वह अज्ञेय और मुक्तिबोध के बाद समकालीन हिंदी के तीसरे

बड़े कवि हैं।

अशोक वाजपेयी एक लम्बी अवधि तक 'जनसत्ता' के स्तम्भ-लेखक रहे हैं। इसके माध्यम से अनेक विषयों पर उनकी सोच मुखर हुई है। हाँ, उन्हें साहित्य में राजनीति करने से परहेज नहीं है। साहित्य अकादमी पुरस्कार लौटाने का नेतृत्व करने के समय वह विवाद के घेरे में भी रहे। इन दिनों वह रज़ा फाउंडेशन को देखते हैं। इस मंच से वह साहित्य के वाचन और लेखन को ऊँचा उठाने और श्रेष्ठ बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका बना सकेंगे, ऐसी आशा है।

संपर्क : पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु', 'साईकृपा' 58, लाल एवेन्यू, डाकघर- छेहटा, अमृतसर,
पिन-143105 (पंजाब), मो. 09878647468

लीलाधर जगूड़ी : अकविता के तांडव से सभ्यता के पेंचों तक भाया मनुष्य-मन

शशिभूषण द्विवेदी

इस इक्कीसवीं शताब्दी में - जब साहित्य की दुनिया महाकाव्य, तगण, मगण, दोहा, चोपाई, सवैया, सोरठा आदि से काफी आगे इन्हें छोड़कर, या नजरअंजाद कर निकल गई है। हालांकि इसे एक वांटी-साजिश, साहित्य-कर्मियों की अक्षमता, या उस माननीय प्रवृत्ति के रूप में भी देखा जाना चाहिए, जिसके कारण मनुष्य निरंतर अज्ञानी की तरह प्रवृत्त और आकृष्ट होने वाला प्राणी माना गया है; और इस तरह का साहित्य रचने के लिए ज्यादा लगन, ज्यादा मेहनत और अकूत शब्द भंडार के साथ अकूत प्रतिभा की भी आवश्यकता थी, और उस तुलना में गद्य में सब कुछ लिखना आसान है। मतलब कि 20वीं शताब्दी के लेखन का एक पक्ष वह कहानी भी हैं; जिसे लेखन की असानी मान लिया गया। यह एक पूरे विमर्श का विषय है। खैर!; और महाकाव्य का स्थापनापत्र उपन्यास को, और शास्त्रीय कविता, या व्याकरण के **छन्द विचार** के आश्रय वाली कविता को नई कविता के रूप में गद्य में स्वीकार कर लिया गया है; तो एक बहुत ही लिबरल या प्रजातांत्रिक संस्कृति को स्वीकार करके इन सब पर विचार करने वाले आदमी के सामने साहित्य मात्र या उसकी कविता समेत उनके विधाओं को समझने की कौन-सी कसौटियाँ बचती हैं; जिनको आधार-भूमि की तरह इस्तेमाल करके साहित्य की एक नैतिक, स्वीकार्य, उदात्त, सातत्यता से भरी, सर्वग्राही भूमिका बन सकती है?...एक प्रश्न तो यह!! और दूसरा प्रश्न ! संदर्भों, समीकरणों, विश्लेषणों, विमर्शों, भाषाई मापदंडों आदि को वैगलने के बाद, एक जो बड़ी कसौटी बची रहती है वह सार-संक्षेप के रूप में क्या **समय** नाम की शाश्वत परिघटना हो सकती है; क्योंकि मनुष्य-जीवन और उसके कार्यकलापों आकांक्षाओं का रिमोट उसी के पास होता है? नायक-नायिकाओं और उन्हें हर समय प्रभावित करने वाली आनुषंगिकताएँ तब क्या इसी वृत्त की त्रिज्या और केन्द्रक होते हैं और सब को इसी से शुरू होकर - सब जन्म मुझी से पाते हैं / फिर लौट मुझी में आते हैं। कहने वाले कृष्ण की उक्ति की तरह (दिनकर : रश्मिरथी) इसी में लौट आना होता है और - **पोस्ट-ट्रूथ** के इस उलझाऊ युग में यही एकमात्र सच है? तो क्या बाकी **सचों** का रिमोट इसी के पास है?

मेरे इन प्रश्नों का जवाब अगर मुझे देना हो तो कहूँगा कि यह ही लगभग पक्का हो गया कि किसी रचनाकारों को उसके समय और उसकी आनुषंगिकताओं के साथ ही समझना पड़ेगा और विमर्शकार को इस बात का

ध्यान रखना होगा कि इतिहास अगर उसे किसी बिंदु पर चूकता हुआ लगे, या चूक जाए, तो साहित्य और उसका विमर्श आगे आकर इतिहास की भूमिका में खड़े हो जाए। मैं प्रायः यह प्रस्तावित करता रहा हूँ कि आलोचना और साहित्य ऐसा हो, या उनका चुनाव ऐसा हो कि उन्हें अपने समय के इतिहास की तरह भी पढ़ा जा सके; क्योंकि साहित्य जीवन को उसकी पूरी चौहद्दी और आर्यतन में पकड़ने की कोशिश करता है; जबकि इतिहास की विडंबना है कि वह वर्चस्व शक्तियों को अपने लिए पकड़ता है। बाकी ज्ञानानुशासनों के साथ भी यही उदारता बरती जानी चाहिए; हालाँकि, इतिहास के अतिरिक्त दूसरे ज्ञानानुशासन इस संदर्भ में साहित्य की मदद कम करेंगे। ज्ञान की दूसरी शाखाएँ भी चूँकि शब्द निर्भर होती हैं और शब्द साहित्य से आते हैं; इसलिए वे भी आज की शब्दावली में कमांडों की भूमिका में हो सकते हैं। यह आज के समय का तकाजा भी है और भूतकाल की उदारता भी इसलिए कि वर्तमान उसी पर फलता-फूलता है और भविष्य के समय की सजगता भी; जो आज के समय के साहित्य को मंच भी देता रहा है और उसे स्वीकार करने का एजेंडा भी रहा है। तो इन तर्कों को आधार बनाकर अगर आप के एक बड़े कवि, लीलाधर जगूड़ी को समझना हो, तो क्या निष्कर्ष निकालेंगे? - आइये देखें ; कहा जा सकता है कि शब्द या शब्दों के विभिन्न आयामों और कोणों को कविता के लिए संजो लेने वाले साहित्य-आंदोलनों से निकल अपने को कविता का प्राणी बना लेने वाले कवि लीलाधर जगूड़ी हमारे समय के ऐसे कवि हैं जिनके व्यक्तित्व और लेखन में **समय** काल, कालखंड, महाकाल, अकाल आदि शब्दों से या शब्दों में अपनी इयत्ता ढूँढ़ता एक ऐसे महामानव

की तलाश में है, जो मनु की तरह सभ्यता या सभ्यताओं में अवगाहन कर सके, और उनमें से अपने समय के लिए कुछ ऐसा पा सके, जो मनुष्य-जीवन और इनकी आनुषंगिकताओं की सहायता से एक ऐसे मनुष्य समय या मनु के प्रतीक वाले मानव - समय का निर्माण कर सके; जहाँ सब कुछ दर्पण जैसा साफ सुथरा हो, और मनुष्य-जीवन को जो भी उसकी बेहतरी के लिए चाहिए, वह सब वहाँ उपलब्ध हो। जहाँ शब्द मनुष्य और जीवन के आयामों में सक्रिय भागीदारी निभाते हुए उसे शुद्ध प्रजातांत्रिक-ढाँचे की एक इत्ता बनाने में सक्रिय सहयोग करें। ऐसा मनुष्य अगर जीवन के साथ कोई बेइंसाफी करे तो समय उसकी नकेल पकड़, उसकी औकात बताकर, सीधे रास्ते पर लाकर दायित्वों के प्रति ऐसा सजग कर दे जैसा अपने समय-जीवन-मनुष्य-सभ्यता आदि को गद्य कविता में पिरो देने वाले **अकविता** वाले दौर के कवि श्री जगूड़ी ने किया है।

श्री जगूड़ी के यहाँ कविता मनुष्य और सभ्यता के बीच की कशमकश और उसमें हमारे आप जैसे राजनीतिक मनुष्य के बहुआयामी विमर्श को खोजने का एक उपादान है। इस उपादान को संभल-संभल कर कसी हुई रस्सी पर चलने वाले नट की तरह चलना है, क्योंकि राजनीति का खलनायक वहाँ दुर्योधन, कंस, रावण, शकुनी की हर परंपरागत भूमिका में राम, कृष्ण, युधिष्ठिर आदि का प्रतियोगी बना अपनी जीत तय मानकर चल रहा है। उनके कविता संग्रहों (मेरे पास आठ हैं) के सार के रूप में अगर मुझे यही सूझ रहा है तो इसके लिए मेरे अपने तर्क हैं और **गुड़िया के अंदर गुड़िया** वाली बच्चनश्री की कविता की तरह उन तर्कों के भी तर्क हैं; क्योंकि तर्क और प्रश्न विमर्शों को रोकते नहीं हैं; उन्हें आगे

बढ़ाते हैं।

वैसे श्री जगूड़ी के यहाँ इतिहास, मिथक, प्रवृत्ति, क्लासिकी, परंपरा आदि के क्षेपक और क्रौंघ या पहाड़ी, प्रतिध्वनियाँ भी कम नहीं हैं; लेकिन ये सभी उस **मनुष्य** ('अनुभव के आकाश में चाँद' नामक संग्रह जिस पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला) की मदद के लिए हैं जो 'नया मन-बना हुआ' (नए मनु की प्रेम गाथा) नामक संग्रह जो एकदम ताजा है) नई-सभ्यता के उन-पंचों के समझने-समझाने में लगा है जो एक ऐसी दुनिया बनाए जहाँ सभ्यताओं की मारामारी या 'क्लेश ऑफ सिवलाइजेशन' का उलझाऊ और भ्रामक मुहावरा नहीं हो; क्योंकि यह मुहावरा भी **वर्चस्व** की कोख से ही पैदा हुआ है जिसकी पूरी गवाही के सारे दस्तावेज इतिहास, साहित्य और दूसरी ज्ञान-शाखाओं के पास हैं। उनकी कविता एक ऐसा मनु खोज रही है जिसका विश्वास न ही इतिहास के अंत में है और न उपन्यास और कविता के अंत में और न **कविता की वापसी** की घोषणा वाली कूपमंडुकता में। वह उस **सातत्य** का समर्थक है जो सही क्रांतियों की तरह सभ्यताओं के उदात्तीकरण की एक मात्र शर्त होती है। श्री जगूड़ी का हर संग्रह उस संग्रह से आगे के समय में एक सार्थक घुसपैठिया-हस्तक्षेप करता प्रतीत होता है। संभवतः इसीलिए **अकविता** के साठ-सत्तर के दशक से इस शताब्दी तक के लगभग पचास वर्षों में फैला उनका काव्य-विवेक नए मनु तक के किसी समय-कतरे को **रात अब भी मौज** कविता में छोड़ नहीं पाता और कभी आपातकाल तो कभी मीडिया सब उनकी जद में शब्द और शब्दों के विभिन्न आयाम, कोण और संदर्भ के साथ आवाजाही करते हैं। उनके पास एक सधे नट की तरह शब्दों को चलाने का स्वाभाविक हुनर है क्योंकि संस्कृत-साहित्य के

विशद अध्ययन से उनका शब्द-भंडार लबालब है। इसीलिए साहित्य अकादमी से लेकर व्यास-सम्मान तक की उनकी काव्य-यात्रा में, -जो समय-समय पर सामयिक गद्य (रचना प्रक्रिया से जूझते हुए) से भी धनी होती रही है - कोई व्यवधान नहीं है। उनके दस से ज्यादा काव्य-संग्रह इसके गवाह हैं। मैं अपनी गवाही के लिए इन्हीं संग्रहों की शरण में जाऊँगा!

उनके संग्रहों की शरण में जाने से पहले कविता पर जगूड़ी क्या सोचते हैं, इसे देखना महत्वपूर्ण होगा। संग्रह **घबराए हुए शब्द** में एक छोटी सी टिप्पणी में वे कहते हैं - "मनुष्य में तात्कालिक स्वभाव में तत्त्वदर्शी, शैली से सभी विधाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली, कथ्य में सबकी आवाज लिए हुए, विन्यास में सर्वाधिक नाटकीय और असर में एकदम धर्म - सरीखी में हर बार एक ऐसी कविता लिखना चाहता हूँ क्योंकि कविता ही है जो हर युग में अपना धर्म सबसे पहले पहचान लेती है।"

अब अगर इस टिप्पणी का ही विश्लेषण ठीक से हो जाए तो सारा मामला साफ हो जाएगा। सारांशतः कहा जा सकता है कि ये पंक्तियाँ एक तरफ तो कवि का निकष कहे जाने वाले अद्भुत गद्य का नमूना हैं और दूसरी तरफ कविता या कवि कर्म के उस फंक्शन (अंग्रेजी के 1923 के नोबेल पुरस्कार विजेता कवि विलियम बटलर इट्स पर लिखते हुए 20वीं शताब्दी के बड़े कवि लूइस मैक्नीस का शब्द) का उद्घोष भी जिसे कई लोग स्वीकार और कई लोग अस्वीकार करते हैं; लेकिन दुनिया की हर मनुष्य केन्द्रित वस्तु की तरह उसका महत्व तो मानना ही पड़ेगा क्योंकि जीवन और मनुष्य मिलकर जिस सभ्यता का निर्माण करते हैं, उसमें कविता की भूमिका पाताल, धरती, लोक और दिगंत

होती हुई उस आसमान तक फैली है जो जीवन के लिए छाता की तरह है और जिसे कवियों ने जाने कितने रंग दिए हैं और जिसमें *दिशाओं* से लेकर *ऋतुओं* तक के रंग (उनके एक संग्रह का नाम है - *ग्यारहवीं दिशा की सातवीं ऋतु*) फैले हुए हैं। श्री जगूड़ी जब कविता को हर युग में अपना धर्म पहचान लेने वाली कहते हैं तो उनका अप्रत्यक्ष इशारा क्या यही नहीं है कि सभ्यताओं के संकट को कविता के नजरिए से देख कर संकटों का समाधान खोजा जाए और क्लेश की गुंजाइश को समाप्त कर दी जाए; इसे बड़े कवि की अंतर्राष्ट्रीयता की कसौटी पर भी परखा जाना चाहिए। और कविता का स्वीकार तर्क तो यह है जिसकी वकालत उनके संग्रह *घबराए हुए शब्द* की। *यार से बातचीत* नामक कविता की कुछ पंक्तियाँ करती हैं जिनमें जीवन का एक तर्कशास्त्र मौजूद है। देखा जाए -

क्योंकि तुम मुझे चाहते हो
इसलिए पाना चाहते हो
तो मैं भी तुम्हें चाहता हूँ
समूची जिन्दगी के अलावा
तुम्हारे पास और क्या-क्या है?
जिसे तुम आत्मीयता कहते हो
उसे मैं तुम्हारी आँख, कान, नाक
और जुबान सहित चाहता हूँ
मैं तुम्हारा कलेजा तुम्हारा हृदय
तुम्हारी प्यारी से प्यारी विचारधारा
यानी कि तुम्हारा सब कुछ चाहता हूँ
और अंत में सिर्फ इतना ही कि
जब मरोगे

छिटपुट भी मेरी किस नाम से
और पूरे भी मेरे किस नाम से मरोगे
कहने की आवश्यकता नहीं कि इन पंक्तियों में जीवन को संपूर्णता में समझने का वह आह्वान

है जो आपके समय को चिढ़ाने वाला) इसलिए भी है कि आज आँख के डॉक्टर के पास कान का या पेट का इलाज नहीं है। हमारी परंपरा में नब्ब देखकर सारी बीमारियाँ समझ लेने की क्षमता रही है; क्योंकि उस परंपरा ने मुकम्मल मनुष्यों की खोज जीवन को दी; जिनसे सभ्यता या सभ्यताओं का सातत्य उदात्त हुआ और समाज ने रावणों, कंसें, शकुनियों, दुर्योधनों का सामना करने के लिए राम, कृष्ण, विदुर (ज्ञानानुशासन), युद्धिष्ठिर (धर्म) आदि का साथ जीवन खोकर दिया। तभी तो सभ्यता बची और लगभग तीन हजार सभ्यताओं में से अरनोल जे टॉयनबी अपनी दस जिल्दों वाली विश्वप्रसिद्ध पुस्तक *अ स्टडी ऑफ हिस्ट्री* में आज जिन सिर्फ बीस से पचीस के बच्चे होने की बात करते हैं; वे उन्हीं की शब्दों में वही हैं जो *रचनाधर्मी* यानी क्रिएटिव (यानि घुमा-फिराकर साहित्य या कविता) थीं। यह किताब यूरोप की बीस बड़ी किताबों में गिनी जाती है। टॉयनबी कई अंतरराष्ट्रीय ख्याति के विश्वविद्यालयों में अंतरराष्ट्रीय इतिहास यानी इन्टरनेशनल हिस्ट्री के प्राध्यापक रहे थे। सवाल तो उठेगा ही कि क्या कोई लेखक या कवि अप्रत्यक्ष रूप से जाने-अनजान कुछ ऐसा कह देता है जो उसे बिरादरी में ला खड़ा कर दे? उनका संग्रह *जितने लोग उतने प्रेम* मनुष्य के जीवन में इसी तरह सभ्यता की भूमिका को समझने का प्रयास कहा जा सकता है। इस संग्रह की एक कविता है *जन्म-जन्मांतरों से*। यह शीर्षक ही इस तथ्य के लिए काफी है कि परंपरा से यानी अतीत या भूतकाल से कटकर न तो जीवन को कुछ हासिल होगा, न मनुष्य को, और सभ्यता तो होगी ही नहीं। इस पूरी कविता में विपरीतता की रोशनी में सभ्यता और समय की चीड़-फाड़ हिन्दी कविता की उपलब्धि है।

इसलिए मैं यह पूरी कविता उद्धृत कर रहा हूँ।
जन्म जन्मांतरों से सँवारी
जाती दुनिया को
कुछ और तरह से भी सोचो
जैसे तुमने सोचा गुफा के बदले मकान
मॉल के अन्दर बाजार
और बाजार के अन्दर मेला
जैसे फटे को सिलने के लिए
तुमने सोचा सुई-धागा
पैदल के बदले साईकिल
उड़ने के बदले सोचा हवाई जहाज
जैसे तुमने सूरज की किरणें
रात के उजाले से जोड़ दीं
और चाँद तक की दूरी सिल दी पृथ्वी से
वैसे ही इस दुनिया को कुछ
और तरह से भी सोचो
धर्म की खोज में शुरु हुई
उस दुनिया के धर्मों की तमाम
खामियों में सोचो...
सोचो कि मनुष्य होने के धर्म को
इस पृथ्वी सहित कैसे
बचाया जा सकता है;
खूबियों को जिन्होंने झूठा करार दिया
उन संस्थाबद्ध धर्मों और ठेकाबद्ध
आतंकों के बारे में सोचो।
कोई और तरह का विस्फोटक ढूंढो
जो धर्म न हो...
ऐसा कुछ करो कि श्मशानों और कब्रगाहों से
न पहचानना पड़े इस दुनिया को
ना के लिए **हाँ** कहने वालों
एक बार **हाँ** के लिए भी तो
ना कहकर देखो
सभ्यता, धर्म, व्यंग्य, समय, भूमंडलीकरण
(भूमंडलीकरण यही तो हो गया है), आविष्कार-

विकास आदि वे सभी तत्व जो सभ्यता के सातत्व में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं; सब इस कविता में परंपरा के आनुषंगिक उपकरण की तरह आई हैं। राजनीति यहाँ एक भीगी-बिल्ली की तरह सब कुछ सुन-पचा रही है लेकिन उसकी हिम्मत नहीं कि कोई टिप्पणी करे। यह आह्वान सिर्फ मनुष्य को है - उस **फंक्शनल** मनुष्य को जो जन्म-जन्मांतर से सब कुछ करता-कराता नियंता की भूमिका में सारी **कायनात** की पृथ्वी यानी जड़ रहा है; और जो समय के रंग-रूप-आकार-प्रकार को बनाने और बदलने में रसायन शास्त्र की क्रिया-प्रतिक्रिया और उत्प्रेरक के साथ-साथ एक और ज्ञानानुशासन गणित का गुणनफल भी रहा है। याद करें अज्ञेय **नदी के द्वीप** में एक पात्र एक जगह कहता है : हम गुणनफल के अन्वेषी हैं। आप भागफल खोज रहे हैं। यह अनायास नहीं है कि अज्ञेय जैसे पारखी ने ही अपनी ऐतिहासिक पत्रिका नये प्रतीक में श्री जगुड़ी की 'महार' लंबी कविता 'अनुस्मृति' के 1973 में छापा था; जो अपने बनाए रूप में एक प्रबंध काव्य के रूप में सामने आई है : नए-मनु की प्रेमगाथा बनकर। मैं एक वर्ष से ज्यादा समय से श्री जगुड़ी के लेखन से जुड़ा रहा था। लेकिन थोड़े दिन पहले मेरे पास पहुँची इस किताब ने मेरे सारे पट खोल दिए और मुझे मेरा स्त्रोत मिल गया। इस किताब में भी मनु को अपने सारे स्रोत या कुल प्रकृति में ही मिलते हैं। शुरुआती पंक्तियाँ इसकी गवाह है :-

रोज एक असंभव से शुरु होते थे हम
रोज किसी संभावना तक पहुँचते थे
कभी एक नीली पत्ती के रंग के नीचे
सारा जंगल आ जाता
कभी समूचे जंगल में
नीली पत्ती खो जाती

कभी वह पत्ती हरे आकाश
में बदल जाती
फिर किसी संक्रमण की तरह
सारे जंगल में फैल जाती
जंगल हमें दबोचता था
और आकाश हमें मुक्त करता था....

प्रकृति के उपादानों में मची कशमकश
मनुष्य की बेहतरी के लिए है, या उसकी बदतरी
के लिए; यह निष्कर्ष इन पंक्तियों की प्राण-उष्मा
है। उत्तराखंड के टिहरी के पास के गाँव में जन्में
इस कवि के प्रकृति-प्रेम पर तो शक की गुंजाइश
ही नहीं है लेकिन यही प्रेम कविता में उनकी
मानवीय प्रतिबद्धता और कन्सर्न बनकर भी सामने
आया है; और हर प्रतिभाशाली कवि-व्यक्ति की
तरह श्री जगूड़ी ने जिस तरह प्रकृति नाम की
वस्तु को कविता-तत्त्व से भरपूर कविता बनाया है
वहाँ आप की अस्सी प्रतिशत छंटनी लायक कविता
में उनका मकाम ऊँचा करता है। वैसे तो संसार
में है तो सब कुछ लेकिन सबको कविता की
आत्मा से लैस कर देने के लिए तर्कातीत-कवि-
प्रतिभा की आवश्यकता होती है। यह प्रतिभा इस
समय के अंगुली पर गिन लिए जाने लायक
कुछेक कवियों में ही है। श्री जगूड़ी उसी
अल्पसंख्यक जमात में हैं। इसी पुस्तक का एक
और अंश उनके काव्य विषय और काव्य व्यक्तित्व
दोनों का ताल ठोक उदाहरण है :-

युद्ध लगातार युद्ध
पानी से युद्ध हवा से युद्ध
सपनों से युद्ध, अपनों से युद्ध
बय के विरुद्ध अचानक से युद्ध
सशरीर भिड़ना किसी से पूरे जंगल
को मथते हुए...
अचानक दोनों का अलग होकर
हाँफना और सुस्ताना

उसी दुर्धर्ष हाँफते हुए क्षण की शांति में
हरेक के भीतर दहशत ने दोस्ती का एक
दरवाजा खोला
भय और पराजय से मिली सफलता के बाद
शुरू हुई यह दुनिया विजय में बदल गई
लेकिन आदमी अब भी
दाँतों और नाखूनों के बदले
हथियारों का मोहताज है
ज्यों-ज्यों हम हारते गए
हमने जाना सभ्यता शुरू हो गई है
हमने जाना कि साँस लेने की
और जीवित रहने की सरलता
कितनी जटिल है...

ये पंक्तियाँ इस बात की गवाह है कि
दुनिया के आगे बढ़ने का क्रम यानी इट्स के
शब्दों में प्रोसेस ऑफ द एडवांसमेंट ऑफ
सिविलिजेशन जितना कठिन और कितना दर्दनाक
और कितना द्वन्द्वमय रहा है और इन सारी
जद्दोजहद की जड़ में रही है उसकी कभी भी
हार नहीं मानने वाली हेमिंग्वे के ओल्ड मैन एंड
द सी के बूढ़े मछुआरे जैसी जिजीविषानुमी मनुष्य
की टैगोर के सब के ऊपर मनुष्य यानी सबारे
उपर मानुष बनाए रखती है। प्रकृति शायद जानती
है कि जो भी करेगा मनुष्य ही करेगा; बर्बाद भी
और आबाद भी। यह द्वन्द्व चिरंतन है जिसे श्री
जगूड़ी ने दाँत और नाखून, सरलता और जटिलता,
शांति के भीत, दहशत, हार और सभ्यता की
शुरुआत के शब्द-युग्मों से कविता के अनुशासन
में बदलकर उसे दर्शन, समाजशास्त्र इतिहास
आदि अनुशासनों की प्रजातांत्रिक काया में बदल
दिया है। इन सबको साहित्य और ज्ञानशाखाओं
की दोस्ती की रोशनी में भी समझने का एक
देरिदाई करिश्मा यहाँ है जो डिक्न्सट्रक्शन
विखंडन को पूरी छुट देता है। शब्दों के अलग-

अलग प्रयोग से श्री जगूड़ी अद्भुत काम लेते हैं यह इसका भी उदाहरण है। इसलिए शब्दों से खेल, उनके आयामों-कोणों की समझ और उनकी रचनाओं के समय-खंड या टाइम-स्पेस को समझने से बाकी सब तर्क मुकम्मल हो जाएंगे। देखा जाए -

वे हिन्दी के बहुआयामी और बहुकोणीय बनाने वाली संस्कृत-साहित्य की पृष्ठभूमि वाले ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं में भाषा के कोण बदल-बदल कर देरिदा के विखंडन को एक मानक स्वीकार्यता देते हैं; और उसे इतना खुला छोड़ देते हैं या इतना खुला स्पेस दे देते हैं कि उसकी प्रजातांत्रिकता सामाजिकता का बहुआयामी विमर्श आमंत्रित करने लगती है; और इसलिए उनकी कविता का समाजशास्त्र बहुत बड़ा है। उनके संग्रह **घबराए हुए शब्द** में एक कविता है **सिक्के**। इस कविता का पूरा कलेवर इसी आयाम और कोण का अद्भुत नमूना है। पूरी कविता में शब्द दूसरे शब्दों से ऐसे बहुआयामी शब्दों के साथ सटे हुए हैं कि विखंडन को भी थोड़ा बहुत पसीना आ ही जाएगा। इसलिए इस पूरी कविता को समझने के लिए मैं उसे पूरा उद्धृत कर रहा हूँ। देखा जाए :-

सिक्के

जिस समय कोई आत्मा बिक रही होगी
ये सिक्के अखंड और अभेद्य रहेंगी
आत्मा किस अठनी का नाम है?
वह जो एक संतरा देती है, या दो केले
एक गिलास गन्ने का रस
या एक गड़ड़ी पालक
या जो सौ ग्राम टमाटर देती है
आत्मा किस अठनी का नाम है?
इन सिक्कों में से किसमें
मेरी आत्मा की सबसे बड़ी

खुशी भरी है?
दुनिया कभी भी एक साथ
नहीं बिकती
वह हर आदमी के साथ
अलग-अलग बिकती है
वे बार-बार लौटेंगे

और अपनी घटी हुई कीमत से भी
दुनिया को खरीद लेंगे..

ध्यातव्य है कि इस अद्भुत कविता में सिक्के, दुनिया, खरीददारी के समान और आदमी के बीच का रिश्ता एक छोटे से अक्षर का शब्द **वे** बनाता है। जिसकी व्याख्या इतनी व्यापक है कि इस बहुवचनात्मक-सर्वनाम में समय के वे सारे पात्र समेट लिए गए हैं जो आदमी और दुनिया के रिश्ते में बार-बार लौटकर सभ्यता के सातत्य में की एक शृंखला बनाते हैं; जिसमें कृष्ण के विराट रूप की संरचना जैसा सब कुछ घटित होता रहता है। कृष्ण दिनकर की **रश्मिरथी** में कहते हैं, - 'यह देख जगत का आदि-सृजन। यह देख महाभारत का रण।' लेकिन श्री जगूड़ी की पंक्तियाँ अठनी, टमाटर, संतरा आदि की जुगलबंदी से एक अर्थशास्त्र भी गढ़ती हैं जो हमारे समय की भूमंडलीकरण जो अब दिमाग के मंडीकरण तक को दबोच लेने पर आमादा है - कि फोटोग्राफी का भी नमूना है और याद रखने लायक सचाई यह कि : कविताएँ झूठ नहीं बोलतीं। और बड़ी कविताएँ यही तो करती हैं कि वहाँ झूठ भी सच बनकर नहीं आ पाती है। यही तो कविता की शाश्वत-शक्ति है; जो मनुष्य के भी पहले समय के साथ शुरू हुई। इस तरह के और शाब्दिक आयाम उनकी असंख्य पंक्तियों में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सभी रूपों में विद्यमान हैं। इन पंक्तियों में इसे बखूबी पकड़ा जा सकता है :-

वे चट्टानें भी खिसकने लग गई हैं

जो पसलियाँ थी और जिन्होंने
चिड़ियों के प्यार में
दरख्तों के सपने देखे थे
जिन पर पिछली लड़ाइयों की तरह
बेजान तमगों की तरह एक-एक टूट जैसी
बर्बरता की मोहरें हों -

यहाँ कविता की नाजुक भाषा में दरख्तों
से सपनों की बात से शुरु होकर टूट जैसी जिस
बर्बरता तक कवि पहुँचता है; और जिस तरह वह
कविता की अपनी एक विशद शब्दावली या मुहावरा
आविष्कृत करता है वह राजनीति की बर्बरता को
प्रकृति से जोड़कर आधुनिकता के कई विमर्शों
पर कई लंगड़े प्रश्नचिह्न लगा देता है। इसलिए
कविता तांडव की समर्थक कभी नहीं रही। उसमें
इशारे में बहुत कुछ कहने का हुनर इसलिए भी
है कि वह आवश्यकता आने पर बहुत कुछ करती
भी है तो बस बेलून में पिन चुभा देती है। बाकी
काम या फंक्शन वह समाज को सौंप देती है
ताकि सनद रहे !!

इसलिए मेरा मानना है कि शब्दों से तरह-
तरह का काम लेने वाले कवि श्री जगूड़ी अपने
समय यानी 1960 के दशक से अब तक के
समय को सार्थक कविता में विमर्शित करने वाले
ऐसे सजग कवि हैं, जिनके पास कविता को
विभिन्न ज्ञानानुशासनों की तरह भी पढ़ा जा सकता
है; लेकिन यह सब उसी राजनीतिक समय का
हिस्सा है जिसको इतिहास दर्ज करता रहा है
क्योंकि यह इतिहास की मजबूरी है और जर्मन
दार्शनिक नीत्से के अनुसार - इतिहास में बहुत
सारा पागलपन भी होता है। और कवि?? - वह
उस पागलपन का रेफरी है, वरन् श्री जगूड़ी ने
अपने पचास वर्ष के लेखन को सिर्फ समय के
अखाड़े में इतनी पटकनी देकर उसे निचोड़ा
नहीं होता। तो समय का वह कैसा खंड, या

कारक, या इकाई है जिसे श्री जगूड़ी ने पकड़कर
काव्य-काया दे दी। वह साठ के दशक से शुरु
होता है।

1947 में आजाद हुए भारत में 1960 का
दशक या उसकी शुरुआत एक 15 वर्षीय बालक
की तरह माना जा सकता है। 1962 में चीन ने
जब भारत पर आक्रमण किया तो देश में व्यापक
प्रतिक्रिया सबसे ज्यादा कम्युनिस्टों के खिलाफ
हुई क्योंकि इस मानसिकता का बीज कृष्ण मेनन
उस समय नेहरू का आँख-कान-दिमाग सब कुछ
था और उसके कुछ पापी-कुकृत्यों और देशद्रोही
हरकतों के कारण जब चीनी तत्कालीन नेफा या
नॉर्थ-इस्टर्न फंटीयर एजेंसी, या आज के
अरुणाचल के रास्ते पश्चिम बंगाल के सिलीगुड़ी
तक पहुँचने के मनसूबों से लैस हो गए, और
सारा देश नेहरू और मेनन पर थूकने लगा; तो
नेहरू को चौतरफा दबाव के कारण अपने इस
प्रतिरक्षा मंत्री को भगाना पड़ा। महाराष्ट्र के
तत्कालीन मुख्यमंत्री यशवंत राव बलवंत राय
चौहान को प्रतिरक्षा मंत्री बनाया और एक देश
बेचुआ कम्युनिस्ट के कारण देश बच गया। शायद
इसी शोक में 1963 में भुवनेश्वर में एक भाषण
के दौरान लकवा मार गया नेहरू को, और 1964
की मई में उनका देहान्त हो गया। कम्युनिस्ट
तब से ही हमेशा संदेहास्पद चरित्र रहे हैं।

1967 में कांग्रेस के खिलाफ देश भर में
हवा बननी शुरु हो गई थी। नक्सली आंदोलन
इसी काल की उपज है। साठवाँ दशक जयप्रकाश
नारायण के आंदोलन का, आपातकाल का, कांग्रेस
से पतन का और 1977 आते-आते जनता पार्टी
की सरकार का समय है। आठवाँ दशक पंजाब
के आतंकवाद से शुरु होकर 1989 आते-आते
सारे संसार में कम्युनिस्टों के पतन का काल है।
1990 के दशक में बाबरी मस्जिद का विध्वंस,

भूमंडलीकरण की शुरुआत जैसी घटनाएँ हुई और इक्कीसवीं सदी आते-आते हमारे जीवन से सौन्दर्य शास्त्रीय बोध के एक बड़े हिस्से को टेलीविजन ने हड़पना शुरू कर दिया। सारी दुनिया में दक्षिणपंथी उभार में इस देश में जो-जो किया है या कर रहा है उसमें अगर कुछ अंतरराष्ट्रीय फलक जोड़ दिए जाए; तो कहा जा सकता है कि दुनिया के सबसे ताकतवर देश अमेरिका में एक ऐसा ट्रंप नामधारी सफेद भालू राष्ट्रपति हुआ जिसके उस देश के हर बड़े शहर में जुआघर या कसिनो चलते हैं। बनियापे ने नैतिकता और मानवीय-बोध के सारे रेकॉर्ड तोड़ने शुरू किए तो सरकारें खेल-खलिहान, सूर्ई-दवाई सब कुछ बेच खाने के लिए इस देश के अंग्रेजों जैसे धन-पिशाचों को सब कुछ सौंपने लगीं और इसमें लोग 2002 के गुजरात के कसाईपन की झलक देखने लगे। राजनीति ने साहित्य के सारे बढ़िया शब्दों को कचड़ा करना शुरू कर दिया तो कहा जाने लगा कि राजनीति में एक गंदगी जब एक को माफिक पड़ जाती है, तो दूसरा उसे अपनाने में नहीं हिचकता। वह भी उसे माला बनाकर जपने लगता है। और इसी कालखंड को अच्छी संस्कृत जानने वाले श्री जगूड़ी **काग चेष्टा बको ध्यानं** की मुद्रा में देखते रहे हैं और लिखते रहे हैं। उन्होंने कविता लिखी है और कविता ने उन्हें भी लिखा है। **अकविता** के दौर से कविता की शुरुआत करने वाले लीलाधर शर्मा ने लीलाधर जगूड़ी के रूप में अपने समय के हर उस कतरे को पकड़ने की कोशिश की है, जिसमें सामाजिक-मनुष्य का कुछ न कुछ गणित के लघुत्तम समापवर्तक या लोवेस्ट कॉमन मल्टीपुल की तरह शामिल है। उनकी कविताएँ इसका उदाहरण है : आपातकाल पर केन्द्रित 32 कविताओं वाले उनके संग्रह **रात अब भी मौजूद है** कि एक

पूरी कविता **मुझे भय है** में देखिए क्या-क्या नहीं है : या क्या-क्या है -

जो बात लेख में नहीं थी
वह खबर में मिली
कल के पतन के बाद
और मुझे भय है
कि मेरे पैरों के नीचे
खाड़ी होगी नहीं-नहीं
एक ऐसी ढलान भी हो सकती है
जिस पर देखते ही लोग
रपटने लगेंगे
(जिसमें झपने की कोई तुक नहीं होगी)
मुझे भय है घास में
बर्छे उगे हुए हैं
नदियाँ सूख गई हैं
और उनमें करोड़ों साँप लहरा रहे हैं
जैसे पानी बह रहा हो
साँप जीभों से जमीन चाट रहे हैं
कगार उठ रहे हैं
साँपों की नदी में गिरकर
न मैं नहा पाऊँगा न मैं डूब पाऊँगा
उस वक्त मेरी स्मृतियों का क्या होगा
जब वे मुझ पर अपना जहर जाँचेंगे
क्या उस वक्त किसी की याद
साँपों की चाटती हुई जीभ से
मेल खा सकेगी?
क्या किसी के बंधन
लिपटे हुए साँपों से मेल खा सकेंगे?
एन मौके पर कुछ पता होते ही
कौन किसे खाएगा?
मुझे भय है आज अखबार में
डुबते हुए लोगों को
किसी ने हवाई जहाज से देख लिया होगा
पृथ्वी घूम रही है

और पृथ्वी पर बाघ घूम रहे हैं
जिस क्षण खड़ा-खड़ा सोचता हूँ मैं
अपना भय
जैसे कि जो बात मैं कह नहीं पाया
वो बात अगर मैं कह पाया
तो मुझे कई बातों का भय है

मेरा मानना है कि पूरे आपातकाल पर श्री जगूड़ी ने अगर सिर्फ यही एक कविता भी लिखी होती तब भी काफी था। क्या इस भय के प्रक्षेपण हम पर आप-पर आज भी सन्दर्भ और समय बदल कर हॉबी होने की कोशिश नहीं कर रहे हैं जब आपको लगता है कि मुट्ठी भर धन पिशाचों के हाथ में आपका सब कुछ बेचने की साजिश सत्ताएँ कर रही हैं? इसी **भय** की बात श्री जगूड़ी 1970 के दशक से अपने कालखंड को निकालकर रहें हैं और हमें आगाह भी। इस कविता को पूरा-का पूरा उद्धृत करना मुझे समय की जरूरत भी लगा पर इतिहास को पढ़ने का एक मौका भी!! रामलीला में जीवन और युद्ध को साथ-साथ जुगलबंदी कराती उनकी एक कविता देखने लायक है, इसी संग्रह में और इसी सन्दर्भ में -

मंगतू बीड़ी के पैसों के लिए
राम बना हुआ है -
प्रभातू चाय के पैसों
के लिए सीता

लक्ष्मण परशुराम के क्रोध के नीचे से
मातादीन की रेखा को लाँघ रहा है
भरत को कोई भरोसा नहीं
कि चप्पल की जुगाड़ भीड़ा जाए
कहाँ है ज्यादा कष्ट।
कहाँ है ज्यादा निर्वासन
रामायण में या जीवन में?
कहाँ लड़ा जा रहा है युद्ध
कौन है शत्रु और कौन है शत्रुघ्न?

प्रश्नवाचक चिह्न देकर श्री जगूड़ी इस प्रश्न का उत्तर उस संसार पर छोड़ दे रहे हैं जिसे राजनीति के वर्चस्व के भय और रोशनी और संदर्भों के साथ जीना मरना पड़ता है। राजनीति ने बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दी के समय और मनुष्य के सामने इतने भय और द्वन्द्व पैदा कर दिए हैं कि उसे कभी अपनी स्वाभाविकता की रक्षा और पहचान के लिए लड़ना पड़ रहा है और कभी सभ्यताओं को बचाने के लिए, किसी कवि-मनुष्य को उस **रचनाधर्म** से जिसे टॉयनबी ने उनके बचे रहने की शर्त के रूप में देखा है। इस विमर्श में मेरी कोशिश है कि उनके रचनाकर्म के उन केन्द्रकों या न्यूक्लीयस को पकड़ा जाए जिससे उनका कवि-मन बना है। बाकी निर्णय आप पर!! कहा जा सकता है कि जगूड़ी अकविता के तांडव से सभ्यता के पेंचों तक भाया मनुष्य पहुँचे हैं।

सम्पर्क : महावीर गेस्ट हाउस, 31ए, के.सी. दे रोड, दार्जिलिंग, सिलीगुड़ी, मो. : 9775938214

युवा मन को संस्कारित करने में सक्षम हैं लघुकथाएँ (संदर्भ पाठ्यक्रम में लघुकथाएँ)

माधव नागदा

आजकल लघुकथा जगत में शैक्षणिक पाठ्यक्रम में हिंदी लघुकथाओं को सम्मिलित किए जाने को लेकर एक हलचल सी है मानो किसी ने ठहरे हुए पानी में कंकड़ फेंक दिया हो। यह हुआ है बलराम द्वारा विश्वविद्यालयों के लिए लघुकथाओं के संकलन तैयार करने के पश्चात्। उन्होंने दो पुस्तकें तैयार की हैं, 'छोटी बड़ी कथाएँ' और 'लघुकथा लहरी'। फिलहाल दोनों लघुकथा संकलन मंगलौर विश्वविद्यालय, कर्नाटक के क्रमशः बी.बी.ए. एवं बी.ए. प्रथम वर्ष पाठ्यक्रम के लिए हैं। बलराम इस दिशा में और भी कुछ संग्रह तैयार कर रहे हैं।

यह होना भी चाहिए। देर आए दुरस्त आए। किशोरों और युवाओं का साहित्य के विभिन्न कलारूपों से परिचय प्रायः शैक्षणिक पाठ्यक्रम के माध्यम से ही होता है। स्कूल और कॉलेज में पढ़ी हुई कई चीज़ें हमारी स्मृति का अमिट हिस्सा बन जाती हैं। आज भी हमें रहीम, कबीर, बिहारी के कई दोहे याद हैं। प्रसाद, पंत, निराला, गुप्त, हरिऔध जैसे कवियों से हमारा प्रथम परिचय पाठ्य-पुस्तकों द्वारा ही हुआ है; प्रेमचंद, गुलेरी, जैनेन्द्र, यशपाल, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा आदि कथाकार हमारे साहित्यिक संस्कारों का स्थायी भाव है तो इसका श्रेय साहित्यिक पाठ्यक्रम को ही जाता है। लघुकथा अपेक्षाकृत नयी विधा है। चाहे इसकी जड़ें वैदिक युग तक फैली हुई हों परंतु जिस हिंदी लघुकथा को हम आज जानते हैं वह सिर्फ आधी शताब्दी पुरानी है। इसमें से भी लगभग बीस वर्ष तो इसे एक विधा के रूप में स्वयं को स्थापित करने में ही लग गए। विद्यार्थी तो इस विधा से लगभग अनभिज्ञ ही हैं। वे अभी तक कहानी, कविता, संस्मरण, निबंध आदि विधाओं को ही साहित्य रूप समझते आए हैं। हालाँकि कुछ स्वाध्यायी विद्यार्थी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अनौपचारिक परिचय पाते रहे हैं, किन्तु अब वे विधिवत एक शास्त्रीय विधा के रूप में लघुकथा का अध्ययन कर सकेंगे। इससे न केवल आने वाली पीढ़ी लघुकथा विधा में संस्कारित होगी; वरन इस विधा में शोध के लिए विश्वविद्यालयों के दरवाजे खुल जाएंगे। जो काम अभी छुटपुट रूप से होता रहा है वह बड़े पैमाने पर होने लगेगा।

मुझे यह बात कहने में कोई संकोच नहीं है कि आज विद्यार्थी ही नहीं अपितु अधिसंख्य शिक्षक भी लघुकथा की सामर्थ्य से पूर्णतया परिचित नहीं हैं। विश्वविद्यालय के कई भाषाई शिक्षकों के मन में लघुकथा के प्रति कहीं न कहीं हिकारत भाव छिपा हुआ है। किन्तु जब वे पाठ्यक्रम के माध्यम से निरंतर लघुकथाओं के अध्ययन-अध्यापन में लग जायेंगे तो भ्रम की जंजीरें स्वतः टूटती जाएगी। वे यह देख सकेंगे कि सीमित शब्दों वाली इन छोटी-छोटी कथाओं में असीम मारक क्षमता

छिपी हुई है। सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति, भावनाओं, विचारों एवं मानवीय संवेदनाओं के सम्प्रेषण में लघुकथा उतनी ही समर्थ है जितनी कि अन्य कथा विधाएँ। आज जिस प्रकार प्रबुद्ध पाठक और स्कॉलर रेणु, भीष्म साहनी, अमरकान्त, ज्ञानरंजन, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश या स्वयं प्रकाश की चर्चा करते हैं, शैक्षणिक पाठ्यक्रम में प्रवेश के पश्चात् भावी पीढ़ी लघुकथाकारों की भी चर्चा करेगी, उन पर शोध आलेख प्रस्तुत करेगी। आज हिंदी विभागों के गलियारों में जहाँ मैला आँचल, चीफ की दावत, डिटी कलक्टरी, पार्टीशन, तिरिछ का जिक्र किया जाता है कल बर्थ डे गिफ्ट, मूर्ति रहस्य, माँ का कमरा, भ्रम के बाजार में, पैंट की सिलाई, गो भोजन कथा, बाजार, कर्मयोगी जैसी लघुकथाओं की भी बात करेंगे।

शिक्षा का मूल उद्देश्य है देश के लिए अच्छे नागरिकों का निर्माण। ऐसी जिम्मेदार पीढ़ी का निर्माण जो लोकतान्त्रिक मूल्यों में विश्वास रखती हो; जिसके लिए प्रेम, सहानुभूति, कष्टना, सहयोग, परदुःखकातरता, असहमति का सम्मान, सांप्रदायिक सौहार्द्र जैसे मानवीय मूल्य सर्वोपरि हों। साहित्य का भी तो यही उद्देश्य है। साहित्य इन्हीं सब मूल्यों को संप्रेषित करता है ताकि एक सुसंस्कृत, संस्कारित समाज की रचना हो सके। प्रेमचंद 'साहित्य का उद्देश्य' नामक आलेख में कहते हैं, 'साहित्य हममें वफादारी, सचाई, सहानुभूति, न्याय-प्रियता और समता के भावों की पुष्टि करता है : जहाँ इनका अभाव है वहीं फूट, विरोध, स्वार्थपरता है - द्वेष, शत्रुता और मृत्यु है।...साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक स्वाधीन बनाता है। दूसरे शब्दों में, उसी की बंदौलत मन का संस्कार होता है। यही उसका मुख्य उद्देश्य है।' कहना न होगा कि इसके लिए

कथा साहित्य सदियों से अपनी सार्थक भूमिका निभाता आ रहा है। और कथा में भी शिक्षाविदों ने लघुकथा को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। लघुकथा जन को शिक्षित करने में शताब्दियों से एक सार्थक उपकरण रही है। अराजक राजकुमारों को शिक्षित करने के लिए पंडित विष्णु शर्मा ने पंचतंत्र की रचना की जो आज पूरे विश्व की धरोहर है। गौतम बुद्ध और तीर्थंकर महावीर लघुकथाओं के माध्यम से ही समाज को संस्कारित करते थे। ओशो रजनीश भी अपनी बात को प्रभावी ढंग से संप्रेषित करने के लिए लघुकथाओं का सहारा लेते थे। आज भी लघुकथा की प्रभावशीलता असंदिग्ध है। यह सच है कि आज लघुकथा उपदेश का चोला उतार चुकी है लेकिन अंतर्निहित संदेश को संप्रेषित करने की दृष्टि से यह अधिक बलवती हुई है। रुग्ण समाज की चिकित्सा के लिए लघुकथा इंजेक्शन की तरह त्वरित है जबकि कहानी मुँह से ली जाने वाली दवा की तरह अपेक्षाकृत धीमे प्रभाव वाली। अतः शैक्षणिक पाठ्यक्रम में सम्मिलित लघुकथाएँ हमारी किशोर और युवा पीढ़ी को संस्कारित करने की दृष्टि से बहुत उपयुक्त रहेंगी। यहाँ बहुचर्चित लघुकथाओं में से कतिपय उदाहरण आपके सम्मुख रखना चाहूँगा।

आज परिवार में बुजुर्गों की स्थिति बहुत सुखद नहीं है। वे सर्वसुविधायुक्त कमरे से पहले ड्राईगरूम, वहाँ से कोठरी, फिर बरामदे में और अंततः टिन शेड से बने स्टोर में फालतू सामान की तरह पटक दिए जाते हैं (तंग होती जगह : कृष्ण मनु)। ऐसे उपेक्षा भरे माहौल के मध्य श्याम सुंदर अग्रवाल की लघुकथा 'माँ का कमरा' आज के युवाओं के लिए प्रकाश पुंज की तरह है। रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु' की 'ऊँचाई' बुजुर्गों की आत्मनिर्भरता तथा पारिवारिक भावना तो पवन

शर्मा की 'कुन्दन', रामकुमार घोटड़ की 'छत्रछाया' और विर्क खड़का डुवर्सेली की 'दूध का हिस्सा' उनके प्रति श्रद्धा और आदर को प्रकट करने वाली हैं। 'छत्रछाया' में पिता की याद में पुत्र द्वारा पेड़ लगाना एवं 'दूध का हिस्सा' में अपने हिस्से का दूध माँ को दे देना पालकों के प्रति आत्मीयता जगाने वाला है। 'कुन्दन' में ससुर की आर्थिक कठिनाई और पति की द्विविधा को समझते हुए पत्नी द्वारा अपने गहने दे देना एक विरल उदाहरण है। युवा पीढ़ी में लैंगिक समझ विकसित करने की दृष्टि से नारी अस्मिता से जुड़ी लघुकथाएँ आज अत्यंत जरूरी हैं। एक तरफ नारी को सिर्फ देह समझते हुए वस्तु की तरह इस्तेमाल करने की मानसिकता के कारण उसे पग-पग पर अपमानित होना पड़ रहा है तो दूसरी तरफ वह अपनी हिम्मत और हौसले के चलते बुलंदियाँ छू रही है। अतः शैक्षणिक पाठ्यक्रम में जाकर 'काहे का मरद' और 'अच्छ किया'(पवित्रा अग्रवाल), 'बहू का सवाल'(बलराम), 'पति परमेश्वर'(पल्लवी त्रिवेदी), 'जगमगाहट'(रूप देवगुण), 'गाँव की लड़की'(अंतरा करवड़े), 'जंगल का फूल'(कांता राय) जैसी लघुकथाएँ पुवाओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन ला सकती हैं। मीरा जैन की 'उपहार' लघुकथा में पुरुषों की शराबखोरी से पीड़ित स्त्रियों की सूझ-बूझ दर्शनीय है। कुमार नरेंद्र 'छोटे बड़े हरे टुकड़े' में यह स्थापना देते हैं कि घर की नौकरानियाँ बिकाऊ नहीं होती। उनके लिए प्यार के सम्मुख पैसों का कोई महत्व नहीं है। 'पार्षद वाली गली'(कल्पना भट्ट) की सफाई वाली में भी इसी कोटि का साहस और नैतिकता है। इन लघुकथाओं को पढ़कर निश्चित ही विद्यार्थियों में निम्नवर्गीय महिलाओं के प्रति सम्मान भाव जागेगा। इधर 'नैसर्गिकता' में विभा रश्मि बड़ी कोमलता और अछूते बिंबों के सहारे देश में महिलाओं के

साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार के प्रति ध्यान आकर्षित करती हैं। अंधविश्वास और रूढ़ियों के खिलाफ भी कई लघुकथाएँ हैं जिनका समावेश विद्यार्थियों में वैज्ञानिक सोच और तर्कपूर्ण चिंतन का विकास कर सकता है। इस विषय पर कतिपय उदाहरण हैं- अशोक भाटिया की 'श्राद्ध', पवित्रा अग्रवाल की 'शुभ-अशुभ', उर्मि कृष्ण की 'दृष्टि', शकुंतला किरण की 'साप्ताहिक भविष्यफल', भगीरथ की 'फूली' आदि। दरअसल अंधविश्वास से मुक्ति की ओर शिक्षा पहला कदम है। 'कतरे हुए पंख' में कांता राय इसी बात का यहसास कराती हैं। वैसे अंधविश्वास पर विजय के लिए शिक्षा के साथ सही दृष्टिकोण का होना भी आवश्यक है वरना डॉक्टरों के दरवाजे पर भी नीबू-मिर्ची लटके हुए मिल जाएंगे (पागल-माधव नागदा)

हमारा देश गंगा-जमुनी संस्कृति की मिसाल रहा है, हालाँकि पिछले कुछ दिनों से इस परंपरा पर हमले तेज हुए हैं। किन्तु हमारे जागरूक लघु-कथाकार सांप्रदायिक सौहार्द को बचाये और बनाये रखने के लिए प्रतिबद्ध हैं। एकता और भाईचारे को प्रतिबिम्बित करने वाली कई लघुकथाएँ मिल जाएगी। कमल चोपड़ा की 'बाँह-बेली', 'छेनू', 'फुहार', बलराम अग्रवाल की 'गो भोजन कथाट', सुकेश साहनी की 'मैंढकों के बीच', विष्णु प्रभाकर की 'पानी की जाति', रमेश बतरा की 'सूअर', चित्रा राणा राघव की 'हनुमान', सुभाष नीरव की 'इंसानी रंग', सूर्यकांत नागर की 'विषबीज' जैसी लघुकथाएँ जाति संप्रदाय से ऊपर उठकर सोचने की प्रवृत्ति का विकास करने में सक्षम है। 'फुहार' एवं 'गो भोजन कथा' बहुत मर्मस्पर्शी हैं। 'फुहार' के अंत में रूढ़ मूल्यों के हामी पंडित जी तथा एक मासूम मुस्लिम बालक की संगति अविस्मरणीय बन पड़ी है जो आज के उबलते माहौल पर ठंडी

फुहार की तरह है। 'गो भोजन कथा' में भी एक धर्मपरायणा हिन्दू स्त्री का गाय के स्थान पर एक विधवा मुस्लिम स्त्री को भोजन कराना सामाजिक समरसता का सटीक उदाहरण है। सुभाष नीरव की 'इंसानी रंग' में उन्मादी भीड़ के आसन्न खतरे के बावजूद शर्मा जी द्वारा अपने पड़ोसी अमरीक को शरण देने का निर्णय वंदनीय है। इस प्रकार की मानवीय मूल्यों पर आधारित संवेदनापरक लघुकथाएँ युवा मन को भावनात्मक रूप से सशक्त बनाने एवं सतह से ऊपर उठाने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। लघुकथाओं के इस भावपूर्ण संसार में से कुछ और लघुकथाएँ जो मेरे मानस पटल पर दस्तक दे रही हैं वे हैं- मन के साँप (सतीशराज पुष्करणा), चोरी (राम यतन यादव), इंसानियत का स्वाद (शोभना श्याम), रोशनी (सीमा जैन), जुड़ाव (सतीश राठी), कटर (कुंकुम गुप्ता), बर्थ ये गिफ्ट (सतीश दुबे), पेंट की सिलाई (रामकुमार घोटड़), अंधेरा उबालना है (संध्या तिवारी), इमरान (बलराम अग्रवाल), परिवर्तन (सतीश राठी) आदि। ये तथा ऐसी ही और भी लघुकथाएँ शैक्षणिक पाठ्यक्रम में आकर मानवीय संवेदनाओं का खूबसूरत संसार रचने के लिए मनोभूमि तैयार कर सकती हैं।

तत्कालीन सामाजिक संरचना, सामाजिक यथार्थ एवं विरोधाभासों को उजागर करने वाली लघुकथाएँ भी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं। राजनैतिक उठा-पटक, लिव इन रिलेशन, भूमंडलीकरण, मीडिया की भूमिका, तकनीक का असर, किसान-मजदूर की समस्याएँ और संघर्ष से संबन्धित लघुकथाओं को उच्च कक्षाओं के शैक्षणिक पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया जा सकता है जहाँ विद्यार्थी अपेक्षाकृत परिपक्व मनःस्थिति में पहुँच गए होते हैं। सामाजिक व्यवहार की नई अवधारणा जिसकी तरफ आज युवा अधिक

आकर्षित हो रहे हैं वह है लिव इन रिलेशनशिप। यह रिश्ता ऊपर से जितना मोहक लगता है इसके खतरे भी उतने ही अधिक हैं। मधुदीप की 'लौहद्वार', कमल चोपड़ा की 'लिव इन', तारिक असलम तसनीम की 'लिव इन रिलेशन' इन्हीं खतरों की ओर संकेत करती हैं। आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी जातिवाद का दंश हमें सालता रहता है। मालती बसंत की 'अदला-बदली', और भूपिंदर सिंह की 'रोटी का टुकड़ा' जैसी लघुकथाएँ इस बुराई पर रचनात्मक प्रहार करती हैं। आज देश में छोटी जोत के किसान और दिहाड़ी मजदूर की स्थिति अत्यंत संकटपूर्ण है। कमल चोपड़ा की 'मंडी में रामदीन' किसान की बेबसी का कारुणिक आख्यान है। इधर नीना छिब्र की 'चूल्हा-चौका', लाजपत राय गर्ग की 'बाइक', त्रिलोकसिंह ठकुरेला की 'माटी की गंध' जैसी लघुकथाएँ किसान के साहस और परिस्थितियों के सामने हार न मानने का संदेश देती हैं। इन पंक्तियों के लेखक की 'कर्मयोगी' और 'धरती के बेटे' लघुकथाओं को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। कांता राय की 'श्रम की कीमत', प्रतापसिंह सोढ़ी की 'मजदूरी की उमंग', तनु श्रीवास्तव की 'श्रम का स्वाद', अशोक जैन की 'भूख के आर-पार' मजदूर वर्ग के स्वाभिमान की कथाएँ हैं जो श्रम के प्रति आस्था जगाने वाली हैं। लाचारी (प्रभात दुबे) और खुसर-पुसर (अशोक जैन) मजदूर जीवन की मजबूरियों पर प्रकाश डालती हैं तो चैतन्य त्रिवेदी की 'उल्लास' तथा दीपक मशाल की 'रेनकोट' मजदूर वर्ग की सहजता एवं अभावों में भी मार्ग ढूँढ़ निकालने की जिजीविषा का इस तरह बयान करती हैं कि आभिजात्य भी मुग्ध हो जाता है। 'गूँजता प्रश्न' (सुरेश बाबू मिश्र) और 'खोटा सिकका' (चंद्रेश छतलानी) लघुकथाएँ पर्यावरण जागरूकता का

संदेश संप्रेषित करने में पूर्णतया सफल हैं। जीवन में आस्था जगाने वाली लघुकथाओं का समावेश भी पाठ्यक्रम में किया जाना चाहिए जो युवा मन में अँधेरों से लड़ने का साहस भरती हैं, नया रास्ता सुझाती हैं। मधुदीप की 'ऐसे', सिमर सदोष की 'आत्महत्या', श्यामसुंदर दीप्ति की 'शीशा' में निराशा में डूबे पात्रों को मौत की कगार से निकलकर ज़िंदगी की रेलमपेल में सम्मिलित होते हुए दिखाया गया है। शोभा रस्तोगी की 'गुब्बारा' बताती है कि जीवन में उतार-चढ़ाव आना रोजमर्रा की बात है, इनसे घबराना नहीं चाहिए। अनघा जोगलेकर 'अलमारी' में माँ से कहलवाती हैं, 'बेटा, हमें समय-समय पर अपनी

अलमारियों को साफ करते रहना चाहिए', जो कि खुशनुमा जीवन का सूत्र है। मैं फिर से कहना चाहूँगा कि साहित्य मनुष्य को एक बेहतर इंसान बनने के लिए संस्कारित करता है, उसे विचारशील, विवेकवान, संवेदनशील और साहसी बनाता है। निस्संदेह लघुकथा इस दिशा में एक सार्थक भूमिका का निर्वहन कर सकती है - पाठ्यक्रम में जाकर भी और पाठ्यक्रम से बाहर रहकर भी। यहाँ जिन लघुकथाओं के उद्धरण दिए गए हैं वह केवल प्रस्थान बिंदु हैं। जहाँ और भी हैं। लघुकथा संसार में ऐसी कई लघुकथाएँ हैं जो साहित्य और शिक्षा के उद्देश्यों को पूर्ण करने में सफल हैं।

सम्पर्क : माधव नागदा, लाल मादड़ी (नाथद्वारा) - 313301, मो. 9829588494

शिवदान सिंह चौहान और हिंदी आलोचना

रणजीत कुमार सिन्हा

शिवदान सिंह चौहान हिंदी आलोचना साहित्य में मार्क्सवादी आलोचक के नाम से विख्यात हैं। इनका जन्म 1908 ई. में आगरा में हुआ। शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। आधुनिक हिंदी समीक्षकों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी, शिवदान सिंह चौहान साहित्य चिंतन में अपनी मार्क्सवादी विचारधारा के लिए जाने जाते हैं। हिंदी आलोचना साहित्य में मार्क्सवादी दर्शन को जानने-समझने की कोशिश आपके साहित्य में देखने को मिलता है। प्रगतिशील लेखक संघ के सक्रिय सदस्य होने का गौरव आपको प्राप्त है। आपने प्रगतिशील लेखक संघ के कार्य-कलाप को पुरस्कृत किया। आलोचना जैसी पत्रिका (त्रैमासिक) के संस्थापक-संपादक का गौरव आपको प्राप्त है। आपने हिंदी आलोचना साहित्य में 'आलोचना त्रैमासिक' पत्रिका के माध्यम से हिंदी समीक्षा को एक नई गति और भंगिमा प्रदान किया।

शिवदान सिंह चौहान की प्रमुख कृतियाँ हैं- 'प्रगतिवाद' (1946), 'कश्मीर देश व संस्कृति' (1950), 'हिंदी साहित्य के अस्सी वर्ष' (1954), 'साहित्यानुशीलन' (1955), 'आलोचना के मान' (1958), 'साहित्य की समस्याएँ' (1958) आदि।

शिवदान सिंह चौहान हिंदी रिपोर्टाज लेखन का सायास प्रयास किये और उनके द्वारा लिखित 'लक्ष्मीपुरा' जो सन 1938 में 'रूपाभ' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। हंस पत्रिका में उनका दूसरा रिपोर्टाज 'मौत के खिलाफ जिंदगी की लड़ाई' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। हिंदी रिपोर्टाज साहित्य में भी शिवदान सिंह चौहान की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

शिवदान सिंह चौहान हिंदी के प्रथम मार्क्सवादी आलोचक हैं जो हिंदी आलोचना साहित्य में 'दलित' शब्द का प्रयोग करते हैं। वे भारतीय समाज में दलितों की स्थिति का विवेचन भी करते हैं। भारतीय समाज की हालत पर लिखते हुए कहते हैं "भारत में सामन्ती समाज के हिमायतियों में आश्रम चतुष्टय कायम करते हुए अपने को भारतीय कहते हैं और समस्त ईश्वरीय ब्रह्मज्ञान का जो अपने को उत्तराधिकारी समझते थे। भारत की दलित श्रेणी के हृदय में निराशावादी दृष्टिकोण उत्पन्न करने का भरसक प्रयत्न किया।"

हिंदी साहित्य का छायावाद बहुत से मार्क्सवादी आलोचकों के लिए सिरदर्द का विषय बना हुआ है पर शिवदान सिंह चौहान ने छायावादी काव्य को नई एवं तार्किक दृष्टि से देखने का प्रयास किया। छायावादी कविता के पूर्ण उन्मेष काल में देश में एक मानवतावादी, राष्ट्रीय चेतना जैसा संस्कार विकसित होता दिखता है। अन्य मार्क्सवादी आलोचक छायावाद को जहाँ पलायनवादी काव्य, आत्मविलाप का काव्य कहते थकते नहीं, वहीं इस छायावाद पर शिवदान सिंह चौहान का विचार देखने योग्य है - "देश की स्वतंत्रता का लक्ष्य केवल अंग्रेजी की राजनीति पराधीनता से मुक्ति पाना भर है या हर प्रकार के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषण, भेदभाव और अन्याय पूर्ण वर्ग संबंधों का अंत करके समानता, न्याय और जनतंत्र के आधार पर एक नए शोषण-मुक्त समाज और नई मानवतावादी संस्कृति की स्थापना करना है 'यह प्रश्न सभी लोकचेता विचारकों को मथित करने लगा था।"

हिंदी साहित्य में परम्परा पर बहस बहुत होती है। यह परम्परा की शुरुआत क्यों हुई? इसके पीछे कौन सा कारण है? यह सब सवाल हमारे मन में बहुत आते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा और डॉ. नामवर सिंह दोनों ने परम्परा पर अपने-अपने विचार दिया है भारतीय परम्परा को हिन्दू परम्परा पर प्रायः मार्क्सवादी आलोचकों की हुँकार सुनाई देती है और इसका मकसद भी रहा है कि हिन्दू परम्परा को ओछी या स्त्रिवादी कहकर समाज में अलगाव या विखंडन पैदा किया जाए। शिवदान सिंह चौहान अपने को पार्टी लाइन की व्याख्या से उबार नहीं पाते हैं। “हिंदी में प्राचीन परम्परा के अध्ययन में अक्सर ऐसा ही देखने में आया है जो भारतीय परम्परा को व्यवहारतः आया या हिन्दू परम्परा तक ही सीमित कर देता है। प्रच्छन्न रूप से यह प्रवृत्ति हिन्दू राष्ट्रवाद की तर्जुमानी करती है।” इससे शिवदान सिंह चौहान की भारतीय समाज और परम्परा के प्रति अबोधता का पता चलता है। भारतीय समाज का अवलोकन करने में शिवदान सिंह चौहान असफल आलोचक मालूम पड़ते हैं। शिवदान सिंह वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित समाज को पहली परम्परा मानते हैं जिससे सामाजिक विकास में बाधा है। जात-पात, ऊँच-नीच की भावना पर आधारित समाज में मानवीय दृष्टिकोण नहीं होता है। वर्णाश्रम व्यवस्था को शिवदान सिंह की मानव द्रोही परम्परा-कहते हुए लिखा है- “हमारे देश की एक अत्यंत प्राचीन और प्रबल मानव-द्रोही परम्परा है जिसकी मिशाल अन्यत्र नहीं मिलती। इस परम्परा ने चतुष्टय वर्ण-व्यवस्था के जरिए मनुष्य को जाति-पांति के इतने कठोर और क्रूर शिकंजों में जकड़ रखा है कि अछूत और नीच कही जाने वाली दलित जातियों पर होते आने वाले द्विज वर्ग की जातों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के अत्याचारों और

अन्यायों को देखकर भी हमारा जमीर बेदार नहीं होता। दुर्भाग्य से यह हमारे इतिहास का सच है।”

यहाँ पर शिवदान सिंह सिर्फ आलोचना ही करते हैं। लेकिन समतामूलक समाज के निर्माण हेतु वर्ण की जगह वर्ग की वकालत नहीं करते दिखते हैं।

दूसरी परम्परा शिवदान सिंह चौहान के अनुसार बुद्ध की है। पर शिवदान सिंह दोनों परम्पराओं में से किसी भी परम्परा की सही स्थापना भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में सही ढंग से नहीं कर पाते हैं।

छायावाद के प्रति शिवदान सिंह चौहान का विचार भी हास्यास्पद है। चौहान छायावाद और प्रगतिवादी धारा पर विचार देते हुए छायावाद को प्रतिक्रियावादी साहित्यिक धारा तक घोषित कर देते हैं- ‘इस छायावाद की धारा ने हिंदी के साहित्य को जितना धक्का पहुँचाया, उतना शायद ही हिन्दू महासभा या मुस्लिम लीग ने भारत को पहुँचाया हो’।

छायावाद के प्रति शिवदान सिंह चौहान का यह दृष्टिकोण उनके लेनिनवादी विचारधारा को लागू करने की सोची-समझी रणनीति है जो भारतीय साहित्य के समस्त विचार को नकारने का प्रमाण है।

शिवदान सिंह चौहान अपने आलोचनात्मक लेखों में स्वंग को प्रगतिशील विचारक साबित करते दिखते हैं पर वे सही मायने में दलगत विचारक ही रहते हैं। खुद साहित्य से राजनीति को परे कहने वाला व्यक्ति स्वयं एक विशेष राजनीति पार्टी का प्रचारक बनकर इस दोहरी नीति का प्रचार करते हैं। शिवदान सिंह चौहान स्वयं को प्रगतिशील मंच से अलग करने के लिए तैयार करते हैं। यह आरोप वामपंथी विद्वानों को लगने

लगा। शिवदान सिंह चौहान का जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, पंत, प्रकाशचन्द्र गुप्त आदि के साथ मेल-जोल या संवाद कोर वामपंथी साहित्यकारों के लिए शूल जैसा लगने लगा। जिसका परिणाम प्र.ले.सं. का टूटना और मात्र कम्युनिस्ट पार्टी का प्रचार केंद्र बनकर रह जाना है। 1951 में रामविलास शर्मा को 'नया साहित्य' के संपादक मंडल से अलग कर देना, संकीर्ण दलगत राजनीति और तानाशाही का प्रमाण है।

भारतीय जन नाट्यशाला (1939) शीर्षक निबंध में शिवदान सिंह चौहान नाटक और रंगमंच को भारतीय समाज और भारतीय समाज के अनुसार उसमें व्याप्त चरित्रों को जनसमूह को सामने लाने की वकालत करते हैं, "हम जिस जननाट्य शाला की कल्पना करते हैं वह पारसी कंपनियों की परिपाटी को लेकर नहीं चल सकती है और न उच्च वर्गों की रुचि के विचार को अपनाकर मानसिक वेश्यालय का केंद्र बन सकती है। उसे पूर्व-निर्दिष्ट जन आधार पर ही खड़ा होना होगा और जनसंस्कृति को परिमार्जित और परिष्कृत कर उसे सौंदर्य और सौष्ठव प्रदान करना होगा।

'प्रगतिशील' शब्द की व्याख्या को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। प्रेमचंद के अनुसार- 'साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है।' रामविलास शर्मा के अनुसार "न तो साहित्यकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है, न आलोचक, वे प्रगतिशील तभी होते हैं जब वे जनसाधारण का पक्ष लेते हैं।'

साहित्यकार की प्रगतिशीलता पर शिवदान सिंह चौहान का विचार तर्क कुछ अलग है। वे 'प्रगतिशीलता' को सापेक्ष या निरपेक्ष यथार्थ चित्रण या गतिशील यथार्थ चित्रण तक का सवाल उठाते हुए लिखते हैं- "किसी भी युग के कलाकार और

साहित्यकार की प्रतिभा, ईमानदारी और उनकी कृतियों की कलात्मक श्रेष्ठता को परखने की वैज्ञानिक कसौटी भी यही है कि जाँच करके देखा जाए कि अपने जीवनकाल की ऐतिहासिक परिस्थितियों द्वारा प्राप्त अनिवार्य विचार सीमाओं के होते हुए भी उन्होंने सच्चे कलाकार की सत्यान्वेषी वस्तुनिष्ठता से अपने युग जीवन की वास्तविकता या सत्य का कितना यथार्थ और मूर्त चित्रण किया।"

इस कसौटी पर हम जैनेन्द्र, अज्ञेय आदि तमाम साहित्यकारों को यथार्थवादी ही पाते हैं। जिन साहित्यकारों को राष्ट्रवादी या हिन्दू कहकर मज़ाक बनाया जा रहा था या अभी भी मज़ाक बनाया जा रहा है वे सब ही जनपक्षधरता के कलमकार हैं।

शिवदान सिंह चौहान साहित्यकार को स्वभावतः प्रगतिशील होने पर जो तर्क देते हैं वह आलोचना पत्रिका न.1 सम्पादकीय में है 'इसमें संदेह नहीं कि महान लेखकों की रचनाओं में अपने-अपने काल की सामाजिक विचार-धाराएँ व्यक्त हुई हैं और उनकी कृतियाँ अपने समय के ऐतिहासिक वास्तव से पूर्णतः सम्बन्ध है।'

शिवदान सिंह चौहान साहित्यकारों को उसके युग और सामाजिक हालात के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं, "लेकिन इन महान लेखकों को किसी शोषक वर्ग के खूँटे में बाँध कर जाँचना व्यर्थ होगा, क्योंकि उनकी रचना में अपने समय का समग्र जीवन, तमाम वर्गों के अन्तःसंबंध प्रतिबंधित हुए हैं और इस प्रकार उस युग की मूल समस्याओं का उद्घाटन हुआ है।"

शिवदान सिंह चौहान 'साहित्य की परख' निबंध में लिखते हैं कि साहित्यकार या आलोचक को तटस्थ होने में कठिनाई है। इसके लिए जो तर्क देते हैं- 'वर्तमान में हमारी दृष्टि बहुत संकुचित

और सीमित रहती हैं 'वस्तुएँ, घटनाएँ, भावनाएँ, राग-द्वेष के कारण सारे दृष्टिपटल पर छा जाते हैं और स्वयं व्यक्तिगत या सामाजिक रूप से इन घटनाओं या भावनाओं से अपने आप को निर्लिप्त और निस्संग नहीं रख सकता, अतः जो उसे महत्वपूर्ण लगता है वही स्थायी और सुन्दर भी लग सकता है।'

चौहान जी का यह विचार साहित्यकार और आलोचक के ऊपर प्रश्न करने को मजबूर करता है। यह विचार सार्थक नहीं लगता है।

'साहित्य और कला' पर चौहान जी का विचार 'आलोचना' (न.5) में प्रकाशित है। साहित्य और कला की जो व्याख्या वे देते हैं वह भी एकांगी और सर्वमान्य नहीं होता है 'साहित्य और कला वस्तु चित्रों तथा मानव-चरित्रों की भाषा में जीवन के वैविध्यपूर्ण और परस्पर विरोधी संबंधों और अंतर्संबंधों के यथार्थ को उसके गर्भ में विकासमान संभावनाओं की दृष्टि से कलात्मक रूप से प्रतिबिंबित करती है। साहित्य और कला की कृतियाँ इसका परिणाम होती हैं।'

यहाँ पर कला और साहित्य के प्रति चौहान की दृष्टिकोण से लगता है दोनों में काफ़ी मेल है या दोनों एक दूसरे से किसी प्रकार संबंधित नहीं है। साहित्य को परखने की कसौटी पर शिवदान सिंह चौहान स्वयं उलझते दिखते हैं। समाजशास्त्रीय या कुत्सित समाजशास्त्रीय सवाल में सदा स्वयं ही फँसते दिखते हैं।

'आलोचना (न.1) के सम्पादकीय में चौहान लिखते हैं, 'आचार्य शुक्ल के पश्चात् हिंदी-आलोचना ने अपने विकास के लिए नये पथ खोजें' समाजशास्त्र का आधार लेकर प्रगतिवाद और मनोविज्ञान का आधार लेकर 'प्रतीकवाद' की विचारधाराएँ साहित्यलोचन का दृष्टिकोण बनी। परन्तु पिछले कई वर्षों से हिंदी का आलोचना

'साहित्य एक अवांछित गतिरोध की स्थिति में पड़कर मनमाने पथों पर भटकता रहा।'

अब हमें यह विचार करना है कि चौहान जी की नज़र में कुत्सित समाजशास्त्र क्या है? उसने किस तरह से प्रगतिशील साहित्य को पथ भ्रष्ट कर दिया। प्रगतिवाद ने समाजशास्त्र का आधार लिया वह सही है। तो फिर कैसे कुत्सित हो गया। शायद मार्क्सिय सौंदर्य शास्त्र का दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय नहीं होकर ऐतिहासिक भौतिकवादी है। वह समाजशास्त्र भारतीय परिप्रेक्ष्य में कुत्सित ही है। 'साहित्य की परख' में चौहान कुत्सित समाजशास्त्रियों द्वैतवादी दृष्टिकोण का उल्लेख इस तरह से करते हैं, "प्रगतिवादी समीक्षकों में साहित्य के कलापक्ष और सामाजिक पक्ष के संबंध में एक द्वैतभावना सदा ही बनी रही और वे इस बात का निर्णय न कर पाते थे कि रचना में इन दोनों तत्वों का समावेश किस मात्रा और अनुपात में होता है अथवा उनमें किसका आत्यंतिक महत्व है। इस विकृत यॉत्रिकता का ही परिणाम था कि प्रगतिवादी आलोचना ने व्यवहारतः किसी रचना में व्यक्त विचारों को ही इस रचना के साहित्यिक मूल्य की कसौटी मान लिया।"

चौहान कलापक्ष और सामाजिक पक्ष में जो भेद है उसे यहाँ स्पष्ट नहीं कर पाते हैं। साहित्य की विषय वस्तु और कला को एक ही चीज मानकर चलना चौहान की कुत्सित समाजशास्त्र पर ही सवाल खड़ा करता है।

सबसे अहम् और मजेदार 'आलोचना' (न.4) में शिवदान सिंह चौहान ने कुत्सित समाजशास्त्रियों की भूल सुधारते हुए जो लिखा है वह देखने योग्य है, 'प्रगतिवाद साहित्य की धारा नहीं, साहित्य का मार्क्सवादी दृष्टिकोण है।'

चौहान साम्यवादी यथार्थवादी के साहित्य

को ही प्रगतिशील साहित्य मानते हैं। साम्यवादी यथार्थ क्या है? यह क्या कोई धारा है, या दृष्टिकोण? 'साम्यवाद, यथार्थवाद वर्तमानकालीन मजदूर-किसान और निम्नश्रेणी के दूटपुंजियों का साहित्य होता है। जिसमें ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक शोध द्वारा उनकी आंतरिक एकता दृढ़ करने की कोशिश की जाती है।'

चौहान के दृष्टि से छायावादी और राष्ट्रवादी कवि स्वभावतः अपने लेखन में प्रगतिशील न होकर प्रतिक्रियावादी थे। गुप्त, निराला, प्रसाद आदि को वे प्रतिक्रियावादी मानते हैं।

शिवदान सिंह चौहान 'संस्कृति, साहित्य और विद्यार्थी' नामक निबंध में विद्यार्थी वर्ग के प्रति विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं 'हम पूंजीवाद का अंत करने और साम्यवाद कायम करने के लिए अभी से संगठित प्रयत्न करें।'

चौहान हिंदी मार्क्सवादी आलोचना को सीधे तौर से पार्टी लाइन से जोड़ते हुए दिखते हैं। चौहान समाजवादी क्रांति और साम्यवादी यथार्थवाद का समर्थन करते हैं लेकिन स्वाधीनता, शांति और जनतंत्र के उद्देश्य हेतु प्रगतिशील साहित्य के लिए अवांछित समझते हैं।

'आलोचना' (न.4) में चौहान लिखते हैं- 'प्रगतिशील साहित्य स्वाधीनता, शांति और जनतंत्र का साहित्य है प्रगतिशील देश से साम्राज्यवाद सामन्तवाद की संस्कृति को निकालने के लिए संघर्ष करता है।' इससे यह साफ़ जाहिर होता है कि चौहान जी ने प्रगतिशील साहित्य का अर्थ एक विशेष राजनीतिक पार्टी और प्रोग्राम के साथ में बाँध दिया है।

'1951 की नई चेतना' (4) में चौहान स्वाधीनता के सवाल पर तटस्थ रहने की बात करते हुए लिखा है- 'इसलिए अगर कोई कहे कि हम आज़ाद हो गए या कहें कि हम नहीं, अभी

हम गुलाम हैं तो हमें इन बहसों में पड़ने से गरज नहीं है। पर मानव और मानव का शोषण समाप्त हो इसके लिए समाज और साहित्य का लक्ष्य के बारे में अपनी राय प्रकट करते हुए कहते हैं- "मानव पर मानव का शोषण समाप्त करके न्याय, समानता, प्रेम और मुक्त सहयोग पर आधारित एक सच्चे वर्ग मुक्त, शोषण मुक्त, अज्ञान मुक्त, मानव समाज का निर्माण ही इस अविराम संघर्ष की मूल प्रेरणा और इसका लक्ष्य और प्रयोजन है जो इतिहास को गति प्रदान करता है।"

पर यहाँ जो दो परम्पराओं की बात चौहान भारतीय समाज से वर्णमुक्त का पैरोकार नहीं करते हैं। जबकि भारतीय समाज में वर्णवाद ही सामाजिक विकास में बाधक है। बुद्ध परम्परा की बात करते हैं, चतुष्ट वर्ण की संकीर्णता पर कलम चलाते हैं लेकिन वर्णमुक्ति की बात से दूर दिखते हैं। यहाँ पर इनके विचार से असहमति है। चौहान जी के कहने का मतलब यही साबित होता है कि हर तरह की मुक्ति की बात हम सुनने के लिए तैयार हैं जब तक साम्राज्यवाद से मुक्ति की बात न कही जाए।

साहित्य की रचना और उसके उद्देश्य पर अपना विचार प्रकट करते हुए शिवदान सिंह चौहान 'नई चेतना' में कुत्सित समाज शास्त्रियों पर आरोप लगाते हुए लिखा, 'समाजवादी विषय-वस्तु और राष्ट्रीय रूप विधान इस मार्क्सवादी सिद्धांत को उलट कर ये साथी ऐसी रचनाएँ करते रहे।' अगर ये साथी अपने साहित्य में समाजवादी विषय-वस्तु नहीं देते रहे तो इस पर इतना कोप क्यों? समाजवादी विषय वस्तु की मांग करना कुत्सित समाजशास्त्र है या उसके बदले जनवादी विषय-वस्तु की मांग करना?'

मतलब साहित्य में अगर जनतंत्र के समर्थन का उद्देश्य रखा जाए तो वह संकीर्णतावाद है

अगर समाजवादी यथार्थवादी का उद्देश्य रखा जाए' तो ठीक है।

'क्या साहित्य प्रौपेगेंडा है? नाम के निबंध में शिवदान सिंह चौहान सामाजिक क्रांति या बदलाव हेतु नारा पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं- 'साहित्य वर्ग-युद्ध का एक हथियार है।' यह एक गलत नारा था कि मार्क्सवादी साहित्य नारा लगाने और नारा देने में अधिक जोर देते हैं। लेकिन नारा काल-समय और परिस्थितियों के अनुसार विपरीत प्रभाव और विकास में बाधा उत्पन्न करता है।

नारा लगाने का काम राजनीति दल के कार्यकर्ताओं का होता है। लेखक या साहित्यकार का नहीं। मार्क्सवादी वामपंथी या कम्युनिस्ट दल एवं सरकार विश्व के जिस देश में है वहाँ पर

गणतंत्र या जनतंत्र नाम की कोई चीज नहीं होती। वामपंथी दलों एवं लेखक संगठनों में भी कहने को तो गणतांत्रिक कहा जाता है पर तानाशाही चलती है। चौहान अपनी आलोचना कर्म को जनपक्षीय न बनाकर राजनीति दल का घोषणा पत्र सा साबित करने के लिए प्रपंच रचते हैं।

निष्कर्षतः हम वर्तमान समय में जिस तरह से हिंदी मार्क्सवादी आलोचना वामपंथ/ कम्युनिस्ट पार्टी का दरबारी घोषणा पत्र बनता दिख रहा है उस परम्परा के प्रवर्तक शिवदान सिंह चौहान के आलोचना को पढ़कर और वर्तमान समय के तथाकथित पार्टी कार्ड होल्डर आलोचकों की लेखन से बहुत हद तक साम्य है। हिंदी आलोचना साहित्य को विशेष सन्दर्भ (मार्क्सवाद) ने कैरियेरिस्ट में बदल डाला जिसका श्रेय शिवदान को जाता है।

सम्पर्क : डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, मिदनापुर कॉलेज (ऑटोनोमस), पश्चिम मिदनापुर (पश्चिम बंगाल), पिन 721101, मो. : 09434153501

प्रेमचन्द की लेखकीय प्रतिबद्धता

श्रीनारायण पाण्डेय

प्रेमचन्द ने प्रसाद जी, के नाटक - *स्कन्दगुप्त* की समीक्षा करते हुए लिखा है कि हम प्रसाद जी से यहाँ निवेदन करेंगे कि आप को ईश्वर ने जो शक्ति दी है, उसका उपयोग वर्तमान समाजिक और राजनीतिक समस्याओं के हल करने में लगायें - इन गड़े मुर्दों को उखाड़ने से फायदा नहीं। (माधुरी, अक्टूबर 1928) प्रेमचन्द की भी इक्की-दुक्की रचनाएँ इतिहास सम्बन्धी हैं, मगर बाकी सारा साहित्य, यहाँ तक कि उनके द्वारा सम्पादित अपनी पत्रिका 'हंस' और 'जागरण' भी किसी न किसी रूप में उनके इसी कथन की साक्षी हैं।

यों तो उन्होंने लेखन के लिए उपन्यास और कहानी जैसी विधा को ही चुना था, नाटक पर भी हाथ अजमाया था, मगर मूलतः टिके कथा-साहित्य पर ही। अपने को केन्द्रित किया, किसानों और नारियों की तत्कालीन समस्या पर। दोनों का ताना बाना राजनीति और समाज का था। समाधान भी उसी में था। दरअसल प्रेमचन्द हिन्दी नवजागरण के ही अग्रदूत थे, और वह नवजागरण सामाजिक और राजनीतिक दोनों तरह की पराधीनता से मुक्ति का आन्दोलन था। प्रेमचन्द ने इन दोनों बन्धनों से मुक्ति का आह्वान किया है।

उनके कथा-साहित्य में यह प्रतिरोध जितना दर्ज है, उससे अधिक मुखर वे अपने कथेतर लेखन में हुए हैं, जिसे उन्होंने अपने व्याख्यानों, और पत्र-पत्रिकाओं की टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षाओं और आलेखों में व्यक्त किया है।

सामाजिक संस्कारों में यों तो कई एक थे, उन्हीं में हिन्दू समाज में व्याप्त कूपमंडुकता, ढोंग, पाखण्ड, ठगी और कुछ प्रचलित ऐसी मान्यताएँ थीं, जो आज के समाज के लिए लज्जा जनक थी। प्रेमचन्द ने 1928 में - *स्कन्दगुप्त* की आलोचना में जो शिकायत की थी, अपनी शिकायत पर क्षमा माँगते हुये, अपनी सफाई देते हुये उन्होंने 'कंकाल' के प्रकाशित होने पर एक पत्र प्रसाद जी को लिखा था। यह पत्र प्रेमचन्द की लेखकीय प्रतिबद्धता पर मुहर लगाता है। पत्र उद्धृत कर रहा हूँ।

प्रिय प्रसाद जी,

हंस कार्यालय
सरस्वती प्रेस, काशी
24.01.1930

पहले मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं कंकाल पर आपको बधाई दूँ। मैंने इसे उम्मीद से यहा तक पढ़ा और मुग्ध हो गया। मैंने एक बार आपकी पुस्तक -समुद्रगुप्त (स्कन्दगुप्त) की आलोचना करते हुए लिखा था कि आपने इसमें गड़े मुर्दे उखाड़े हैं। इस पर मुझको काफी सजा भी मिली थी पर जो लेखनी जनता की समस्याओं को

इतने आकर्षक ढंग से जनता के सामने रख सकती है, इस तरह दिल को हिला सकती है, उसे, फिर से वही बात मेरे मुँह से निकलती है, क्षमा कीजिये, पूर्वजों की कीर्ति का भविष्य के निर्माण में बड़ा हाथ होता है, लेकिन हमें तो नये सिर से दुनिया बनानी है। अपनी किस पुरानी वस्तु पर गौरव करें? वीरता पर? दान पर? तप पर? वीरता क्या थी? अपने ही भाइयों का रक्त बहाना। दान क्या था? एकाधिपत्य का नग्न-नृत्य और तप क्या था? वहीं जिसने आज 80 लाख बेकारों का बोझ हमारी दरिद्र जनता पर लाद दिया है। अगर 5 रु. प्रति मास एक साधु को जीविका पर खर्च हो तो लगभग 20 करोड़ हमारी गाढ़ी कमाई के उसी पुराने तप के आदर्शों को भेंट हो जाते हैं। किस बात पर गर्व करें? वर्णाश्रम धर्म पर जिसने हमारी नींव खोद डाली? कंकाल में एक समाज के सच्चे हितैषी के आँखों का, गर्म, बड़ी-बड़ी बूदों वाला आँसू है। घंटी और यमुना का क्या कहना मैं हंस में इसकी वृहद् आलोचना करूँगा। इसमें फिर उसी जनता की सामाजिक समस्या की प्रतिवद्धताओं को दुहराया है। मैं यहाँ उन्हीं के शब्दों में उनकी बातों को रखने की कोशिश करूँगा, जिससे आपको उनको समझने में मदद मिलेगी।

प्रेमचन्द हिन्दू थे, हिन्दू धर्म की कमियों से खूब परिचित थे। दूसरी ओर वे ऐसे लेखक थे जो तत्कालीन सामाजिक चिन्ताधारा वैज्ञानिक भौतिकवाद से परिचित और प्रभावित थे। इसलिए अपने समाज को, हिन्दू धर्म के नाम पर ठगी जाने वाली जनता को, धार्मिक कुरीतियों से मुक्त करना चाहते थे। मैं उनके लेखन से कुछ का हवाला दे रहा हूँ। (हंस के 1933 में) उन्होंने - **राहु के शिकार** एक टिप्पणी लिखी थी। हम सभी जानते हैं कि चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के

लिए राहु-केतु की कथा प्रचलित है। जबकि आज के विज्ञान ने इस कथा को झूठा-विश्वास साबित कर दिया है। मगर हम आज भी उससे बंधे हुये हैं।

इस पर उन्होंने लिखा था कि आज का युग वैज्ञानिक सोच का युग है, मगर हम भारतवासी अभी भी अन्धविश्वास के मकड़जाल में फँसे हुये हैं। इसी तरह का एक अन्धविश्वास राहु के सूर्य और चन्द्र ग्रहण का है। प्रेमचन्द ने लिखा है कि - ग्रहण स्नान, सोमवती स्नान और लाखों तरह के स्नानों की बला, हिन्दू के सिर से कभी टलेगी या नहीं, समझ में नहीं आता। आज भी संसार में ऐसे अन्धविश्वास की गुंजाइश है तो भारत में। अभी भी करोड़ों आदमी यही समझते हैं कि सूरज भगवान और चन्द्र भगवान पर संकट आता है और उस संकट पर गंगा स्नान करना प्रत्येक प्राणी का धर्म है। कितने अच्छे-खासे पढ़े-लिखे लोग भी इतनी आस्था से गंगा में डुबकियाँ लगाते हैं, मानो यही स्वर्ग द्वार हो। लाखों आदमी अपने गाढ़े पसीने की कमाई खर्च करके, धक्के खाकर पशुओं की भाँति रेल में लादे जाकर, रेल में जाने गँवाकर नदी में डूब कर स्नान करता है, केवल अन्धविश्वास में पड़कर। न जाने यह मिथ्या धर्म भारत का गला कब छोड़ेगा?

इसी तरह हिन्दू समाज में प्रचलित कुछ रीति-रिवाजों पर उन्होंने तीन लेख लिखे। शीर्षक है, हिन्दू समाज के वीभत्स दृश्य, लाश की दुर्गति, 2. अंधविश्वास, 3. मन्दिरों पर एकहषि। लाशों की दुर्गति पर लिखते हुए लिखा कि - किसी हिन्दू के मरते ही उसके सगे-सम्बन्धियों को उससे लेश मात्र भी ममता नहीं रह जाती। चटपट बाँस की खाट बना, शव को रस्सी से कसकर बाँध, लोग किसी नदी या मरघट की ओर भाग चलते हैं। अगर किसी अमीर की लाश

है, तो उसपर रेशमी या शाल का कफन है, गरीब की है तो मामूली नैनसुख की और अनाथ है तो चिथड़े ही उसके कफन के लिए काफी है।... लाश को बेशक देर तक घर में न रखना चाहिये लेकिन यह क्या कि जिसको जीते जी इतना प्यार करते थे, मरने के बाद उसके साथ जरा भी मुख्यतः, जरा भी सौजन्य नहीं दिखा सकते। और रास्ते में 'राम नाम सत्य है' का वह शोर मचता है कि कुछ न पूछिये। अगर रात का समय हुआ तो सारे मुहल्ले की नींद खुल जाती है।

ईसाइयों और मुसलमानों को देखिये, उनकी अन्त्येष्टि क्रिया कितनी शांत, गंभीर, कोमल और सौजन्यपूर्ण होती है।

यह तो हुई रास्ते की बात। श्मशान का दृश्य तो और भी घृणोत्पादक होता है वह लकड़ी की चिता, शव का उस पर लिटाया जाना, वह आग का लगना, चिरान्ध, नंग-धड़ंग लोगों का डंडे लिए चिता की लकड़ियों का उकसाना, और शव का उलटना-पलटना वह कपाल-क्रिया, आँतों का फूट कर बाहर निकलना - इतना रोमांचकारी दृश्य है कि जो उनके अभ्यस्त नहीं हैं, उन्हें कई दिन तक ग्लानि होती रहती है। इससे बढ़कर शव की क्या दुर्दशा हो सकती है। क्या अपने परिजनों की दुर्दशा करना ही समस्याओं में लिखा है।

इस दुर्दशा के बाद आत्मा शान्ति का खटाराग शुरू होता है, और तेरहवें दिन ब्रह्मभोजन से उसकी समाप्ति होती है। कर्म के नाम पर कैसे-कैसे पाखंड किये जाते हैं, वहीं पिंडदान और वह महापात्रों के नखरे और वही बिरादरी वालों का मूछों पर ताव देकर दावतें उड़ाना - सारी लीला हिन्दू संस्कृति को हास्यास्पद बना देती है। इस समय जो प्रथा प्रचलित है, उसमें

सुधार और सुरुचि की बड़ी आवश्यकता है।

प्रेमचन्द ने अपने समय में लाशों की यह दुर्दशा देखी थी। आज तो आडम्बर और बढ़ा है। अब बड़े लोगों या राजनेताओं या धर्मगुरुओं के शवों की प्रदर्शनी होती है, तो कुछ शवों को इस्तेमाल प्रदर्शनी के लिए किया जाता है। इस क्रिया में परिवर्तन आवश्यक है, वह कानून से नहीं स्व-विवेक से सम्भव है। हमें याद है, ट्रयोर स्कूमित्र की दादी मर गई थीं, वे लोग गाजे-बाजे के साथ शव-संस्कार के लिए जाना चाहते थे। उनके पिता ने रोक दिया। इतना भर कहा यह सब अपनी माँ के मरने पर करना। नसीहत है न। दूसरी चीज जो उन्हें नागवार गुजरी थी वह है - अंधविश्वास। आज जिस तरह की माहौल बनाया जा रहा है उसमें जिन अन्धविश्वासों को आज के वैज्ञानिक युग में हमें भूल जाना चाहिये था, उन्हें धर्म का अंग बनाकर फिर से प्रचालित किया जा रहा है। उन्होंने लिखा है कि हिन्दू समाज में पूजन के लिए केवल एक लंगोटी बाँध लेने और देह में राख मल लेने की जरूरत है। अगर गांजा और चरस उड़ाने का भी अभ्यास हो जाए तो और भी उत्तम। यह स्वांग भर लेने के बाद फिर बाबा जी देवता बन जाते हैं। मूर्ख हैं, धूर्त हैं, नीच हैं पर इससे कोई प्रयोजन नहीं। वह बाबा हैं। बाबा ने संसार त्याग दिया, माया पर लात मार दी और क्या चाहिये। अब वह ज्ञान के भंडार हैं, पहुँचे हुए फकीर, हम उनके पागलपन की बातों में मनमानी बारीकियाँ खोजते हैं, उन्हें सिद्धि का आगार समझते हैं। फिर क्या है बाबा जी के पास मुराद माँगनेवालों की भीड़ जमा होने लगती है। कोई नहीं सोचता कि लंपट, दुराचारी आदमी लंगोटी-लगा कैसे सिद्ध हो सकता है। सेठ-साहूकार, अमले-फेले बड़े-बड़े की स्त्रियाँ उनके दर्शन को आने लगती हैं। जिस समाज में

विचार मंदता का ऐसा प्रकोप हो, उसको संभलते बहुत दिन लगेंगे।

इस अंधविश्वास से मतलब निकालने वालों के बड़े-बड़े जत्थे बन गए हैं। ये लोग रूप धरना खूब जानते हैं, बाबाओं की पेटेंट शैली में बात करने का, नये-नये हथकंडे खेलने का, इन्हें खूब अभ्यास होता है। किसी उजाड़ स्थान पर डेरा डाल देते हैं, किसी तरह अफवाह फैला दी जाती है, बाबा जी फलाहारी हैं, केवल एक बार तोला भर दूध ही पीते हैं। 'बाबा जी संसार मिथ्या है' का उपदेश देने लगते हैं। उधर शक्कर और आटे-घी की झड़ी लग जाती है। मर्द भक्तों से अधिक संख्या स्त्री भक्तों की होती है। कोई लड़के की मुराद लेकर, कोई पति को सौतिन से छुड़ाने के लिए आने लगती है। जिन लफंगों को दो आने की भी न लगती, वे ही हिन्दुओं के इस अंधविश्वास के कमाई को खूब उड़ाते हैं, नशा पीते हैं और खूब मौज करते हैं, बिना हल्दी-फिटकिरी के माल चोखा करने का यह व्यवसाय इतना आम हो गया है कि आज हर पचीस आदमियों में एक साधू है। जिस समाज पर इतने मुफ्तखोरों का भार लदा हुआ है, वह कैसे पनप सकता है, कैसे जाग सकता है। ये लोग बार-बार यही प्रयास करते रहते हैं कि समाज अन्धविश्वास के गर्त में मूर्छित पड़ा रहे, चेतने न पाये।

हमारे तीर्थ स्थान क्या है? ठगों के अड्डे और पाखंडियों के अखाड़े। जिधर देखिये धर्म के ढोंग का व्यापार गर्म है। गली-गली मंदिर, गली-गली पुजारी और भिक्षुक, पूरे नगर इन्हीं जीवों से आबाद है जिनका काम ही है कि धर्म का ढोंग रचकर जनता को बेवकूफ बनाएँ। जब जनता खुद ठगी जाना चाहती है तो ठगने वाले जरूर पैदा होंगे। जरूरत ही तो आविष्कार की माँ है।

जिस समाज पर एक करोड़ कोतल भूसल-चन्दों के भरण-पोषण का भार हो, वह न कंगाल रहे तो दूसरा कौन रहे। जो कुछ तन-पेट काट कर जनता ने बचाया था। वह अन्धविश्वास की भेंट चढ़ गया। इस आर्थिक दरिद्रता से बढ़कर इस अन्धविश्वास का फल जनता की बौद्धिक दुर्बलता है। उसे नदी में गोतामार लेना या शिवलिंग पर जल चढ़ा देना, किसी भाई से सहानुभूति रखने या अपने व्यवहारों में सचाई का पालन करने की अपेक्षा ज्यादा फलदायक मालूम होता है। उसने असली धर्म को छोड़कर जिसका मूल तत्व है, समाज की उपयोगिता, धर्म के ढोंग को धर्म मान लिया है। जब तक वह धर्म का यह असली रूप न ग्रहण करेगा, उसके उद्धार की आशा नहीं। शिक्षित समाज के सामने जितनी समस्याएँ हैं, उनमें शायद सबसे कठिन यही समस्या है। यहाँ उसे अन्धविश्वास की प्रबल पोषक शक्तियों का सामना करना पड़ेगा। जो अनन्त काल से जनता की विचार-शक्ति पर कब्जा जमाये हुये हैं। कितना वीभत्स है यह दृश्य कि एक मोटा-सा जटाधारी जीव धूनी जलाये बैठा हुआ है और एक दर्जन मनुष्य उसके पास बैठे चरस के दम लगाकर अपने जीवन को सफल कर रहे हैं। जनता की मनोवृत्ति जब तक ऐसी है, केवल राजनैतिक अधिकारों से उसका कल्याण नहीं हो सकता। (हिन्दू समाज की वीभत्स दृश्य-2 से) प्रेमचन्द ने यह लिखकर आशा व्यक्त की है कि न जाने कब वह शुभ समय आयेगा कि हमारा समाज शीघ्र अपने कर्तव्य को समझ पायेगा कि उसके हाथों में देश को जगाने की कितनी बड़ी शक्ति है।

प्रेमचन्द ने यह सब कुछ 1934 ई. में लिखा था। आज 2022 है, मगर अभी न वह शुभ दिन आया न साधुओं ने अपनी शक्ति को

पहचाना। जिन राजनीतिज्ञों ने उनकी शक्ति को पहचाना है उनका उपयोग देश को जगाने में कम सुलाने में ज्यादा कर रहे हैं। अन्धविश्वास घटने का कौन कहे और भी बढ़ रहा है।

हिन्दू समाज के वीभत्सता का दृश्य 3 है मन्दिरों पर एक दृष्टि। आज ही मन्दिर हमारी दृष्टि में नहीं आये हैं, तब भी आये थे, 1936 में। मगर आने आने में फरक है, दृश्य को देखने का। अपना अपना चश्मा है। आज के दृश्य को देख रहे हैं, प्रेमचन्द के दिखाए मन्दिरों को भी देखिये। सच कालजयी होता है, क्या नया, क्या पुराना। अगर तुलसीदास का कहा हमारे काम का है तो प्रेमचन्द का भी है। कभी-कभी अतीत में वर्तमान झलकता है और कभी वर्तमान में अतीत। प्रेमचन्द का कथन बीते दिनों के लिए है, मगर वर्तमान पर भी टिप्पणी है।

उन्होंने लिखा है - हिन्दू समाज के परम पवित्र तथा माननीय मन्दिरों की ओर दृष्टिपात करने से हृदय काँप उठता है। वहाँ की दशा दयनीय ही नहीं लज्जाजनक भी है। जहाँ भक्ति की ज्ञान की आत्म साधन की तथा तपस्या की बिरलधारा बहाकर लोगों के जीवन को सुन्दर और सुखकर बनाना चाहिये, वहाँ आज दुराचार, पापाचार, भ्रष्टता तथा दुष्कृत्यों का केंद्र देख कर आत्मा काँप उठती है। उन्हें देखकर एक जोरदार प्रश्न उठता है कि क्या वही मंदिर हैं? क्या वहीं भगवान का निवास है?

यह बात किसी से छिपी नहीं है कि इन मन्दिरों की आड़ में आज बड़े-बड़े लज्जाजनक कृत्य हो रहे हैं। पुजारियों का महन्तों का और धर्मगुरुओं का जीवन भयानक विलासिता से भरा हुआ है। वे मन्दिरों की आड़ में जघन्य से जघन्य कर्म करते नहीं शर्माते। ईश्वर को गाना सुनाकर खुश रखने के लिए उन्हें वेश्यायें चाहिये। इस

बहाने वे अपनी राक्षसी कामना को पूरा करते और अपने जीवन को विलास-वासना के गहरे गड्ढे में डाल देते हैं।

इस पर भी हिन्दू समाज के लिए वे पूज्य हैं, माननीय हैं, और देवता तुल्य हैं। क्योंकि वे पुजारी हैं, महन्त हैं और धर्मगुरु हैं। प्रतिदिन अनेक भोली-भाली तथा धर्म उपासक पुण्य कमाने के लिए मन्दिरों में पहुँचती हैं, और व उन ईश्वर के प्रतिनिधियों द्वारा या उनके संकेत मात्र से गाएब कर दी जाती हैं और उनकी काम-वासना की शिकार बन जाती हैं। हिन्दू समाज को यह सब कुछ मालूम है लेकिन वह आँखों पर पट्टी बाँधकर जबान पर ताला लगाकर चुप है, क्योंकि मन्दिर के लोग धर्म के ठेकेदार हैं।

जहाँ इन पुजारियों का जीवन सीधा-सादा, पवित्र और त्यागपूर्ण रहना चाहिये, वहाँ आज वे इन सब बातों के विपरीत सद्गुणों के भण्डार बने हुए हैं। उनके विषय क्या कहा जाए। दिखलाने के लिए तो वे सच्चे सधर्मी हैं, त्यागी हैं, और तप तथा भक्ति के साक्षात् अवतार हैं, लेकिन अच्छी तरह देखने पर ही उनका असली रूप प्रकट होता है। उनमें ढोंग, छल और कपट कूटकूट कर भरा हुआ है। यों कहना चाहिये उनका चरित्र अद्भुत हैं। माँस, मछली, शराब, गँजा और अफीम आदि चीजों के बिना उनका काम नहीं चल सकता।

उन पर दृष्टिपात कीजिये। देशी मिलों का बढ़िया कपड़ा उनके शरीर को चुभता है, गड़ता है, उससे उनका शरीर छिल जाता है। उन्हें खास मैन्चेस्टर का बना हुआ महीन मलमल चाहिये। उन्हें देशी से क्या मतलब। वे तो देश के धर्मगुरु हैं। महन्त हैं, पुजारी हैं। और जब देश में कोई अच्छी बात होती है, कुप्रथाओं के विरुद्ध आवाज उठाई जाती है, पुरानी और

लज्जाजनक रूढ़ियों को मिटा डालने का प्रयत्न किया जाता है, तो वे धर्म के ठेकेदार, समय को न देखते हुए अपने नीच स्वार्थ-साधन के लिए ऐसे कार्य के विरुद्ध अपनी पूरी ताकत लगा देते हैं।

मन्दिरों के यह विधातागण नये युग की आवाज को नहीं सुन सकते। नये जमाने की जोरदार लहर के विरुद्ध खड़े होने में उन्हें सुख मिलता है। पर यह निश्चित है कि अगर उन्होंने यही क्रम रखा, यदि उनका यही हाल रहा, तो वह दिन भी दूर नहीं है जबकि नवीन युग की प्रचण्ड शक्ति उनके अस्तित्व को ही मिटा देगी। यदि उन्हें इस बात पर वे अन्य देशों की ओर दृष्टिपात करें। वे यह ध्यान से देखें कि नये जमाने की लहर से दूर रह कर धर्म के पुजारियों, महन्तों और धर्मगुरुओं ने क्या फल पाया। सबसे अच्छा तो यह है कि वे अपने को सुधारें। देश की दशा को देखते हुए धर्म के आडम्बरों, उसकी रूढ़ियों और राक्षसी नियमों से मुक्त कराके ही वे अपना, अपने धर्म का, समाज तथा अपने देश का सबसे बड़ा हित कर सकते हैं।

अन्धविश्वास, लाशों की दुर्दशा और मन्दिरों के अधःपतन पर प्रेमचन्द लिख तो अपने समय पर रहे थे। मगर जैसा हमने पहले कहा है कि प्राचीन कभी-कभी प्रासंगिक हो उठता है। और उसमें वर्तमान की समस्या और समाधान दोनों दिखाई देते हैं। मैं यह नहीं कहता कि प्रेमचन्द का जमाना आज का जमाना एक है, मगर न अन्धविश्वास कम हुआ है, न लाशों की दुर्दशा करने से हम बाज आए हैं, और न ही मन्दिरों, धर्मगुरुओं, पुजारियों, महन्तों के व्यवहार को सुनाम मिला है। हाँ, एक बड़ा परिवर्तन जरूर हुआ है कि, धार्मिक और सामाजिक सुधार को भुलाकर अब वे राजनीति में उतर आये हैं। लगता है वे

व्यक्ति की जगह देश को सुधारना अधिक धर्मार्थ मानते हैं। प्रेमचन्द के विचार तत्त्व हैं, वे अपने समय लिख गए, आज का लेखक न अनुभव करता है, न लिखने का साहस जुटा पाता है।

जिस देश में राजनेता धर्म की खाल ओढ़ लें और धर्म राजनीति का झंडाबरदार हो जाए, उस देश में सच्चे धर्म की स्थापना एक नहीं दस राम-रहीम-ईसा जन्म ले कुछ नहीं बिगाड़ सकते। प्रेमचन्द का चाहा नहीं हुआ, किन्तु आशा-चिरजीवी होती है।

प्रेमचन्द ने नये जमाने का उल्लेख करते हुए जिस देश का नाम लिया है वह उस समय की रूस है। रूसी-क्रान्ति के बाद वहाँ धार्मिक पाखंड को समाप्त करने का अभियान चलाया गया था, बाद में उसमें ढील दे दी गई। फिर उसे तेज किया गया था। पूँजीवादी देशों में कम्युनिस्टों को धर्म-विरोधी कह कर प्रचार किया जा रहा था। प्रेमचन्द उनके समर्थक थे। उन्होंने 1934 में ही लिखा था, जब रूस हिन्दू समाज की वीभत्सता का तिरस्कार करते हुए उन्होंने रूस पर धर्म विरोधी आन्दोलन पर टिप्पणी लिखी थी।

रूस में इन दिनों ईश्वर द्रोही सरकार ने फिर जोरों से ईश्वर के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया है। इधर उसके अनीश्वरवादी प्रोपेगण्डा में कुछ सुस्ती आ चली थी, जिसका नतीजा यह हुआ कि जो गिरजे बंद कर दिये गए थे वे फिर खुल गए और जमला में धर्म चर्चा फिर बढ़ गई। दुनिया में इस पर चाहे जितना गुल मगर हम तो यही कहेंगे कि इसकी जिम्मेदारी सोवियत सरकार पर नहीं उन धर्मोपजीवियों पर है जिन्होंने धर्म के नाम पर नाना रकम के पाखण्ड फैला रखे हैं। ईश्वर मन की साधना है। उसके लिए मन्दिरों, मस्जिदों या गिरजाघरों की जरूरत नहीं। वह घर-घर व्यापी हैं, एक एक अणु में उसकी ज्योति

है। वह प्रजा की कमाई पर चैन करनेवाला राजा नहीं कि उसे इसकी चिन्ता हो, कि लोग उससे विमुख न हो जाएँ। जो लोग ईश्वर भक्ति की धुन में बड़े-बड़े महल बनवाते थे कि ईश्वर उसमें रहेगा, वे असीम को चारदीवारी में बंद करके व्यापक ईश्वर का अपमान करते हैं, और जो लोग उसकी प्रतिमा बनाकर उसका श्रृंगार करते हैं, भोग लगाते हैं, उसका विवाह करते हैं, और उसके नाम की माला जपते हैं, वो तो ईश्वर को खिलौना बनाकर ऐसा पाप करते हैं जिसका कोई प्रायश्चित्त नहीं। ईश्वर की उपासना का केवल एक मार्ग है, और वह कर्म, वचन और मन

की शुद्धता, अगर ईश्वर इस शुद्धता की प्राप्ति में सहायक है तो शौक से उसका ध्यान कीजिए, लेकिन उसके नाम पर हर एक धर्म में स्वांग हो रहा है, उसकी जड़ खोदना किसी तरह ईश्वर की सबसे बड़ी सेवा है। और सोवियत सरकार इसी पाखंड का अन्त करना चाहती है। प्रेमचन्द रूस की विचारधारा उनकी कार्यशैली से काफी प्रभावित थे। रूस की प्रशंसा में उन्होंने अन्धम भी लिखा है। कम्युनिज्म में भी धार्मिक अंधविश्वास का खंडन किया गया है।

इस तरह का लेखन उनकी लेखकीय प्रतिबद्धता का अंग था।

संपर्क : 412/3एफ, बक्सी खुर्द, दारागंज, प्रयागराज - 211006, मो. : 8004040576

रामनिहाल गुंजन: रचना विवेक के अप्रतिम उदाहरण कौशल किशोर

वरिष्ठ आलोचक रामनिहाल गुंजन नहीं रहे। 19 अप्रैल की सुबह उनका निधन आरा; भोजपुर, बिहार स्थित उनके निवास पर हुआ। उनका जाना आहत कर देने वाला है। इससे उबरने में समय लगेगा। दो दिन नहीं बीतता कि सुबह-सुबह उनके मोबाइल की घंटी बज उठती। उधर से गुंजन जी की धीमी पर संजीदा आवाज से मुलाकात होती। पहला वाक्य ही होता कि टहल कर आ गए कि नहीं? चाय पी ली कि नहीं? मैंने तो पी ली है। जैसे उन्हें मेरी दिनचर्या का पता हो। पहले हाल-समाचार, फिर बातों का सिलसिला शुरू हो जाता। वह किसी मीटिंग से कम नहीं होता। उसमें साहित्यिक समाचार, गतिविधियों से लेकर विचारों तक का आदान-प्रदान आदि शामिल रहता। वे हमारे सृजनात्मक काम की प्रगति की जानकारी लेते और सुझाव-सलाह भी देते। जब कभी गुंजन जी से उनके स्वास्थ्य, निजी जिंदगी और परेशानियों के बारे में बात करता तो अक्सर बात बदल देते या टाल जाते।

जैसे पेशेवर क्रांतिकारी होते हैं, उसी तरह गुंजन जी पेशेवर साहित्यकार थे। उनके लिए लिखना और पढ़ना जिंदगी जीने का जरिया था। यह प्राणवायु की तरह था। वे चार पुत्रों के पिता थे। अपने जीवन काल में ही उन्होंने तीन जवान पुत्रों को मरते हुए देखा। जहाँ ऐसी त्रासदियाँ जीवन से विरक्ति पैदा करती हैं, वही गुंजन जी ने इनका बहादुरी से सामना किया। यह साहित्य के प्रति उनका सरोकार और लगाव था जो उन्हें चट्टान की तरह खड़ा रखा। उन्हें जिलाये रखा। दो साल पहले गुंजन जी के तीसरे पुत्र का लखनऊ पीजीआई में इलाज चल रहा था और इलाज के दौरान ही उसका निधन हो गया। उनके लिए इस आघात से उबरने का तरीका भी साहित्य था। बेटे के निधन के सप्ताह भर के अंदर ही उन्होंने विष्णुचंद शर्मा पर लेख लिखा और उसे जिस पत्रिका को वायदा किया था, उसे भेजा। साहित्य के प्रति ऐसा ही उनका समर्पण था।

राम निहाल गुंजन का जन्म 9 नवंबर 1936 को एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था। आरंभिक व उच्चतर शिक्षा आरा : भोजपुर, बिहार के स्थानीय शिक्षण संस्थानों में ग्रहण की। उन्हें 1961 में शोध कार्य के लिए जैनेन्द्र किशोर सम्मान मिला। शुरू में अध्यापन कार्य से जुड़े। 1964 में बिहार राज्य की सेवा में आए। 1998 में यहाँ से सेवा मुक्त हुए। उनकी उम्र 86 के करीब पहुँच गई थी लेकिन बातचीत से कभी नहीं लगता कि उनके दिल दिमाग पर उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव है। उनकी याददाश्त बिल्कुल दुरुस्त थी। हमारी स्मृति से गायब बहुत-सी चीजें उनके यहाँ मौजूद थी। इसमें वे हमारी

मदद भी करते। सृजन के घरातल पर भी वे बहुत सक्रिय थे। इन दिनों कई तरह के काम में व्यस्त थे। 'समकालीन कविता का सौंदर्यशास्त्र' की पांडुलिपि तैयार हो गई थी। वे प्रगतिशील आलोचक अलख नारायण पर एक किताब के संपादन में लगे थे। ग्यारह गजलकारों की गजलों को लेकर 'गजल एकादश' पुस्तक तैयार कर रहे थे। वे नरेश सक्सेना की कविताओं पर काम कर रहे थे। इसके साथ ही आठवें दशक के कवियों की कविताओं पर काम करने की उनकी योजना थी। लोक संस्कृति में भी उनकी रुचि थी। पिछले साल नवंबर 2021 में लोकरंग से संबंधित किताबें और पत्रिकाएँ कथाकार सुभाष चन्द्र कुशवाहा से मंगवाई। नये विषय की तलाश और उसका अध्ययन उनकी आदत में शामिल था।

गुंजन जी जिस तरह सक्रिय थे, उससे कभी नहीं लगा कि इतनी जल्दी वे हमारा साथ छोड़ देंगे। इसीलिए जब 19 अप्रैल की सुबह जलेस, बिहार के सचिव विनीताभ से सूचना मिली तो पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ। 14 अप्रैल को बात हुई थी। सूचना को कन्फर्म करने के लिए हमने उनके दोनों नंबर पर फोन लगाया लेकिन वह बंद था। फिर आरा के साथियों-जितेंद्र कुमार व सुमन कुमार सिंह से संपर्क किया। उन तक सूचना नहीं पहुँची थी। दिन के 10.00 बजे के करीब कवि-आलोचक चंदेश्वर का फोन आया। वे परिवार में एक शादी में शामिल होने के सिलसिले में आरा में थे। उन्होंने कंफर्म किया।

रामनिहाल गुंजन के लेखन की शुरुआत कविता से हुई थी। पहली कविता का शीर्षक 'कवि' था। यह स्थानीय मासिक पत्र 'नागरिक' में 1955 में छपी। उसके बाद तो लिखने-पढ़ने का सिलसिला शुरू हो गया। शुरू में उन्होंने

गीत और नवगीत भी लिखे। बाद में गजलों भी लिखीं। 1970 आते-आते हिंदी साहित्य की जमीन बदलने लगी थी। यह लघु पत्रिका आंदोलन का दौर था। बड़े शहरों से ही नहीं छोटे-छोटे कस्बों से लघु पत्रिकाएँ निकलने लगी थीं। नक्सलबाड़ी किसान आंदोलन की वसंत गर्जना साहित्य को नया वैचारिक आवेग प्रदान कर रहा था। आधुनिकतावाद-अराजकतावाद से साहित्य वाम जनवादी दिशा ग्रहण कर रहा था। आरा जनवादी धारा का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक केंद्र था। उथल-पुथल भरे इस दौर से जो वैचारिकी आ रही थी, उसका असर गुंजन जी पर भी पड़ा। उन्होंने 1970 में 'विचार' नाम से ही पत्रिका की शुरुआत की। भले ही उसके कम अंक निकले लेकिन लघु पत्रिकाओं से उनका जीवन्त जुड़ाव जीवन-पर्यंत बना रहा। लघु पत्रिकाओं को अपनी लेखनी से सींचते रहे।

1972 में बलिया से मैं 'युवालेखन' पत्रिका निकालने की योजना बना रहा था। इस प्रक्रिया में जिन प्रमुख रचनाकारों से संपर्क हुआ और साथ मिला, उनमें रामनिहाल गुंजन, अनिल सिन्हा, विजेन्द्र अनिल, रामेश्वर, निरंजन, निर्भय मल्लिक, कृष्ण कुमार चंचल, विश्व मोहन आदि प्रमुख थे। गुंजन जी ने पत्रिका प्रकाशन के सम्बन्ध में न सिर्फ बहुमूल्य सुझाव व अपनी रचना दी बल्कि विजेन्द्र अनिल, वेदनन्दन, अरविन्द गुप्त आदि से रचनात्मक सहयोग भी दिलवाया। पत्रिका के पहले अंक में उनकी कविता छपी। यह अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ वियतनामी जनता के मुक्ति संग्राम को लेकर है। 1972 में लिखी इस कविता को उद्धृत करना आवश्यक है। इससे उनके सरोकार और वैचारिकी को समझा जा सकता है। कविता का शीर्षक है 'वियतनाम की याद में'। वे कहते हैं - 'सेना की एक टुकड़ी

रेंगती हुई/युद्ध के मैदान से लौटती है/और संचार माध्यमों को लांघती हुई/निकल जाती है/घाटियों से होते हुए/उन खेतों में/जहाँ मजदूर और छोटे किसान/अपने अपने कृषि यंत्रों के सहारे/तैयारी में लगे हुए हैं/उनके दिमाग में कौंधता है - आजादी का अर्थ/ और वे बारी-बारी से/अपने मिट्टी सने हाथों में/हथियार संभालते हैं और/युद्ध के मैदानों से लौटे हुए सैनिकों के साथ/प्रस्थान करते हैं उन्हीं मैदानों की ओर/जहाँ आजादी के गीत गाते हुए/हजारों सैनिक कब्रों में सो गए हैं'।

इस कविता में गुलामी के खिलाफ आजादी की उत्कट आकांक्षा की अभिव्यक्ति है। यह दौर है जब साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के विरुद्ध तीसरी दुनिया की जनता मुक्ति-संग्राम चला रही थी तथा भारतीय परिवेश में भी 'मुक्त होबे मातृभूमि' की गूँज थी। गुंजन जी की वैचारिकी की निर्मिति में इन सबकी बड़ी भूमिका है। समाज, साहित्य, जीवन आदि को देखने का उनका नजरिया वैज्ञानिक व मार्क्सवादी होता गया। इसी नजरिये से उन्होंने भारतीय से लेकर विश्व साहित्य का अध्ययन किया और विपुल साहित्य की रचना की। इसमें कविता, आलोचना, अनुवाद, संपादन आदि शामिल हैं।

रामनिहाल गुंजन के चार कविता संग्रह हैं। वे हैं : बच्चे जो कविता से बाहर हैं ;1989, इस संकट काल में ;1999, समयांतर तथा अन्य कविताएँ 2015 तथा समय के शब्द ; 2018। वे अपने पाँचवें कविता संग्रह 'दिल्ली तथा अन्य कविताएँ' के प्रकाशन की तैयारी में थे। उल्लेखनीय है कि पिछले दिनों उन्होंने दिल्ली सीरीज से कई कविताओं की रचना की थी। ये कविताएँ रामकुमार कृषक के संपादन में प्रकाशित पत्रिका 'अलाव' में छपी थी। गुंजन जी की समझ थी कि सम्पूर्ण कवि-कर्म मूलतः सामाजिक कर्म हुआ करता है

जिसमें कवि और जनसमुदाय के बीच संवाद होता है। उनकी कोशिश थी कि 'कविता को कलावाद के घेरे से मुक्त कर उसे वैचारिक संघर्ष का वाहक' बनाया जाए। यही कविता का आत्मसंघर्ष था और यह उनके यहाँ कभी शिथिल नहीं हुआ। उन्होंने अपने को प्रगतिशील व क्रान्तिकारी परम्परा से जोड़ा। उनकी कविता की दुनिया में भगत सिंह, अशफाक, बिस्मिल हैं तो वहीं आचार्य शुक्ल, भिखारी ठाकुर, निराला, राहुल, शमशेर, मुक्तिबोध, परसाई, नवारुण, गोरख पाण्डेय, धूमिल आदि हैं। वे वर्तमान से अवश्य रूबरू थे परन्तु इतिहास को कभी विस्मृत नहीं किया। 'भोजपुर' कविता में वे कहते हैं 'पुरानी विरासत को जीता हुआ भोजपुर/आज भी है नवीन, चिर नवीन।' दुनिया में जिस तरह की आधुनिकता की मार पड़ रही है, उससे क्या भोजपुर बच पायेगा? यह सवाल था, फिर भी उन्हें उम्मीद थी कि भोजपुर में जन संघर्षों की जो सलिला प्रवाहित है, वह इसे कभी आत्मग्रस्त नहीं होने देगी। भोजपुर भोपाल नहीं बन पायेगा। इस उम्मीद को हमने जमीनी सच्चाई बनते देखा भी। भोजपुर में रचना और विचार के आन्दोलन को बढ़ती उम्र के बाद भी गुंजन जी ने आगे बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यह उनकी चिन्ता और चिन्तन में हमेशा मौजूद रहा। वहाँ की साहित्यिक गतिविधियों में उनकी सक्रिय उपस्थिति थी। उल्लेखनीय है कि मृत्यु से छह दिन पहले उन्होंने सुधीर सुमन को बताया भी कि अपने मकान की ऊपरी मंजिल में विचार व विमर्श का केन्द्र बनाने की योजना है। उसका नाम भी 'विचार प्रकाशन' सोच रखा था। इसके लिए निर्माण कार्य चल भी रहा था कि उनका निधन हो गया। अब यह उत्तरदायित्व वर्तमान पीढ़ी विशेष तौर से नई पीढ़ी के ऊपर है कि वे भोजपुर की संघर्षशील

परम्परा को आगे बढ़ाये। यही गुंजन जी सहित रमाकांत द्विवेदी रमता जी, विजेन्द्र अनिल, मधुकर सिंह, चन्द्रभूषण तिवारी आदि के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

रामनिहाल गुंजन ने आलोचना और विचार के क्षेत्र में जिस तरह और जितना काम किया, उससे उनकी प्रमुख पहचान आलोचक की बनी। इस क्षेत्र में उनका विशिष्ट कार्य है। एक दर्जन के आस-पास उनकी आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। वे हैं :- विश्व कविता की क्रांतिकारी विरासत ; 1988, हिंदी आलोचना और इतिहास दृष्टि ; 1988, रचना और परंपरा ; 1989, राहुल सांकृत्यायन : व्यक्ति और विचार ; 1995, निराला : आत्मसंघर्ष और दृष्टि ; 1998, शमशेर नागार्जुन मुक्तिबोध ; 1999, प्रखर आलोचक रामविलास शर्मा ; 2000, हिंदी कविता का जनतंत्र ; 2012, कविता और संस्कृति ; 2013, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी नवजागरण ; 2018। हाल में उनकी कृति 'विश्व साहित्य चिन्तन: विविध आर्यम' आई। जैसा कि आरम्भ में ही इसका उल्लेख किया गया है कि गुंजन जी की साहित्य दृष्टि विश्व दृष्टि है। उनका सरोकार न सिर्फ अपने समाज, राष्ट्र, भाषा और साहित्य से रहा है बल्कि विश्व की व्यापक जनता और उसके साहित्य से है। जनकवि या जनता के कवि की उनकी शर्त व्यापक दृष्टि के साथ अपने जनपद का कवि होना है। उनके लिए नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन ऐसे ही कवि हैं। गुंजन जी की मान्यता रही है कि 'हिंदी कविता जनवादी परंपरा और उसकी मुख्यधारा से जुड़कर ही अपनी सीमा का विस्तार कर सकेगी'। उनका स्वयं का हिंदी की प्रगतिशील-जनवादी धारा से जुड़ाव था। उनके यहाँ संकीर्णता नहीं थी।

रामनिहाल गुंजन की आलोचना का फलक

काफी विस्तृत है। उन्होंने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. रामविलास शर्मा के आलोचना कर्म पर विचार किया है। वहीं, नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि से वे बहस करते हुए मिलते हैं। माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, पंत, निराला, नागार्जुन, शमशेर, केदार, त्रिलोचन, मुक्तिबोध के साथ परवर्ती कवियों जैसे रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, केदारनाथ सिंह, कुमारेन्द्र, शलभ, धूमिल आदि पर भी उन्होंने विचार किया है। राहुल और निराला के व्यक्तित्व और उनके आत्मसंघर्ष पर भी लिखा है। वर्तमान में वे रेणु की कहाँनियों और उनके जीवन संघर्ष पर काम कर रहे थे। गुंजन जी ने विश्व के जनवादी और मार्क्सवादी साहित्यकारों पर भी लिखा है। 2021 में आई उनकी नई कृति 'विश्व साहित्य चिन्तन: विविध आयाम' में ऐसे 16 आलेख हैं। इसमें विश्व कविता की विरासत और सोवियत काव्य परंपरा के मूल्यांकन के साथ जार्ज थामसन, ब्रेख्त, लूँ शुन, प्रेमचंद, पाब्लो नेरुदा, फैंज, अन्टोनियो ग्राम्शी, हॉवर्ड फास्ट, जार्ज लुकाच, गैब्रिएल मार्खेज, एरिक हॉब्सबॉम आदि उनके विचार व चिन्तन के केन्द्र में हैं। गुंजन जी विश्व साहित्य के गंभीर अध्येता थे तथा हिंदी की जनवादी साहित्य परंपरा के लिए इसे जरूरी मानते थे। इसी प्रक्रिया में उन्होंने विदेशी साहित्य का अनुवाद किया। जार्ज थामसन की मशहूर कृति 'मार्किज्म एण्ड पोयेट्री' का 'मार्क्सवाद और कविता' नाम से आई जिसका अनुवाद और संपादन उन्होंने किया। इसी तरह ग्राम्शी की किताब 'माडर्न प्रिंस एण्ड अदर राइटिंग्स' के चुने हुए निबन्धों का 'साहित्य, संस्कृति और विचारधारा' नाम से अनुवाद और संपादन किया।

रामनिहाल गुंजन ने अनेक पुस्तकों व पत्रिकाओं का संपादन भी किया। उनकी संपादित पुस्तकें हैं: वेदनंदन समग्र ; 2000, भगवती राकेश:

कुछ यादें, कुछ रचना प्रसंग ;2001, लिखनेवालों को मेरा सलाम (विजेंद्र अनिल का गजल-संग्रह), विजेंद्र अनिल होने का अर्थ ;2012, नागार्जुन: रचना प्रसंग और दृष्टि आदि। उन्होंने रामचन्द्र शुक्ल शोध संस्थान, वाराणसी की शोध पत्रिका 'नया मानदंड' के सात महत्वपूर्ण अंकों, जो हिंदी के विशिष्ट लेखकों पर केन्द्रित था, का भी संपादन किया। ये लेखक थे: रामवृक्ष बेनीपुरी नलिन विलोचन शर्मा, सुरेंद्र चौधरी, यशपाल, भीष्म साहनी, रांगेय राघव और चंद्रभूषण तिवारी।

इस तरह रामनिहाल गुंजन के लेखन का क्षेत्र काफी बृहद रहा है। उन्होंने कई विधाओं में सृजन किया। नेट, मेल, व्हाट्सएप, फेसबुक, सोशल मीडिया तथा सूचना क्रांति के वर्तमान युग में भी वे हाथ से लिखते थे और वही प्रकाशन के लिए भेजते भी थे। यह गुंजन जी की रचना की गुणवत्ता थी कि उनकी हाथ से लिखी रचनाएँ भी संपादक स्वीकार करते तथा उन्हें प्रकाशित करते। वे लोगों से संपर्क व संवाद के लिए मोबाइल का इस्तेमाल करने लगे थे। इसके साथ ही वे चिट्ठियाँ भी लिखते थे। उनकी खूबी थी कि कोई किताब या पत्रिका मिलने पर अपनी राय पोस्ट कार्ड के माध्यम से अवश्य देते। लेखक के लिए सरोकार और वैचारिक प्रतिबद्धता को वे जरूरी मानते थे। उनकी समझ थी कि लेखक का एक पक्ष होता है और उस पक्ष के साथ मजबूती से उसे खड़ा होना चाहिए। उन्होंने स्वयं को भी लेखन तक सीमित नहीं रखा था और साहित्यिक व सामाजिक गतिविधियों में उनकी सक्रियता थी।

1970 के बाद का दौर साहित्यिक हलचलों से भरा रहा है। एक तरफ हिंदी लेखकों को संगठित करने के प्रयास शुरू हुए, वहीं स्वतंत्र रूप से भी लेखकों के वृहद् सम्मेलन आयोजित

किए गए। गुंजन जी राज्य सचिवालय, पटना में आ चुके थे। उन दिनों साहित्य जगत में कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह, रामनिहाल गुंजन और जितेंद्र राठौर की त्रयी मशहूर थी। इसकी छवि नक्सलवाद से प्रभावित लेखकों की थी। इस दौर की दो विशिष्ट साहित्यिक परिघटनाओं की चर्चा जरूरी है। पहली, 'सिर्फ' पत्रिका (संपादक - नंदकिशोर नवल) की ओर से पटना में लेखकों का बृहद् सम्मेलन और दूसरी, इमरजेंसी के दौरान 1976 में हावड़ा-कोलकाता में 'अभिव्यंजना' पत्रिका; संपादक-डॉक्टर मीरा सिन्हा व आनंद सिन्हा) की ओर से जन-साहित्य सम्मेलन का आयोजन था। इस त्रयी की इनमें सक्रिय व हस्तक्षेपकारी उपस्थिति थी। कुमारेंद्र जी की चर्चित कविता 'एक सूरज माँ के लिए' को लेकर 'स्वाधीनता' के संपादक और 'कलम' के संरक्षक अयोध्या प्रसाद सिंह से बहस हो गई। अयोध्या प्रसाद जी इस कविता के अंत को बदलना चाहते थे। उनका तर्क था कि नक्सलवादी आंदोलन लगभग समाप्त हो गया है। उसका कोई प्रभाव नहीं रहा। इसलिए इन पंक्तियों की कोई सार्थकता नहीं है। गुंजन जी का तर्क था कि प्रतिरोध यदि वास्तविक है तो वह कभी समाप्त नहीं होता। वह भूमिगत जरूर हो जाता है या कुछ समय के लिए परिदृश्य से भले ओझल हो जाए। इसलिए इन पंक्तियों के रहने का औचित्य है। इसका एक ऐतिहासिक महत्व है। बाद में यह कविता अपने मूल रूप में 'कलम' में छपी। गुंजन जी के जीवन में वैचारिक दृढ़ता के ऐसे उदाहरण मिलते हैं।

1973 में बांदा सम्मेलन से लेखकों को संगठित करने की शुरुआत हुई। 1974 में सुलतानगंज (भागलपुर) में बिहार राज्य प्रगतिशील लेखक संघ का सम्मेलन हुआ और 1975 में गया में उसका राष्ट्रीय सम्मेलन। उन दिनों प्रलेस

संस्मृति

का स्ख सत्ता समर्थक था तथा उसने इमरजेंसी का समर्थन किया था। गुंजन जी इस संघ में शामिल नहीं हुए। बाद में जब जन संस्कृति मंच का निर्माण हुआ, तो वे उसमें शामिल हुए। उन्हें बिहार राज्य इकाई का अध्यक्ष बनाया गया और इस उत्तरदायित्व का उन्होंने निर्वहन किया। वर्तमान में वे मंच के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष थे। जीवन में सादगी और व्यवहार में सहजता उनका खास गुण था। आत्मप्रचार के इस युग में बिना शोर किए अपना काम करते जाने में उनका यकीन

था। उन्होंने अपनी किताब 'विश्व साहित्य चिंतन' की भूमिका में लिखा है कि 'आज के लेखकों के लिए जरूरी है कि वे लेखकीय कर्म को गंभीरता से लें और बकौल मुक्तिबोध के "रचना विवेक" का सहारा लें'। गुंजन जी का रचना संसार और उनका जीवन इस कथन को चरितार्थ करता है। अविवेक, कोरी भावुकता, उतावलापन तथा रहस्यमयता के बरक्स लेखकीय गंभीरता, व्यवहार में सहृदयता और रचना विवेक के वे अप्रतिम उदाहरण हैं।

सम्पर्क : एफ - 3144, राजाजीपुरम, लखनऊ - 226017, मोबाइल - 8400208031

प्रेमचंद पूर्व उपन्यासों का स्वरूप एवं महत्व

नगीना लाल दास

उपन्यासों के बारे में जानने की ललक ने मुझे हमेशा हिंदी उपन्यास लेखन के उस युग की तरफ खींचा है जिसे बड़ा ही अमहत्वपूर्ण एवं उपेक्षित समझा जाता रहा है। इस युग के उपन्यासों के कलेवर में घटना प्रधान तथा उद्देश्य में मनोरंजन प्रधान मानकर उसके गुरुत्व पर ध्यान नहीं दिया जाता है। वास्तव में प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यासकारों की भी एक आदर्शवादी परम्परा एवं प्रवृत्ति रही है। हिंदी के आरम्भिक उपन्यासकारों ने ही हिंदी उपन्यास की नींव रखी। उन्होंने हिंदी उपन्यास की उस पृष्ठभूमि को तैयार किया जिसके आधार पर हिंदी उपन्यास आगे चलकर एक महान एवं लोकप्रिय विधा के रूप में विकसित एवं प्रतिष्ठित हुई। हिंदी के आरम्भिक उपन्यासकार उस नींव की ईंट की भाँति हैं जिन्होंने आधुनिक हिंदी उपन्यास की मजबूत एवं विराट स्वरूप की आधारशिला रखी। जिस प्रकार एक मजबूत एवं विशाल मकान की नींव को तैयार करने के लिए पके-पकाए मजबूत ईंट की जरूरत होती है जो जमीन के नीचे दबकर एक विशाल भवन को मजबूती देता है, उसको भव्य एवं सुंदर बनाने में अपने आपको समर्पित कर देता है, ठीक उसी प्रकार हिंदी के तमाम प्रमुख एवं महत्वपूर्ण उपन्यासकारों ने हिंदी उपन्यास के सम्पूर्ण विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया जिसे कभी भी हम नकार नहीं सकते हैं। परंतु यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि हिंदी के महान आलोचकों ने उनके उपन्यासों को मनोरंजन, तिलस्मी एवं जासूसी कहकर नकार दिया। जबकि वास्तविक यह है कि उस काल सभी उपन्यासकारों ने प्रेमचंद को हिंदी उपन्यास लेखन की परम्परा एवं पृष्ठभूमि को एक विरासत के रूप में सौंपा। जिसको पाकर हिंदी साहित्य का धनपत राय आगे चलकर हिंदी कथा साहित्य में उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद के नाम से प्रतिष्ठित एवं विख्यात हुए। प्रेमचंद को हिंदी साहित्य में उपन्यास लेखन की परम्परा एवं पृष्ठभूमि वहीं से मिली जिसकी पृष्ठभूमि जिसे प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यासकारों ने रखी थी। प्रेमचंद उसी परम्परा को आगे बढ़ाकर उसको विकसित किया जिसके माध्यम से उपन्यास फलवती एवं लोकप्रिय विधा बनी है।

खत्री की मृत्यु 1913 में होती है, और प्रेमचंद का पहला उपन्यास 'सेवासदन' 1913 में प्रकाशित होता है। अर्थात् एक पुराने युग का अंत है तो प्रेमचंद के रूप में एक नए युग की शुरुआत होती है। अर्थात् हम कहीं न कहीं यह देखते हैं कि प्रेमचंद को आदर्शवाद, यथार्थवाद की जो पृष्ठभूमि है वह हिंदी के आरम्भिक उपन्यासकारों के उपन्यास से प्राप्त हुई थी। अर्थात् प्रेमचंद को हिंदी साहित्य में हिंदी उपन्यास का एक पूरा ढाँचा या एक आधारशिला

विरासत में प्राप्त हुआ, जिसको आधार बना कर प्रेमचंद हिंदी उपन्यास को आगे बढ़ाने में सफल एवं श्रेष्ठ साबित हुए। लाला श्रीनिवास दास का 'परीक्षागुरु' अपने समय का मूलतः मौलिक आदर्शवादी रचना है, जबकि श्रद्धाराम फुल्लौरी का "भागवती" एक सामाजिक उपन्यास है। ऐसा नहीं था कि उस समय सिर्फ तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी और काल्पनिक उपन्यास ही लिखे गए, बल्कि उस समय सामाजिक यथार्थवादी, आदर्शवादी उपन्यासों की भी रचना हुई। लेकिन आलोचकों ने उस पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया, उस समय के उपन्यासों का सही ढंग से विश्लेषण और मूल्यांकन किए बिना ही उसे मनोरंजन प्रधान, तिलस्मी, ऐय्यारी तथा जासूसी उपन्यास कहकर महत्वहीन घोषित किया और उसे नकार दिया गया।

तत्कालीन उपन्यास चन्द्रकांता, चन्द्रकांता संतति और भूतनाथ, लखनऊ की कब्र, आदर्श हिन्दू आदि जैसे अनेक उपन्यासों को मनोरंजक मानकर उसे नकार दिया जाता है लेकिन वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में इन उपन्यासों को देखा जाए तो इनकी सामाजिक भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। आज जब हम नये युग में प्रवेश कर चुके हैं, जहाँ पर मनोरंजन को घोषित और अघोषित रूप में स्वीकार कर लिया गया है। तब इस तरह के उपन्यासों को नकारा ही क्यों जाए? भूत की कहाँनियों और किस्सों पर आधारित कई फिल्में इस बात का प्रमाण हैं।

आधुनिककाल में सबसे बड़ा द्वन्द्व ब्रज और खड़ी बोली को लेकर था। रीतिकालीन साहित्य से यह जाहिर होता है कि मनोरंजन पूरक मानसिकता चली आ रही थी कि किस तरह उस समय के रचनाकार राजाओं के आधीन रह कर उन्हें शृंगार परक कविताएँ ही सुनाया करते थे

जिसके बदले उन्हें पुरस्कार स्वरूप पारितोषिक मिलता था, उनको समाज से व्यक्ति से देश से कोई विशेष मतलब नहीं था, इस प्रकार साहित्य जमीनी धरातल से पूरी तरह कटा हुआ था। उस तरह की मानसिकता को बदलने के लिए खड़ी बोली के रूप में उस तरह के उपन्यास लिखे गए जो उनके मानसिकता के अनुरूप थी, क्योंकि अभी भी हम रीतिवादी मानसिकता से मुक्त नहीं हो पाए थे। इसलिए महावीर प्रसाद द्विवेदी सरस्वती पत्रिका के माध्यम से रीति विरोधी अभियान को चलाया।

हिंदी में उपन्यास लेखन की परम्परा लगभग डेढ़ सौ वर्ष पुरानी है। कालक्रम के आधार पर इस लम्बी परम्परा को वर्गीकृत करने का काम साधारणतः प्रेमचंद को केन्द्र में रखकर किया जाता है। प्रेमचंद युग, प्रेमचन्द पूर्व युग एवं प्रेमचन्दोत्तर युग के उपन्यास के नाम से मोटे तौर पर पूरी उपन्यास यात्रा नप तुल जाती है। मानवीय राग, मनोभाव, विचार, अनुभूति, स्वप्न एवं कल्पना की कलात्मक अभिव्यक्ति ही साहित्य है। साहित्य की विविध विधा काव्य उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी आदि सभी अपने-अपने ढंग से जीवन की व्याख्या करते हैं। किन्तु महाकाव्य, नाटक तथा कहानी द्वारा प्रस्तुत जीवन की व्याख्या में यथार्थता की वह प्रतीति नहीं होती जो उपन्यास में होती है। इसका कारण है कि उपन्यास में जिस सहज, स्वाभाविक जीवन का चित्रण होता है, उसका अभाव साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं होता है। डॉ. सुरेश सिन्हा के शब्दों में- "उपन्यास यथार्थ की प्रतिछाया है, जिसमें मानव जीवन का चित्रण होता है। अतः उपन्यास का यथार्थ व्यापक रूप से सामाजिक होता है। वह एक विषयीगत दर्पण के समान है। जिसमें बहुमुखी मानवीय समस्याओं का चित्रण होता है।"²

यूरोप में उपन्यास लेखन 18 वीं सदी में शुरू हो गया था। लेकिन, भारत में भारतीय भाषाओं में उपन्यास सीधे-सीधे आधुनिक काल की देन है। जिसकी शुरुआत 19वीं सदी से होती है। आगे-पीछे सभी भारतीय भाषाओं में उपन्यास आधुनिक काल में ही संभव हुआ। रेवती रमण लिखते हैं "आधुनिक भारत में उपन्यास का उदय पाश्चात्य शिक्षा सभ्यता के प्रसार के दौरान हुआ। भारतीय उपन्यास शुरू में उपदेशाख्यान की शैली में लिए गए।"³ 1857 में पहले स्वतंत्रता संग्राम का आरंभ माना जाता है—यानी बंगाल के आधुनिक काल के काफी बाद। अंग्रेजों ने आने के साथ ही कई काम किए। समाज की आर्थिक संरचना थोड़ी बदली। जमींदार, महाजन, किसान, मजदूर जैसे वर्गीय पहचान बने। नए वर्ग संबंध बने। उपनिवेशवाद ने नया ढाँचा बनाया। प्रेस की स्थापना के साथ छपाई कला विकसित हुई। अखबार निकलने लगे। भारतेन्दु युग में कई पत्रिकाएँ निकली। नई तरह की शिक्षा पद्धति का आरम्भ हुआ जिसे अंग्रेजी शिक्षा के नाम से जाना गया। मध्यवर्ग प्रमुख रूप से सामने आया। स्त्री शिक्षा के पक्ष में स्थितियाँ बनी और उसका विस्तार हुआ। स्त्रियों से संबंधित पत्रिकाएँ भी निकली।

कहा जा सकता है कि भारतीय रंगमंच पर उपन्यास का उदय अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही संभव हो पाया। हिंदी उपन्यास साहित्य का सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन-काल में हुआ। भारतेन्दु ने उपन्यास के महत्व को समझ कर हिंदी में पहली बार उसकी ओर संकेत किया। हरिश्चन्द्र मैगजीन के मुखपृष्ठ के विषय पर जो विवरण मिलता है उसमें उपन्यास को भी स्थान मिला।

भारतेन्दु को हम हिंदी उपन्यास का प्रवर्तक

या जन्मदाता भले ही ना स्वीकार करें परंतु, इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने एक विशिष्ट दिशा का निर्देश करके अपने सम-सामयिकों को उधर बढ़ने के लिए प्रेरित किया। भारतेन्दु की साधना फलवती हुई और उनके मंडल के अनेक साहित्यकार तथा अन्य अनेक स्वतंत्र सम-सामयिक उपन्यास रचना में प्रवृत्त हुए। हिंदी उपन्यास का सूत्रपात हुआ और उनकी अनेक घटनाएँ प्रवाहित हो उठी। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्दों में "भारतेन्दु के उदय के साथ ही हिंदी उपन्यास क्षेत्र भी प्रकाशित होने लगा। हिंदी में प्रथम उपन्यास पूर्ण प्रकाश और चन्द्रमा भारतेन्दु की देन है। सामाजिक कुरीतियों की ओर स्पष्ट संकेत व्यंग्यपूर्ण शैली में करके गम्भीर विषयों का प्रतिपादन उपन्यास द्वारा इसके पश्चात होने लगा। इस उपन्यास में पहली बार प्रगतिशील विचारों को प्रश्रय मिला और प्रतिक्रियावादी तत्वों का ह्रास दिखाया गया। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि हिंदी उपन्यास का प्रारम्भ पुरातन और नवीन का संघि स्थल है। जहाँ से प्रगति की ओर अग्रसर होने के कारण उपन्यास तीव्रता से विकसित हो चला।"⁴

भारतेन्दु ने उपन्यास के क्षेत्र में स्वयं मौलिक उपन्यास लिखकर अपने समकालीन अन्य उपन्यासकारों को प्रोत्साहित किया तथा उपन्यास विकास के अनुकूल वातावरण तैयार किया। उन्होंने किशोरीलाल गोस्वामी, देवीप्रसाद शर्मा, राधाचरण गोस्वामी, कार्तिक प्रसाद खत्री, गोपालराम गहमरी, गोकुलनाथ और राधाकृष्ण दास आदि को उत्साहित करके जो पथप्रदर्शन किया उससे हिंदी उपन्यास-भण्डार वैविध्य की ओर तीव्रता से अग्रसर होने लगा।

उपन्यास मात्र कथात्मक गद्य नहीं, यह मानव जीवन का गद्य है। उपन्यास ऐसी कला है

जो सम्पूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है। हालाँकि, उपन्यास पद्य में भी लिखा गया है लेकिन, यह मात्र जनवाद है। उपन्यास को गद्य में ही लिखा जा सकता है और लोकजीवन उसका विशिष्ट तत्व है। वह लोकजीवन के गहरे अनुभव की अपेक्षा करता है। बावजूद इसके हिंदी उपन्यास में प्रमुख सामाजिक मुद्दों पर विचार प्रकट किया गया है। 'भाग्यवती' और 'परीक्षा गुरु' इस दृष्टि से प्रमुख उपन्यास हैं। इसके अतिरिक्त अनेक उपन्यासों में सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विषयों को भी उठाया गया है। जिसमें नवजागरण की अपेक्षा चारित्रिक सुधारमूलक पुनरुत्थानवादी धारणाएँ अधिक प्रकट हुई हैं। और जासूसी उपन्यास भी लिखे गए हैं। देवकीनन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। उपन्यास आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ विधा माना गया है। जिसने सर्वाधिक पाठक वर्ग तैयार किया। हिंदी उपन्यास का भारतीय नवजागरण से गहरा रिश्ता है। बंगाल और महाराष्ट्र की तुलना में हिंदी भाषी क्षेत्र में नवजागरण की प्रक्रिया विलम्ब से प्रारंभ हुई। अतः हिंदी में उपन्यास विधा का आरंभ भी बंगला और मराठी की अपेक्षा विलम्ब से ही प्रारंभ हुआ।

उपर्युक्त तथ्यों से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में पुनरुत्थान की प्रवृत्ति को ही प्रमुखता मिली है। हिंदी के आरंभिक उपन्यासों के उदय में नवजागरण की एक अहम भूमिका रही है। जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता है। जिसने हिंदी साहित्य को नई दिशा प्रदान की तथा हिंदी उपन्यास के नींव को तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। हिंदी उपन्यास का एक विशाल मंच तैयार हुआ। जिसके निर्देशक उस दौर के महान उपन्यासकार ही थे और पाठक उसके नायक जिन्होंने हिंदी

उपन्यास को दुनिया के रंगमंच पर प्रस्तुत करने में सहायनीय भूमिका अदा की।

एद्यपि, हिंदी उपन्यास की लोकप्रियता देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास से ही बढ़नी प्रारम्भ हुई थी। उसकी दृढ़ पृष्ठभूमि भारतेन्दु युग (सन 1850-1900 ई.) के प्रथम चरण से ही तैयार होने लग गई थी। इस पृष्ठभूमि को तैयार करने में भारतेन्दु युग के हिंदी साहित्य का ही योग नहीं था, बल्कि उस युग की अनिश्चित राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थितियों तथा उसके उत्तरार्द्ध में चले समाज सुधार के विविध आंदोलनों का भी उसमें विशेष हाथ रहा। इसलिए पहले उस युग की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों पर भी विचार किया गया। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति उपन्यास भी अपने काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है और उन्हें प्रभावित करता है। इसलिए कथा-लेखन के प्रेरक तत्व के संदर्भ में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि आलोच्य काल की परिस्थिति का सिंहावलोकन हो जो उस समय के कथा-लेखन के प्रेरक तत्व बने तथा उस स्थिति को प्रकाश में लाता है। जिसके कारण उस समय के उपन्यासकार तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी, ऐतिहासिक, रोमांटिक तथा राजनैतिक उपन्यास लिखने के लिए प्रेरित हुए एवं इसके पीछे उनका उद्देश्य क्या था? इस प्रकार विभिन्न तथ्यों एवं आधारों पर मैंने विचार किया है। जिसके आधार पर उस काल के कई उपन्यासकार विभिन्न उपन्यासों की रचना करने में सफल हुए।

इस युग के उपन्यासकारों का प्रमुख दृष्टिकोण हिंदी उपन्यासों के लिए उपयुक्त और लोकप्रिय वातावरण तैयार करना था, जिसे हिंदी उपन्यास अधिक-से-अधिक पाठकों तक पहुँच

सके। इसके लिए उन्होंने उपन्यासों में कलात्मक और रोमांचकारी प्रसंगों को अधिक-से-अधिक स्थान दिया। ऐसी घटनाओं और प्रसंगों को स्थान दिया गया जिसे पढ़ते ही पाठक उछल पड़ते थे और इस तरह की दूसरी कृतियों को पढ़ने के लिए व्यग्र रहते थे। कहा जाता है कि बाबू देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकांता संतति' को पढ़ने के लिए पाठक जो हिंदी नहीं जानते थे, हिंदी सीखने की कोशिश करने लगे और असंख्य मात्रा में पाठकों ने हिंदी सीखी थी। इसने एक बहुत बड़ा हिंदी पाठक वर्ग तैयार कर दिया, जिसको हिंदी भाषा के विकास संदर्भ में कभी भुलाया नहीं जा सकता। इस प्रकार इस युग के उपन्यासकारों ने हिंदी उपन्यासों के उज्ज्वल भविष्य की मजबूत आधारशिला तथा एक विशाल पाठक मंच तैयार किया।

हिंदी उपन्यास प्रारम्भ से ही सुधारवादी दृष्टिकोण लेकर आया था। आगे चलकर हिंदी के अनेक आरंभिक उपन्यासकारों ने समाज या धर्म को सुधारने की चेष्टा में ही एक से बढ़कर एक वैविध्यपूर्ण उपन्यासों की रचना की। वास्तव में उस समय नाटकों के अतिरिक्त केवल उपन्यास लेखन ही ऐसा साधन था जिसके द्वारा समाज के दोषों को दूर करने का प्रयास किया गया है। डॉ. बदरी दास के शब्दों में "हिंदी उपन्यास 19वीं सदी की संतान है। साहित्य के इस नए युग का जन्म नए भारत के जन्म के साथ हुआ और नए भारत की भाँति ही यह अंग्रेजी सम्पर्क की देन है। अंग्रेजी सम्पर्क से उपन्यास को विधा ही नहीं मिली उससे राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक क्षेत्रों में वे परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं जिनसे उपन्यास का विकास संभव हुआ।"⁵

भारतेन्दु युग अर्थात् हिंदी के आरंभिक

उपन्यासों का युग समाज सुधार और राष्ट्रीय चेतना के उन्नयन और प्रगति का युग था। हिंदी का आरम्भिक उपन्यास समाज सुधार और गद्य निर्माण के उद्देश्यों को लेकर ही सामने आया। 'भाग्यवती', 'परीक्षा गुरु', 'नूतन ब्रह्मचारी', 'सौ अजान एक सुजान', 'धर्म रसिक लाल', 'काजर की कोठरी', 'आदर्श हिन्दू' इत्यादि जैसे कई उपन्यास उस युग के समाज सुधार की भावना लेकर ही लिखे गए थे। उदाहरण के तौर पर जैसे श्रद्धाराम फुल्लौरी ने भाग्यवती की रचना भारतवर्ष की स्त्रियों को गृहस्थ धर्म की शिक्षा देने के लिए की थी। इस प्रकार के उपन्यासों द्वारा समाज की सड़ी-गली रूढ़ियों और परम्पराओं से मुक्ति और छुटकारा पाना था। अतः कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग या हिंदी के आरंभिक उपन्यासकारों का स्वर मूलतः इसी प्रकार का उपदेशप्रधान तथा परिवर्तनमूलक विचारों से प्रेरित था, जो आगे चलकर मुंशी प्रेमचंद के उपन्यासों में हमें स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। लाला श्रीनिवास दास ने मौलिक उपन्यास की परम्परा की शुरुआत परीक्षा गुरु नामक उपन्यास लिखकर की। किशोरी लाल गोस्वामी जी ने सामाजिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, ऐय्यारी एवं जासूसी सभी प्रकार के उपन्यासों की रचना की। इनमें त्रिवेणी (1890), आदर्श रमणी (1890), लवंगलता (1890), तारा (1902) इत्यादि हैं। जासूसी उपन्यासों की धारा में मूर्धन्य विभूति श्री गोपालराम गहमरी जी हैं। इन्होंने उपन्यासों की भी रचना की जैसे चतुरचंचला (1893), नये बाबू (1894), बड़ा भाई (1898), सास-पतोह (1898), गुप्तचर (1898) इत्यादि। इसके अतिरिक्त शिक्षाप्रधान और उपदेशात्मक प्रकार के उपन्यास लिखने वालों में बालकृष्ण भट्ट का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके दो प्रसिद्ध उपन्यास हैं-

1. नूतन ब्रह्मचारी और 2. सौ अजान एक सुजान। मेहता लज्जाराम शर्मा इस युग के सामाजिक उपन्यास लिखने वाले लेखकों में सर्वप्रमुख हैं। इन्होंने धूर्त रसिक लाल (1899), कपटी मित्र (1900), हिन्दू गृहस्थ (1903), आदर्श दम्पति (1904) इत्यादि उपन्यास लिखे।

प्रेमचंद पूर्ववर्ती युग के सामाजिक उपन्यास लेखकों में मेहता लज्जाराम शर्मा का महत्वपूर्ण स्थान है। मेहता जी के अधिकांश उपन्यास मनोरंजन के साथ ही शिक्षाप्रद भी हैं। हिंदी उपन्यास के इतिहास में देवकीनन्दन खत्री का एक महत्वपूर्ण स्थान है। चंद्रकांता (1887-1891) उपन्यास के लिए इन्हें विशेष रूप से जाना जाता है। इस युग के अंतिम उपन्यासकार बाबू ब्रजनन्दन सहाय हैं, जिन्होंने भावुक एवं कवित्वपूर्ण उपन्यास लिखने का सूत्रपात हिंदी साहित्य में किया। उपन्यासों का नवीनता की ओर प्रयाण भी ब्रजनन्दन सहाय के उपन्यासों से प्रारंभ होता है। वस्तुतः ये सभी उपन्यासकार ही एक अर्थ में हिंदी उपन्यास के ज्योति-स्तम्भ हैं। जो आने वाले युगों-युगों तक हिंदी लेखकों एवं पाठकों के प्रेरणा स्रोत बने रहेंगे।

आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में विकास तथा उन्नतशीलता की दृष्टि से तो उपन्यास का विशेष महत्व है ही। आधुनिक सभ्यता और संस्कृति की यथार्थ चेतना के वाहक और प्रसारक के रूप में भी उपन्यास का स्थान विशिष्ट है। आधुनिक उपन्यास का अध्ययन करने पर इस तथ्य की भी

अवगति होती है कि उपन्यास का युग जीवन की संस्कृति के विशिष्ट संदर्भ में भी अत्यधिक महत्व है। अतः कहा जा सकता है कि उपन्यास का स्वरूप इतना शक्तिशाली इसलिए है कि उसमें साहित्य की सारी विधाओं की छवियों को सन्निहित कर लेने की शक्ति है। उपन्यास निश्चय ही आधुनिक काल की एक बहुत ही शक्तिशाली और जनप्रिय विधा है।

संदर्भ :

1. अग्निहोत्री, डॉ. श्रीनारायण, हिंदी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन, प्रकाशक, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, प्रथम संस्करण-1961, पृ. 31
2. सिन्हा, डॉ. सुरेश, हिंदी उपन्यास: उद्भव और विकास, जगदीश चन्द्रगुप्त, अशोक प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली-1, प्रथम संस्करण- 1965, पृष्ठ भूमिक-1
3. रमण, रेवती, समकालीन, भारतीय साहित्य अकादेमी की त्रैमासिक पत्रिका, अंक नवम्बर-दिसम्बर- 2013, संपादक विश्वनाथ तिवारी, अंक-170, पृ. 177
4. वार्ष्णेय, डॉ.लक्ष्मी सागर, आधुनिक हिंदी साहित्य, हिंदी परिषद, इलाहाबाद, संस्करण-1954, पृ. 94-95
5. डॉ. बदरी दास, हिंदी उपन्यास: पृष्ठभूमि परम्परा, ग्रंथम राजबाग प्रकाशन, कानपुर-12, प्रकाशन अक्तूबर-1996, पृ. 98

होसपेट, हम्पी और तुंगभद्रा

विनोद साव

बैंगलोर की शीतलता यहाँ गायब थी। मौसम विभाग ने भी घोषणा कर दी थी कि इस बार की गरमी पूरे देश में ज्यादा पड़ेगी। फिर यह तो पूर्वी कर्नाटक का सैकड़ों किलोमीटर का पथरीला इलाका था इसलिए यह और भी धधक उठा था। अप्रैल के इस महीने में भी जहाँ बैंगलोर फकत तीस डिग्री सेल्सियस पर आनंदित कर रहा था। वहाँ बाली-सुग्रीव की यह किष्किन्धा नगरी और पम्पा-सरोवर उनके पराक्रम की तरह भभक उठा था। सूर्य का वही प्रचंड ताप था जो ताप बाली-सुग्रीव की शक्ति और बल में रहा होगा। यह बैंगलोर से दस डिग्री आगे चल रहा था। उस पर इसके घूमने का समय सुबह नौ से शाम छः बजे तक था। यानी आठ-नौ घंटे की जोर-आजमाइश भरी-दोपहरी में इन पत्थर के पहाड़ों के बीच से होती गली में घुसकर यहाँ दहकते किलों, महलों और गुफाओं-सुरंगों को देखने का था।

गाइड राजस्थान का राठौर था पर यहाँ कन्नड़ बोल रहा था और मेरे लिए अंग्रेजी व पत्नी चन्द्रा के लिए हिंदी। वह बताता है 'मेरे पिता राजस्थान के उदयपुर जिले से आकर कर्नाटक के विजयपुर जिले में बस गए थे और मैं यहीं पल-बढ़कर अब कन्नड़ पर्यटन विकास निगम को अपनी सेवाएँ दे रहा हूँ।' ऐसे ही एक और महाशय दुर्ग-यशवंतपुर ट्रेन में मिल गए थे जो सहयात्रियों के साथ कन्नड़ बोलते थे और हमारे साथ हिंदी। मैंने कहाँ था 'आप हिंदी अच्छी बोल लेते हैं!'

'मैं बिहारी हूँ। रोजगार-धंधे के कारण बैंगलोर बस गया हूँ।' उनका जवाब था।

कल शाम ही हम जिस रिसोर्ट में आ रुके थे उसका नाम था विजयनगर मयूरा। इस नाम से रिसोर्ट कन्नड़ पर्यटन विकास निगम के कई पर्यटन स्थलों में हैं। यहाँ नगद व्यवहार शून्य है सारे भुगतान ऑनलाइन हैं। इसका रेस्तरां तो ग्लास-हाउस है यानी कांच के घर के समान खूबसूरत। इसके मीनू में बियर भी लिखा है। ऐसा हमने बैंकाक के मामूली रेस्तरांओं में देखा था पर भारत के किसी सरकारी रिसोर्ट में नहीं। भारत में अब तक अल्कोहलिक-ड्रिंक्स केवल स्टार होटलों में उपलब्ध थे। पर स्वदेशी आन्दोलन के दौर में इसे रिसोर्ट में भी शामिल कर लिया है।

विजयनगर, होसपेटे, हम्पी, किष्किन्धा कहलाने वाले ये स्थान आसपास बसे हैं। होसपेटे को बोलचाल में होसपेट कह देते हैं। विजयनगर पंद्रहवीं शती में राजा कृष्णदेव राय व उनके पूर्वजों-वंशजों द्वारा बसाया गया एक समृद्ध राज्य था। यह भारत में मुगल सल्तनत के आने का समय था। घुमक्कड़ और

भवन-निर्माण करवाने में दक्ष मुगल साम्राज्य के संस्थापक और प्रथम शासक जहीरुद्दीन मुहम्मद उर्फ़ बाबर ने जब इसके नगरन्यास को देखा तो वह अचंभित रह गया। उसने 'बाबरनामा' में लिखा था कि 'काफ़िरों के राज्य विस्तार और सेना की ताकत की दृष्टि से विजयनगर साम्राज्य ही सबसे विशाल है। दक्षिण भारत में कृष्णदेव राय और उत्तर भारत में राणा सांगा ही दो बड़े हिन्दू राजा थे।' कुछ ऐसा ही भव्य और खूबसूरत साम्राज्य बाबर अपने समरकंद में छोड़कर आये था। यह हमारे लिए भी एक संयोग रहा कि इस कोरोना काल से पहले हम लोगों ने उज्बेकिस्तान का समरकंद देखा था और आज फकत दो साल बाद हमें विजयनगर देखने का सौभाग्य मिल रहा है- एक तुर्क मुसलमानों का समृद्ध केंद्र था और दूसरा आन्ध्र-वंशीय हिन्दू राजाओं का यह फैला पसरा इतिहास और पुरातत्व से भरा नगर।

पर हम जिस विजयनगर में उतरे हैं वह कोई नगर नहीं केवल एक जिले का नाम है जिसका मुख्यालय होसपेट है। असली विजयनगर यहाँ से बीस किलोमीटर दूर है जो अब हम्पी कहलाता है। इस विजयनगर का रेलवे स्टेशन होसपेट में है और निकटतम एअरपोर्ट हुबली व बेल्लारी है। बेल्लारी का छोटा एयरपोर्ट राजा कृष्णदेव राय के नाम पर है। बैंगलोर जहाँ से हम आये थे वह पौने चार सौ किलोमीटर दूर है।

एद्यपि इस नगरी में अनेक भगवानों की मूर्तियाँ हैं पर यह पम्पाक्षेत्र इसलिए कहलाता है कि यह स्थान पारम्परिक रूप से शिव और उनकी पत्नी गिरिजा से जुड़ा हुआ है। आसपास की छोटी-छोटी पहाड़ियाँ इस क्षेत्र को घेरे हुए हैं जहाँ प्रागतिहासिकता और आद्य-इतिहासकालीन मनुष्यों के चिर असंख्य प्रस्तर शिल्पकृतियों, मिट्टी के बर्तनों और शिला-चित्रकारियों के रूप में आज भी मौजूद हैं। संस्कृत शब्द पम्पा शिव का एक

अन्य नाम है। इससे कन्नड़ का शब्द हम्पा बना और इस नाम से कदाचित् पार्वती को भी संबोधित किया जाने लगा- 'हम्पा', 'हम्पे' और कालांतर में 'हम्पी'। शिव-पार्वती अर्थात् पम्पा-हम्पी। कितने सुन्दर नाम हैं घरों में रखे जाने वाले 'निकनेम' की तरह। हमारे बेटे का प्यारा नाम पम्पी है। पर यह फ्रेंच शब्द है जिसका अर्थ हमें भी नहीं मालूम।

कल शाम हमें गाइड यह कहकर ले चला था कि 'चलिए मैं आप लोगों को एक गार्डन में छोड़ आता हूँ। जहाँ आप लोगों के तीन घंटे आसानी से निकल जावेंगे।' यह तुंगभद्रा बाँध का विशाल हराभरा क्षेत्र था। आन्ध्र और कर्नाटक के लिए यहाँ से विद्युत उत्पादन हो जाने के कारण इसे दोनों राज्यों की समृद्धि का श्रोत माना गया है। इस बाँध का निर्माण प्रथम पंचवर्षीय योजना में हुआ था। सामने उस इंजिनियर की मूर्ति लगी थी जिसके निर्देशन में यह बाँध बना था। यह क्षेत्र मल्लमपुरम कहलाता है।

हम मिनी बस में बैठकर बाँध-क्षेत्र को नीचे-ऊपर तक घूम आये थे। शाम का सूर्यास्त यहाँ बड़ा मोहक था। नीचे जल में उसकी एक लम्बी नारंगी अनुकृति दिख रही थी। अंत में म्यूजिकल फाउंटैन का नजारा था जिसमें कन्नड़ फ़िल्मी गीतों पर फव्वारे नाच रहे थे जैसे कभी दुबई में अरबी गीतों पर फव्वारों को नाचते देखा था।

हम विजयनगर से होसपेट शहर होकर किष्किन्धा में आ खड़े हुए थे। लोगों ने बताया कि होसपेट का पुराना नाम ही किष्किन्धा है। सुग्रीव की राजधानी यही थी। पम्पा-सरोवर और ऋष्यमूक पर्वत भी यहीं बताए जाते हैं। स्थानीय जन कहते हैं 'इन पहाड़ियों में अंगद, बाली तथा तारा नाम की पहाड़ियाँ हैं। यहाँ राम सीता की मूर्ति या चित्र कहीं दिख जाते हैं तो उनके साथ खड़े वानर राज को हनुमान नहीं सुग्रीव माना

जाता है।' पुराकथाओं की मान्यताएँ पुरातात्विक प्रमाणों से कहीं अधिक जनश्रुतियों पर आधारित होती हैं। भग्न-इतिहास के पुरातत्व न भी मिलें तो भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होने वाली अनेक दंतकथाएँ अपना काम कर जाती हैं।

हम बैटरी कार पर सवार होकर किष्किन्धा के मार्ग पर आ गए थे। यहाँ सभी बैटरी कार लड़कियाँ चलाती हैं। किष्किन्धा के मार्ग पर आते ही ताड़ के वृक्षों की एक वैसी ही कतार दिखी जैसी रामकथा में बाली का वध करने से पहले राम द्वारा ताड़ के सात वृक्षों को एक ही बाण से काट दिए जाने की अनिवार्यता बताई जाती थी। हम दोनों ओर ऋषीमूक पर्वत को देख रहे थे जो हरियाली-विहीन पत्थरों के पहाड़ थे। इनके पत्थर बड़े सुन्दर चिकने सफ़ेद रंग के दिख रहे थे बड़े-छोटे हर आकार के। ऐसा लगता था कि इनकी कंदराओं से बाली-सुग्रीव निकलकर एक दूसरे को ललकारते हुए शिला-प्रहार करने लगेंगे। फिल्मों टीवी धारावाहिकों में जब बाली-सुग्रीव युद्ध के दृश्य दिखलाए जाते हैं तब ऐसे ही पहाड़ और उनकी शिलाएँ दिखलाई जाती हैं। फिल्म निर्माताओं को भी कथानुरूप भौगोलिक स्थितियों को पिरोते हुए फिल्मांकन की बारीकी से कितना जूझना पड़ता है। एक अच्छी फिल्म का निर्माण कला की श्रेष्ठतम प्रस्तुति कही जा सकती है। क्योंकि यह एकल कला नहीं यह समूह कला (टीम वर्क) होती है।

लेकिन हम उस ठोस पुरातात्विक प्रमाण को देख रहे थे जो तुंगभद्रा के पार कहलाने वाला विश्व विरासत स्थल हम्पी था। जहाँ अतीत के अनमोल क्षणों में हम मानवीय और प्राकृतिक भौतिक भू-दृश्यों का एक महीन मिश्रण साथ-साथ चलते देख सकते हैं। यह हमारे भारत के समृद्ध इतिहास का साक्षी था और आज इस इतिहास के भग्नावशेष के साक्षी हम हैं। मध्ययुग

के अनेक खंडहर यहाँ हैं। इनसे स्पष्ट आभास मिलता है कि पुराने ज़माने में यहाँ भरी-पूरी नगरी थी।

तेरहवीं सदी के अंत में, इस्लामी आक्रमण ने दक्षिण भारत को बुरी तरह प्रभावित किया और उनकी घुसपैठ को रोकने के लिए दक्षिण की शक्तियों द्वारा किए गए प्रयास अंततः विजय नगर साम्राज्य के उत्थान के सुअवसर बने। संगम बंधुओं हरिहर और बुक्का ने अपना खुद का एक राज्य खड़ा किया और शानदार विजयनगर शहर की स्थापना की जिसकी राजधानी हम्पी था। राजा कृष्णदेव रॉय जैसे कुछ और सफल व सक्षम शासकों के सामर्थ्य से यह नगर अपने समय में एक दुर्जेय हिन्दू साम्राज्य के रूप में विकसित हो गया था। अपने उत्कर्ष काल में इसकी राजनीतिक सीमाएँ उत्तर में कृष्णा नदी और दक्षिण में पूर्वी व पश्चिमी घाटों के साथ-साथ हिन्द महासागर तक फैली थीं। इनके राजाओं ने लगभग तीन सौ बरस तक शासन किया। जब तालीकोट का युद्ध हुआ तब दक्कन की सल्तनतों का आक्रमण इस साम्राज्य के तत्कालीन कठपुतली शासकों के कारण विपत्तियों का पहाड़ बनकर टूटा और नाटकीय ढंग से इसका पतन हुआ। परिणाम विजयनगर की हार और दक्षिण भारत के अंतिम हिन्दू साम्राज्य का पतन रहा। उसकी कलात्मक संरचनाओं का ध्वंस हुआ।

खंडहरों को पार करके जाने पर विजय-विट्ठल मंदिर है। यह अपने आरंभिक विजय के प्रतीक के रूप में बना है। यह हम्पी के सबसे महत्वपूर्ण मंदिरों में से एक है। पर ये मंदिर केवल उपासना स्थल नहीं हैं। इनके विशाल परिसर किसी उपनगर की तरह जान पड़ते हैं। यहाँ कल्याण मंडप, उत्सव मंडप है। दीपस्तंभ हैं। मुख्य मंदिर विट्ठल अर्थात् विष्णु को समर्पित है। इनकी दीवारों पर घोड़ों, सिपाहियों और हंसों की मूर्तियों वाली शृंखलाएँ हैं। इन मंडपों के

आधार स्तम्भ सैकड़ों की संख्या में बने खंभे हैं। प्रत्येक खम्भा मूर्तिकला की एक भारी-भरकम, मिश्रित इकाई है। खम्भों का प्रकार, मंडप में उनकी स्थिति के अनुसार बदलता है। कुछ अंदरूनी खम्भों पर स्त्रियों, नर्तक-नर्तकियों और ढोल-वादकों का मूर्तियों के रूप में चित्रण है। यह संगीत के खंभों के प्रतिष्ठित प्रतीकों में से एक है। यहाँ छप्पन खम्भे म्यूजिकल पिलर्स हैं जिनसे संगीत झरता था। मंडप की छतें खण्यों में विभाजित हैं और कमल के पैटर्नों के साथ सुन्दर ढंग से उकेरी गई हैं। जाहिर है ये मंदिर कोई कर्मकांडी पूजा स्थल नहीं थे। इनमें कला-संस्कृतियों को जन-जन में पिरोने और उनकी सामाजिकता को विस्तारित करने की घनघोर चेष्टा है। कला का उत्कर्ष, न केवल उसकी उपादेयता को बताता है बल्कि उसके मानवीयकरण के भिन्न रूपों को कदम-कदम पर प्रतिबिंबित करता चलता है। कला किसी भी विचारधारा से उपजी हो उसका प्रयोजन केवल और केवल मानवीय और अहिंसक होता है अमानवीय और हिंसक कभी नहीं।

किसी भी राज्य का साहित्य उसके युग के समभाव के पृष्ठ खोलता है। यह कर्नाटक साम्राज्य जो आंध्र में था, में रचित यह कन्नड़, तेलुगु संस्कृत और तमिल साहित्य है। इस काल में राजाओं ने विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों को आश्रय दिया जिन्होंने जैन, वीर शैव और वैष्णव सम्प्रदाय की परम्पराओं के ग्रन्थों की रचना की। इनमें ऐसे सैकड़ों ग्रन्थों की रचना हुई जो भारतीय संस्कृति, जीवनचरित, प्रबन्ध, संगीत, व्याकरण, कविता, आर्युर्वेद आदि से संबंधित थे। राजा कृष्णदेव राय स्वयं विद्वान, संगीतज्ञ एवं कवि था। उनके दरबार में तेनालीराम नाम का एक विदूषक था, उसने भी ग्रंथ की रचना की थी। मैं गाइड से पूछता हूँ कि 'तेनालीराम का

यहाँ कोई चिट्ठन है।' वह कहता है कि 'ऐसा मुझे कुछ याद नहीं आ रहा है सर।' जैसे अकबर की फतेहपुर सीकरी में उनके विदूषक मित्र बीरबल के कोई चिट्ठन नहीं मिलते। हास्य-व्यंग्यकारों से हर युग की सरकारें अपना मनोरंजन तो कर लेती हैं पर उन्हें ऐसे पद-प्रतिष्ठा नहीं देती कि उनकी कोई स्मृति उनके राजे-महाराजों की तरह रह जाए।

हम्पी का समूचा नगर व भवन न्यास कहीं भी युद्धोन्मुखी नहीं बल्कि भरपूर सौंदर्यबोध और आस्था से अभिप्रेरित प्रेममयी प्रयोजन लगता है। और इसलिए इन भवनों का निर्माण एक ऐसा ऐतिहासिक-सांस्कृतिक आन्दोलन बन गया था जो अरब, इटली, फारस और रूस के इतिहासकारों और यात्रियों को अपनी गाथा कहने के लिए हरदम खींचता रहा। अप्रीका-मोरक्को के यायावर इब्नबतूता भी यहाँ आ पहुँचे थे। इन सबने, इसके अभिलेखों में अत्यंत सजीवता एवं उत्साह के साथ केवल इसकी तारीफ में अपने कशीदे पड़े हैं।

इसका बहुप्रसिद्ध प्रस्तर रथ (स्टोन चेरिएट) थोड़ा खंडित शिल्प में आज भी मौजूद है। गाइड की आवाज आती है कि 'यह स्टोन चेरियट पचास के नोट में अंकित है।' हम सब तुरंत अपने नोट निकालकर देखते हैं। हरे रंग के नोट में इस आकृति के नीचे लिखा है 'हम्पी'। फिर हम सब रथ के सामने अपनी तस्वीर उतरवाते हैं।

विजय-विट्ठल के पीछे तुंगभद्रा तेज प्रवाह में बह रही है। उसके पार शिलाओं के पहाड़ हैं। कहते हैं कि यहाँ कन्नड़ संगीतकार, भजन गायक पुरंदर दास के आराधना के स्वर गूँजा करते थे। इस सुरम्य स्थान को पम्पा-सरोवर कहते थे। यहाँ जो मंटप बना है उसे पुरंदर मंटप कहते हैं। एक सफेद शिला पर पुरंदर की आकृति उकेरी गई है। कन्नड़ में मंडप को 'मंटप' कहते हैं।

इन विशाल मंडपों की दीवारों के बाहर

कुछ दूरी पर विशाल बाजार और कुंड मिलते हैं। इन बाजारों की लम्बाई लगभग एक किलोमीटर और इनकी चौड़ाई कहीं-कहीं तीन चार सौ मीटर के आसपास होती है। मार्गों की चौड़ाई यहाँ खूब है। आज भी इस पूरे क्षेत्र में बाजार की दुकानों की छतें भले उड़ गई हों पर दोनों ओर उनके पिलर लम्बी पंक्तियों में दूर तक खड़े दिख जाते हैं। इसका सबसे चौड़ा बाजार है अच्युतराय पेठे। इसके पथ को गणिका पथ (कोर्टसीन स्ट्रीट) कहा है। यह साप्ताहिक बाजार था जो हर मंगलवार को भरता था। बाजारों दुकानों का इतनी बड़ी संख्या में यहाँ होना यह दर्शाता है कि यह नगरी वणिकों-ग्राहकों से कितनी भरी पूरी रही होगी और इनके बीच लेन-देन का कारोबार कितना बढ़ा रहा होगा। राज्य की अर्थव्यवस्था काफी हद तक कृषि पर निर्भर थी। इनके विशाल जल-संग्रहण केंद्र थे। अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में मकई, ज्वार, कपास और दलहनी फलियाँ उगती थीं, जबकि गन्ने, चावल और गेहूँ बारिश वाले क्षेत्रों में बोई जाती थीं। राजाओं ने इनके विपणन केन्द्रों और बाजार व्यवस्था को चाक-चौबंद रखा था। उस समय के हम्पी बाजार पर सोलहवीं सदी के आरंभ में पुर्तगाल से आए यात्री योमिंगो पाएस लिखते हैं कि 'इस शहर के विशाल व्यापार और ढेरों बहुमूल्य रत्नों के कारण यहाँ आपको हर राष्ट्र व जाति के लोग मिलेंगे। यहाँ की सड़कें और बाजार अनगिनत लदे हुए बैलों से भरे हुए हैं। और कई सड़कों पर वे इतनी बड़ी संख्या में हैं कि या तो आपको उनके गुजरने की प्रतीक्षा करनी होगी, या फिर कोई दूसरा मार्ग लेना होगा।' उस गुलजार बाजार का एक रंगीन चित्र भी जारी किया गया है।

अप्रैल के इस पहले सप्ताह में तापमान चालीस डिग्री सेल्सियस पहुँच गया था। जाहिर हुआ कि इस मंदिर, महल और किलों वाले पथरीले

स्थान के भ्रमण के लिए, ठण्ड का मौसम अधिक अनुकूल है। जैसे-जैसे धूप चढ़ती जा रही थी। हम हर स्थान पर नारियल पानी, गन्ना रस और नीबू-सोया गटककर अपनी आत्मा को ऊँच कर रहे थे। पत्नी और हमारे समूह के कुछ और लोग विशेषकर बच्चे गर्मी और थकान से लस्त-पस्त हो रहे थे। वे कुछ स्थानों को देखने न जाकर बस में ही बैठे रह जाते थे। गाइड कहता है कि 'आइए। आप लोगों को रानी तिस्रमिला का स्विमिंग पूल दिखलाऊँ तो आपके दिल को कुछ ठंडक पहुँचे। कृष्णदेव राय की तीन पत्नियाँ थीं जिनमें तिस्रमिला का नाम अधिक लिया जाता है। कला रोमान तब ज्यादा जगाती है जब उस पर मुस्लिम प्रभाव हो चाहे वह भवन निर्माण कला क्यों न हो। इस रोमान का सबसे जीता-जागता मिसाल है 'ताजमहल'। हमारी फिल्मों की नायिकाओं में ज्यादातर हुस्न और रोमान से लबरेज नायिकाएँ मुसलमान रही हैं। यह रोमान यहाँ भी था क्योंकि यह रानी स्नानघर भवन इंडो-इस्लामिक शैली से निर्मित हुआ है। बीच में वर्गाकार स्नान कुंड के चारों ओर अलंकृत छज्जों वाले बरामदे आज भी चमकदार हैं। इसकी तीन बड़ी मेहराबदार खुली खिड़कियाँ हैं। जिससे यह हवादार और रोशनयुक्त है।

ऐसी ही इंडो-इस्लामिक शैली की विशाल इमारत 'जनाना अहाता' है। ऐसा लगता है कि महाराज ने महारानी के खातिर अपनी आशिकी का इजहार मुस्लिम स्थापत्य शैली की इमारत बनवाकर किया है। यहाँ शाही स्त्रियों के आवास थे। इसमें एक सीढ़ीदार मंच (रानी महल का तलघर), 'राजकोष' के रूप में पहचानी गई एक संरचना और जलमहल है तथा तीन पहरा देने की छज्जेदार मीनारें हैं। यहाँ एक और माना हुआ आकर्षण रानियों के लिए एक मनोरंजन हेतु हवेली, सुन्दर कमल महल मंडप है। यह सुसज्जित

और प्राकृतिक रूप से वातानुकूलित है।

जनाना अहाता के विशाल घेरे की एक दिशा में हाथियों का अस्तबल है। इनमें ग्यारह हाथियों के लिए अलग-अलग बने विशाल कक्ष हैं। वे भी खूब मेहराबदार हैं। इनकी छतें गुंबजदार हैं। सम्मिलित रूप से व्यवस्थित गुंबज इस स्मारक को एक शानदार उठान प्रदान करते हैं। ऐसे ही मुस्लिम स्थापत्य के मेहराबदार झरोखों-सीढ़ियों से युक्त एक कुआं मल्पनगुड़ी गाँव के पास बना है। पानी के लिए इसकी घुमावदार सीढ़ियाँ दो मंजिल नीचे की ओर जाती हैं।

अस्तबल के पास ही पार्श्वनाथ जिनालय है जो आरंभिक विजयनगर स्थापत्य शैली का एक उदाहरण है। यह जिनालय जैन पंथ के 23 वें तीर्थंकर 'पार्श्वनाथ' को समर्पित है। इनका एक विशाल मंदिर हमारे शहर दुर्ग के पास नगपुरा में निर्मित है। पार्श्वनाथ जैन मंदिर और शांतिनाथ बसदी (बस्ती) के निकट एक और वैष्णव मंदिर है जो काफी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है। हम्पी के अन्यान्य क्षेत्रों में उत्खनन से मौर्यकालीन सिक्के, प्रस्तर व बौद्ध शिलालेख मिले हैं। राजा कृष्णदेव पर चन्द्रगुप्त और अशोक की राज्य व्यवस्था और उसके प्रबंधन का प्रभाव स्पष्ट दिखता है।

जनाना अहाता के भीतर इन विविध धर्मों संरचनाओं को देखकर हम बाहर निकलते हैं तब नजर जाती है पुरातत्व विभाग द्वारा लगाई गई भवन परिचय पट्टिका जिस पर लिखा है कि 'इन भवनों का निर्माण, राजा कृष्णदेव की व्यापक लोकतान्त्रिक चेतना का परिचायक है।' यह पुरातत्व और पर्यटन विभाग ही है जिनके द्वारा संरक्षित संरचनाएँ हमारी समृद्धि और कारीगरी की निपुणता की गाथा कहती है। इन्हें क्रमवार सहेजकर रखना और आने वाली पीढ़ियों के लिए इतिहास के अनूठे क्षण को प्रतिबिंबित कर देना है। यह हमारे इतिहास के साक्ष्य को हमारे वर्तमान में हस्तांतरित

कर देता है। ऐसे प्रयासों के लिए कर्नाटक सरकार और स्थानीय लोगों की भागीदारी को साधुवाद।

हम दोपहर के भोजन के लिए एक रेस्तरां में उतारे गए थे। बस में लगभग पच्चीस लोगों का समूह था जिनमें ज्यादातर बैंगलोर से पधारे कन्नड़ और कुछ तेलुगु परिवार थे। सभी लोग कन्नड़ और अंग्रेजी बोलते थे। केवल मुझे और पत्नी को छोड़कर। हम सब भोजन के लिए दो दो सौ रुपये काउंटर में देकर पंक्तिबद्ध हो गए थे। भोजन सजे हुए थे हमें निकालकर अपनी प्लेटों में लेना था। यहाँ कर्ड राइस (दही-भात) का चलन अधिक है। कन्नड़ भोजन सादा होता है, परिचित दक्षिण भारतीय भोजनों की तरह ज्यादा चट्खारापन इनमें नहीं होता जैसा दक्षिण के दूसरे राज्यों में उपलब्ध होता है। बैंगलोर में भी एक बाजार के रेस्तरां में सुसज्जित कन्नड़ थाली खाए थे। कन्नड़ जन भी सीधे-सादे और ऊँच चित्त होते हैं। पढ़े-लिखे और शालीन। धूप-गर्मी से पत्नी को थोड़ा चक्कर आ गया तब वे अपने खाने के समान और पेए पदार्थ लेकर सहयोग के लिए सामने आ गए थे। देश के सबसे बड़े कार्टूनिस्ट कन्नड़ महाशय आर.के.लक्ष्मण जिनका प्रसिद्ध स्तम्भ था टाइम्स ऑफ़ इंडिया में 'यू सेड इट'। वे एक बार भिलाई आर्य थे तब उनसे मुलाकात और बात हुई थी। वे भी विनम्र और शालीन लगे थे। ऐसे ही बैंगलोर का एअरपोर्ट है साइलेंट मोड में वहाँ कोई एनाउन्समेंट का शोर नहीं होता।

इस बार पत्नी को पार्किंग स्थल पर बस में ही आराम करने के लिए छोड़कर मैं गाइड और अपने समूह के साथ विरूपाय मंदिर चला आया था। गाइड कहता है कि 'हम्पी के छत्तीस वर्ग किलोमीटर के इलाके में लगभग पंद्रह सौ अवशेष हैं। जिन्हें कुछ दिनों में देख पाना संभव नहीं। आइए, आज आपका यह अंतिम पॉइंट है

विरूपाय या पम्पापति मंदिर।’

हम्पी का यही एक स्थल ऐसा था जहाँ हमें अपने जूते-चप्पल बाहर उतारकर रखने पड़े थे। अब सामने एक ऐसी अट्टालिका खड़ी थी जो पर्वताकार थी। जैसे किसी अजेय योद्धा के सामने किसी पैदल सैनिक की हालत पस्त होती होगी वैसे ही हम घुमंतुओं की यहाँ हो रही थी। इसके पहले प्रवेशद्वार से प्रवेश करते ही विशाल प्रस्तर शिल्पों के बीच धूप की ताप भिलाई की लौह-भट्टी के गर्म आँच के समान लगी थी। इस पर नंगे पाँव चलने की कवायद थी। नीचे चलने के लिए टाट-पट्टियाँ बिछी हुई थी जो कहीं-कहीं टूट-सड़ कर अधूरी हो गई थी। तब तलुओं पर वही चटाक जलन होती थी जिसे हमारी छत्तीसगढ़ी बोली में ‘भोम्भरा जरना’ कहते हैं।

बहुत से अवशेष हेमकूट पहाड़ी पर हैं पर विरूपाक्ष मंदिर इसके उतार पर है। शिव मंदिरों के भिन्न नाम उनके बनवाने वालों से होते हैं। इसके बनवाने वाले राजा का नाम विरूपाक्ष था तो यह विरूपाक्ष मंदिर हुआ। यह हम्पी का सर्वाधिक पूज्य व जीवंत मंदिर है। यहाँ पारंपरिक वाद्ययंत्रों के साथ प्रवेशद्वार खुलते हैं और दैनिक पूजा अनुष्ठान भोर से आरंभ हो जाता है। चूँकि नवरात्रि पक्ष चल रहा था तो देवी स्थापना की शोभायात्रा भी दिखी थी। मंदिर का पूरा परिसर एक लम्बे आयताकार घेरे के अन्दर है जिसे भव्य मीनारदार प्रवेशद्वारों वाले दो विशाल प्रांगणों में बाँटा गया है। परिसर में अनेक देवी-देवताओं के अनुषंगी पवित्र-स्थल हैं जिनमें जाने के लिए घेरे की दीवार के सहारे-सहारे खम्भों वाले छायादार मंडप हैं। यहाँ तक आने का मार्ग भले गरम हो पर इन मंडपों के भीतर शीतल मंद बयार बह रही होती है। संभवतः इन मंदिरों की विशाल भीतरी संरचनाओं

और उनके गर्भगृहों के कारण हवा का कोई परिवर्तित भीतरी दबाव बना हो। इनके मंडपों में बैठकर-लेटकर यात्री सुस्ता रहे होते हैं और इनकी छतों पर पौराणिक मिथकों; कथाओं से जुड़े आकर्षक छत चित्रों को देख रहे होते हैं।

तुंगभद्रा नदी से एक संकरा जलमार्ग मंदिर की छत के सहारे बढ़ता हुआ मंदिर की पाकशाला में उतरता है और अंततः वापस नदी में मिल जाता है। कुछ ऐसा ही जलमार्ग पथरीले पाइपों वाले ‘महानवमी दिब्बा’ में भी दिखा था जहाँ दस दिनों का दशहरा उत्सव संपन्न होता था। लाल मुँह वाले बंदरों की संख्या अयोध्या-वृन्दावन की तरह विरूपाक्ष परिसर में भी बढ़ गई है। मैंने बस में आराम कर रही पत्नी के लिए दक्षिण के छोटे केले और मूंगफली लिए थे उसे वे मेरे हाथ से छीनने लगे थे। उनसे बचाकर मैं बस की ओर भागा।

हम्पी में खंडहरों का रोमांच कुछ ऐसा है कि यहाँ अनेक धार्मिक-अधार्मिक संरचनाओं की बेजोड़ गाथा है। भग्नावशेषों की प्रेम कथा है। अनेक विनाश के बावजूद भी, हम्पी की भग्न-संरचनाएँ उसकी समृद्धि की कहानी कहती हैं। इसका श्रेय तुंगभद्रा को जाता है जो तुंगा और भद्रा नाम की दो नदियों के समागम से बनी है। अन्यथा बिना नदी-पानी के इस दहकते पथरीले पहाड़ों को आकार देने यहाँ कौन आता और क्या करता! तुंगभद्रा ने जना है इस विलक्षण ऐतिहासिक संरचनाओं को, विजयनगर के समृद्ध साम्राज्य को। आखिरकार नदी किनारे ही कोई सभ्यता पनपती है।

पंद्रहवीं सदी में आये फारसी यात्री अब्दुर रज्जाक ने लिखा है ‘विजयनगर शहर कुछ ऐसा है जैसा आपकी आँखों ने पहले कहीं नहीं देखा होगा, आपके कानों ने कभी नहीं सुना होगा कि दुनिया में इसके जैसी कोई और भी जगह है।’

सम्पर्क : मुक्तनगर, दुर्ग (छत्तीसगढ़) 491001 मो. : 90098 84014

ट्रक से लकड़ी गिरने लगी। यशवीर बोले चलो, एक काम तो निपटा। वंशी से कहे कि रामबचन और सुमेर को बुलाओ लकड़ी फाड़ दें। वंशी बुलाने चला जाता है। उनके छोटे भाई कुलवीर बोले 'भइया दोर भी मंगवाना पड़ेगा'। वंशी से पूछ लेते हैं- कितना लगेगा।

इन तैयारियों से बेखबर चेयरमैन साहब मरणासन्न पड़े हुए थे। कभी-कभी हिचकी आ जाती तो मुँह में गंगाजल डाल दिया जाता। सारी तैयारी चेयरमैन साहब के लिए ही हो रही थी।

चेयरमैन साहब यानी माधो चौधरी का अंतिम समय आ गया था। वे मृत्यु शैया पर थे। उम्र भी तो 87 साल हो गई थी।

माधो बाबू को-आपरेटिव बैंक के चेयरमैन रहे। उनको सब चेयरमैन साहब ही कहते थे। इनके दो बेटे हैं। यशवीर, कुलवीर और एक बेटी दुर्गा। यशवीर पुलिस महकमा में डिप्टी एसपी और कुलवीर जिला आबकारी अधिकारी हैं। दोनों भाई में राम- लक्ष्मण जैसा प्यार है। चेयरमैन साहब की पत्नी यशोदा कई अरसे पहले गुजर गई। गाँव में वे अकेले रह गए थे।

वंशी इनके सिरवाह लोचन का बेटा था। सिरवाह हरवाह से ऊपर होता है। वो खेती-बाड़ी की मैनेजरी करता है। लोचन बुढ़ा हो गया तो वंशी ही खेती-बाड़ी का काम देखता है।

कुलवीर और यशवीर आजमगढ़ शहर में कोठी बनवा लिए थे। पिताजी से कहते गाँव में क्यों पढ़ें हैं, शहर में रहिए। पर चेयरमैन साहब नहीं सुनते। उनको गाँव ही अच्छा लगता। गाँव में लोग चेयरमैन साहब को सलाम, प्रणाम, बंदगी, नमस्कार करते। ऐसा सम्मान शहर में कहाँ मिलने वाला था।

बेटों ने कहा पिता जी नहीं मानेंगे, अपने मन के राजा जो हैं। समझाने से कोई फायदा नहीं। एक बेटा पुलिस में दूसरा शराब महकमा में, दोनों विभाग कामधेनु है। पुराने मिट्टी खपरैल के घर को गिराकर आलीशान हवेली बन गई।

एक नौकर पहले से घर संभालने के लिए था। एक और रख लिये। पहले एक गाय थी एक गाय और ले ली। जब एक गाय दूध देना बंद करेगी तो दूसरी देगी।

गाँव में बिजली भगवान भरोसे ही रहती है। यहाँ तो जितनी देर बिजली रानी रहे लोग उसी में खुश रहते हैं। ज्यादा लालच नहीं बढ़ाते।

ये ठहरे साहब-सूबा जब घर आते बिजली नहीं होती तो बहुत परेशानी होती है। सबसे ज्यादा बच्चों परेशान हो जाते हैं। वे गाँव के नाम से बिदकते थे। इसका हल एक ही था कि जेनरेटर रख लें। अब गाँव में बिजली रहे न रहे

चेयरमैन साहब की हवेली हमेशा जगमगाती रहती। धन-वैभव होने से जिले-जवार में लोग चेयरमैन साहब का सम्मान से नाम लेते थे। आखिर क्यों न ले, जिसके दोनो लाल अधिकारी हों; उसका समाज में रसूख क्या पूछना है! 15 दिन में कुलवीर और यशवीर घर आते रहते। इससे हवेली की हनक बरकरार थी।

वैसे तो बाहर से देखने में कुछ भी कमी नहीं थी, सिवाय इसके हवेली की हनक में भी चेयरमैन साहब अकेले थे। भरे-पूरे परिवार का मुखिया होने के बावजूद भी एकदम तनहा। बहुएँ और पोते-पोती बेटा के साथ थे। बेटी ससुराल में थी। नौकर-चाकर भोजन पानी दवा तो समय से दे देते हैं, लेकिन अपनी भावना किससे बयाँ करें।

इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी चेयरमैन साहब की कंजूसी नहीं गई। अपना खर्च बड़ी कफायत से चलाते। गाँव वाले उनके कंजूसी की चर्चा करके मजे लेते।

जब कुलवीर यशवीर घर आते तो द्वार पर लोगों का तांता लग जाता। लोग, बस उनका कुशल-क्षेम जानने नहीं आते। वजह दो थी। ज्यादातर लोग नौकरी-चाकरी या किसी काम-धाम की सिफारिश के लिए आते। दूसरा कारण था कुलवीर अबकारी विभाग में थे। तो लोगों को मुफ्त में शराब मिल जाती। कुछ कहते- 'क्या फायदा है गधों को खेत चराने से। कुलवीर बोलते- 'इसी बहाने लोग आते हैं, द्वार पर रौनक रहती है।'

वक्त ढलता रहा चेयरमैन साहब 87 साल के हो गए। एक दिन रात में दिल का दौरा पड़ा। गाँव के डॉक्टर को बुलाया गया। दवाई-सुई दिये, बोले- इन्हें बड़े अस्पताल में भर्ती कराना पड़ेगा। कुलवीर और यशवीर को फोन हुआ। वे

बोले, जल्दी से आजमगढ़ लाओ वहाँ भर्ती कराते हैं। चेयरमैन साहब को आजमगढ़ ले जाया गया। डॉक्टर बोले सीरिएस हैं, आईसीयू में भर्ती करना पड़ेगा। चेयरमैन साहब दो दिन आईसीयू में भर्ती रहे।

डॉक्टर यशवीर से बोले- 'सीओ साहब अब क्या कर सकते हैं, बाबूजी का अंतिम समय आ गया है।' शरीर से सेंशेसन जा रहा है घर ले जाइए, सेवा करिये।

ये सुनकर यशवीर और कुलवीर रोने लगे। डॉक्टर और दूसरे लोगों ने ढाँढ़स बंधाया। कुलवीर डॉक्टर से बोले जैसा चाहिए इलाज करिये, पैसा की कोई बात नहीं। डॉक्टर बोले- 'प्लीज हिम्मत रखिये। हम इलाज कर सकते हैं, जान नहीं डाल सकते। सब के साथ यही होना है।'

चेयरमैन साहब को गाँव लाया गया। प्राण कभी भी निकल सकता था। जल्दी-जल्दी दाह संस्कार की तैयारी होने लगी। यशवीर ने फोन करके स्टेनो से कहाँ- लकड़ी भेजो' ये बात है। स्टेनो ने थानेदार से बोला कि दो ट्रक लकड़ी चाहिए।

थानेदार ने हल्का के सभी आरा मशीन वालों से कहा कि 'साहब के पिता जी के दाह संस्कार खातिर लकड़ी चाहिए'। दो ट्रक लकड़ी इकट्ठा हो गई। स्टेनो ने एक ट्रक लकड़ी यशवीर के यहाँ भेजा। एक ट्रक लकड़ी बेच दिया। वो मन-ही-मन बोला चलो वैसे भी लकड़ी जल कर खाक हो जाएगी किसी को क्या मिलेगा! उनके भाग्य से जो मिल गया, सब भोलेनाथ की कृपा है। भगवान इनके पिताजी को सुकून की मौत दें, 'आत्मा को शान्ति मिलें।

यशवीर और कुलवीर ने सलाह कर अपने पंडित जी से पूछा और क्या-क्या चाहिए? पंडित जी बोले- सब कुछ समय पर होगा, यही पहले

जरूरी था। लकड़ी फाड़ के रख दी गई। अब चेयरमैन साहब के प्राण निकलने का इंतजार किया जाने लगा।

दोस्त-मित्र, नात-रिश्तेदार आते; ढांडस दे के चले जाते; कि भगवान आराम से चेयरमैन साहब को ले जाएंगे। इतने लोग आते कि दो नौकरों से चाए-पानी नहीं संभल रहा था। यशवीर ने ऑफिस से अपने फालोवर को बुला लिया।

सब उम्मीद लगाये हुए चर्चा करते कि चेयरमैन साहब आज रात में 'सुबह' दोपहर तक प्राण त्याग देंगे। लेकिन चेयरमैन साहब जस के तस बने हुए; बस पानी पर जिन्दा थे।

डॉक्टर से लोग खोद-खोदकर पूछते चेयरमैन साहब कब मरेंगे? डॉक्टर झल्लाकर बोलते कि प्राण निकलने का कोई शुभ मुहूर्त थोड़े है, कभी भी निकल सकता है। पूरे गाँव में यही चर्चा होती कि चेयरमैन साहब कब तक प्राण त्यागेंगे?

बिहारी नाऊ से नथुनी साहू ने कहा- 'शर्मा जी तुम्हारी तो लाटरी लगने वाली है'। बिहारी रोआँसा होकर बोला- 'पता नहीं कब लगेगी'? नथुनी बोला- 'थोबड़ा मत लटकाओ..., मंगल होने में देर नहीं है..., आखिर चेयरमैन साहब की यमराज से गुंडई कब तक चलेगी'।

बिहारी का भाव आजकल बढ़ गया था। क्यों न बढ़े, चेयरमैन साहब बिहारी के जजमान थे। दिनभर कोई न कोई सोनार बिहारी से मिलने आता। बड़े आरजू से बोलता बिहारी भईया, अबकी हमें न भूलना। बिहारी भी बहुत गुरु था सबको गोली देता कि नहीं भूलूँगा।

सोनार जानते थे कि चेयरमैन साहब के लिए पंचरत्न एक नम्बर का लगेगा। फिर दान पुण्य के लिए न जाने कितनी सोने-चाँदी की अंगूठी लेंगे। कुल मामला पचासों हजार का था।

यशवीर और कुलवीर ने 15 दिन की छुट्टी ले ली। बच्चे भी स्कूल से छुट्टी लेकर आ गए। चेयरमैन साहब के अंतिम समय पूरा परिवार उनके साथ था। लोग कहते- चेयरमैन साहब कितने भाग्यवान हैं कि अंतिम वक्त में पूरा परिवार साथ में है। अरे परिवार क्या रिश्तेदार भी हैं। कुछ लोग नज़र बचाके पीछे बुराई भी करते- 'भाई जिंदगी भर अकेले कुढ़ते रहे। अब साथ रहने, न रहने का क्या फायदा। चेयरमैन साहब का सबसे बड़ा भाग्य ई है कि दोनों लाल अधिकारी हैं।"

बाबू जी की साँस नहीं चल रही है। चेयरमैन साहब की बेटी दुर्गा चिल्लाई। सभी दौड़ के चेयरमैन साहब के यहाँ पहुँचे। यशवीर बोले- डॉक्टर को बुलाओ। सभी हक्का-बक्का थे। डॉक्टर आये हाथ उठाकर नब्ज देखी फिर चादर से मुँह ढक दिये। यह देख रोना चिल्लाना शुरू हो गया। ज़मीन पर कम्बल बिछाकर लिटा दिया गया। पास में गोबर के कण्ठा में आग सुलगा दिया। तुलसी भी रखा गया।

वंशी पंडित जी को बुलाने चला गया। किसी को नाऊ को बुलाने भेजा। दोनों चेयरमैन साहब के मरने की खबर सुनकर फूले नहीं समाये। बोले- बस भइया आ रहा हूँ। वे मन-ही-मन बोले कि हम तो कब से इंतजार कर रहे थे। भगवान के घर में देर है अंधेर नहीं।

यशवीर ने बिहारी से पूछा क्या-क्या लाना है। बिहारी कुर्ते की जेब से फटाफट लिस्ट निकाल कर दे दिया। लिस्ट थोड़ा मुड़ गया था। ...मतलब पहले से ही लिस्ट बना रखी थी। देखने वाले चौंक गए।

यशवीर ने वंशी को पैसा दिया। बिहारी और वंशी बाज़ार गए। बिहारी ने वंशी से कहाँ कि तुम कफ़न धूप, करायल, घी... लो। मुझे

पैसा दो तब तक मैं पंचरत्न और घड़ा लेकर आता हूँ। वंशी ने पूछा, कितना पैसा दें। बिहारी बोला- 5 हजार पंचरत्न का हुआ, एक हजार अउर दे दो, जो बचेगा वापस कर देंगे। वंशी आश्चर्य से बोला- इतना महंगा पंचरत्न! बिहारी ने कहा- शुद्ध पंचरत्न लेना है, चालू नहीं ! इसमें मूंगा, मोती, पुखराज, सुनहला, गोमेद होगा। आओ, चलो सुनार के यहाँ देख लेना। वंशी पैसा देते हुए बोला- जल्दी आना।

बाँस काटकर आ गया टिकठी (अर्थी) बनाने के लिए। बढ़ई विमान बनाने लगा। कोई हरा ढोर काट के लाया। रस्सी बनने लगी। विमान बाँधने के लिए हरी घास की रस्सी चाहिए।

बिहारी सोनार के दुकान पर पहुँचा। सोनार खुश हो गया। बोला- आओ-आओ बिहारी भइया, अपने लड़के से बोला स्पेशल चाय लाओ। चाय पीयो तब तक पंचरत्न बाँध देता हूँ।

सोनार बिहारी को मूंगा, मोती दिखाते हुए बोला- भइया ई देखो एकदम असली है। क्या करें असली पंचरत्न कोई लेता नहीं साल में कोई चेरमैन साहब जैसा एकाध बड़ा आदमी गुजर गया। नहीं किसी के पूजा-पाठ में जरूरत पड़ जाए तो पड़ जाए।

अब लोग पंडित को बेफालतू का दान कर देंगे, लेकिन पंचरत्न चाहेंगे माटी के मोले मिले। यही इंसान के साथ जाता है... कि नहीं...। पंडित तो दान लेकर मौज करते हैं ! इंसान को क्या फायदा होता है। लो बन गया। चेरमैन साहब स्वर्ग जाएंगे। दोनो हँसने लगे...।

बिहारी ने पूछा- कितना पैसा हुआ। सोनार हँसते हुए बोला- 'तुम को पैसा क्या बताना।' बिहारी ने चार हजार रूपया दिया। 'अरे भइया बड़ा कम है रत्नों का भाव भी बढ़ गया है।'।

बिहारी बोला अभी दान के लिए अंगूठी

लेना है। सोनार धिधियाते हुए कहा- 'भइया ठीक है अंगूठी भी दूँगा। इसका दाम किसी के यहाँ मालूम कर लो बड़ा घाटा हो जाएगा।' बिहारी पाँच सौ का नोट देते हुए बोला- तुम मानोगें नहीं, लो। 'किसी से बोलना नहीं कि पंचरत्न का कितना दाम दिया हूँ।' सोनार कुटिल मुस्कान करते हुए बोला 'अरे काहे बोलना- बस अंगूठी हमी से दिलवाना।'।

बिहारी सब सामान लिए आ गया। दुकानदार ने वंशी को हिसाब जोड़ कर बताया कि 8 हजार 3 सौ 32 रूपया हुआ। वंशी ने दुकानदार को पैसा देकर अपने कागज में 9 हजार 7 सौ रूपया लिखा। बिहारी ने कहा- 'इतना काहे लिख रहे हो।' 'वंशी बोला-12 सौ 69 रूपया पहले का हिसाब था। एक ही साथ लिख दिया।' तुम्हारा कुल कितने का हुआ। बिहारी पंचरत्न दिखाते हुए ई 5 हजार का है अउर मिट्टी का बर्तन 3 सौ, इ सुर्ती बीड़ी 2 सौ में।

वंशी ने कहा - 'पाँच सौ बचा न।' बिहारी तुनककर बोला- 'अभी नौ दिन पानी देना है कितना समान लगेगा।' वंशी ने कहा - 'ठीक है ठीक चलो।'।

घर पर भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। ये शीवीर और कुलवीर मोबाइल से दनादन मैसेज करते जा रहे थे कि मेरे पिताजी 'एक्सपॉयर' कर गए। बदले में उधर से फोन आता, लोग शोक संवेदना देते या श्रद्धांजली, नमन, 'रिप' का मैसेज आता।

पंडित जी अपने घर खाना खा चुके। बेटे से बोले- 'बाजार से शकरकन्द, केला लेते आना। चेरमैन साहब के यहाँ जा रहा हूँ।' बेटा ने सिर हिला कर जवाब दे दिया। वो जानता था कि दाहसंस्कार में जाने के बाद उस दिन अन्न नहीं

खाते, फलाहार या दूध पीते हैं।

चेयरमैन साहब को श्मशानघाट ले जाने की तैयारी तेजी से चल रही थी। लोगों का मजमा बढ़ता जा रहा था। कई लाल-नीली बत्तियों वाली गाड़ी से अधिकारी भी आ चुके थे। आने वाले को बाकायदा पानी शर्बत, रूह आफजा... पिलाया जा रहा था।

पंडितजी बोले- बड़े शुभ मुहूर्त में चेयरमैन साहब ने प्राण त्यागे हैं। आज... अमावस है स्वर्ग जायेंगे। कोई बोला-देखो भगवान की महिमा डॉक्टर ने कहा था कि चेयरमैन साहब एक दो दिन के मेहमान हैं, लेकिन चेयरमैन साहब 3 दिन 14 घंटा रहे। डॉक्टर साक्टर कुछ नहीं है, सब भगवान की इच्छा है।

वंशी मन ही मन सोच रहा था कि कहीं बिहारी समझ तो नहीं गया कि मैंने 12 सौ रूपया मार लिया।

चेयरमैन साहब अर्धी पर लिटा दिये गए। शवयात्रा श्मशान चलने के लिए तैयार हो गई। घंट बजने लगा। राम नाम सत्य है..., गुंजायमान होने लगा। सब सामान श्मशानघाट पहुँच गया।

शवयात्रा खूब धूमधाम से श्मशानघाट घाट पहुँची। कई सिंघा वाले सिंघा बजाते रहे जब तक चिता में आग नहीं लगी। पूरा क्षेत्र सिंघा की आवाज से गूँज उठा। ऐसी चंदन के लकड़ी की चिता किसी ने नहीं देखी थी।

बिहारी ने पंचरतन यशवीर से चेयरमैन साहब के मुँह में डलवा दिया। मुखाग्नि का आग देने के लिए डोम तैयार था। बोला-साहब 10 हजार दीजिए। सब बोलने लगे-बहुत ज्यादा है। वो बोला- "आप लोग राजा हैं, हम प्रजा हैं। आप का ही दिया हम खाते हैं। साहब, चेयरमैन साहब स्वर्ग जायेंगे।"

कुलवीर ने पाँच हजार रूपया दे दिया।

सब लोग डोम से कहने लगे, अब दे दो आग। वो फिर बोला- 'साहब खाने के लिए 2 कुंटल गेहूँ अउर 2 कुंटल चावल दे दीजिये।' यशवीर ने कहाँ-ठीक है। लोगों ने मजाक में कहा- 'डन'! डोम हँसते हुए आग जलाकर यशवीर को दे दिया। चिता धू...धू कर जलने लगी।

आग ठंडी हुई। सब लोग नदी में स्नान करके अपने-अपने घर चल दिये। पंडित जी ने बताया कि दसवां 24 तारीख को और ब्रह्म भोज 26 तारीख को होगा।

दूसरे दिन बिहारी पीपल के पेड़ पर घंट बाँध आये। यशवीर कुलवीर से बोले कि काम बहुत है सबसे पहले ब्रह्मभोज का निमंत्रण कार्ड छपने के लिए भेज दो। जिसको निमंत्रण देना है लिस्ट बनाओ। हलवाई भी तय करना है। हलवाई के बारे में लोगों से राय मसविरा लिया जाने लगा।

कोई कहता फलॉ हलवाई ठीक है। कोई बताता कि वो पुलाव खराब कर देता है तो कोई.... कोफ़ता सही नहीं बनाता। एक हलवाई पर सहमति बनी। उसे बताया गया कि हजार लोगों का खाना बनाना है सामान की लिस्ट बनाओ। वो लिस्ट बनाकर कुलवीर को दे दिया।

आइए, पंडित जी आप भी दसवाँ और दान की लिस्ट बनवा दीजिए। पंडितजी ने प्रवचन शुरू किया- "मनुष्य धरती पर जो खाता, पहनता, उपभोग करता है वो सब दान किया जाता है। कपड़ा, बर्तन, साइकिल, बिछावन, चारपाई, सोना-चाँदी..." कुलवीर ने पंडित जी से पूछा कितने विप्रदेवता को खिलाना है? 'बोले 6 से कम न हो, आगे अपनी इच्छा।'।

बिहारी महापात्रों को बोल दिया था। यशवीर ने बिहारी से पूछा- उनको क्या देना है? देना तो सबको एक ही चीज है। अपने पंडित जी का हर

चीज थोड़ा बीस रहेगा। लिस्ट बनाओ। कितने ब्राह्मण भोजन करेंगे। वो कहाँ- '101 ब्राह्मणों को निमंत्रित करते हैं।'

कुलवीर बोले- सभी विप्रजन को थाली का सेट और तौलिया, छाता दे देते हैं। सोना-चाँदी भी दान करना पड़ता है। यशवीर कहे कि सोना तो बहुत महँगा है। कुलवीर ने कहा-चाँदी की अंगूठी दे देते हैं। बिहारी बताओ कितना लेना पड़ेगा।' एक महाब्राह्मण को एक अपने पंडित जी को और 20 पण्डित जो आँगन में भोजन करेंगे। ठीक है। सामान की लिस्ट बन गई। अब सामान कैसे आयेगा?

कुलवीर बोले-चारपाई छूट गई। बिहारी बोला- 'सिंगल बेड दो-दो कुर्सी एक मेज और सिंगरदान ठीक रहेगा।' यशवीर बोले- यहीं से ले लेते हैं। वंशी किसी को बोल दो। वंशी ने तुरन्त मोबाइल से फोन किया- 'ये... ये सामान चाहिए... देना है।' उधर से आवाज आई - 30 हजार के करीब पड़ेगा। 'ये बोला- 31-32 हजार पड़ेगा।' कुलवीर बोले- ठीक है। लकड़ी तो लोहा से महँगी हो गई है।

यशवीर ने कहा कि पुलाव का चावल यहाँ अच्छा नहीं मिलेगा अपने यहाँ से मंगवाता हूँ। वे अपने स्टेनो को फोन करके बुलाये। उसे लिस्ट थमाते हुए बोले- पुलाव के लिए बढ़िया देहरादून चावल चाहिए और थाली का सेट।' "उसने कहा जी साहब...!"

कुलवीर ने भी अपने बाबू को बुलाया। उसे लिस्ट देते हुए बोले- एक साइकिल, दो दीवार घड़ी, दो कलाई घड़ी ये सब सामान दान में देना है।' उसने बड़े खुशी मन से कहा, "जी साहब ...।"

यशवीर के स्टेनो ने थानेदार से फोन करके कहा - दीजिये साहब के यहाँ दान के लिए

सामान लेना है।' थानेदार ने सिपाहियों से कहा - इमरजेंसी है वसूली तेज करो सीओ साहब के पिताजी के लिए दान देना है। सिपाही शराब, गांजा-चरस, हिरोईन बेचने वालों से बोले...।

सब पैसा वसूली होकर स्टेनो के यहाँ आ गया। स्टेनो पैसा देखकर खुश हुआ। कुल 94 हजार रुपया था। उसने पहले ही जोड़ लिया था कि सब खर्च 80 हजार रुपये का है। वो चेयरमैन साहब को धन्यवाद देते हुए कहा कि मरे तो मेरा लाभ करा गए जरूर स्वर्ग में गए होंगे। हे प्रभु उनकी आत्मा को शान्ति दो...।

उधर कुलवीर का बाबू सभी सामनों का दाम जोड़ने लगा। लगभग 50 हजार हो रहा था। अब उसने इत्मीनान के साथ शराब ठेकेदार जायसवाल को फोन किया। बोला 'महीना दीजिये।' 'वे बोलें- अभी 15 तारीख नहीं आया है काहे जल्दी है।' बाबू बोला- 'साहब के पिताजी के लिए दान-पुण्य का सामान लेना है।'

जायसवाल ने दस हजार दिया। बाबू बोला- '2 हजार और दीजिये।' वो गुस्से में बोला और क्यों? जानते नहीं साहब के पिताजी के...। ठेकेदार ने कहा- 'हमारी आत्मा का कोई महत्व नहीं है।' आजकल बिक्री मंदा है। बाबू बोला- चार महीने बाद चुनाव है नम्बर एक-नम्बर दो एक भाव बिकेगी। जाएसवाल 2 हजार देते हुए बोला, "साहब के पिताजी दुनिया से चले गए पर हमें नहीं ...।"

इस तरह करके बाबू ने 60 हजार रुपया इकट्ठा किया। उसने चेयरमैन साहब को मन ही मन धन्यवाद दिया। "चेयरमैन साहब के आत्मा को शान्ति मिलनी अभी शेष थी। पर यशवीर के स्टेनो और कुलवीर के बाबू की आत्मा प्रसन्न हो गई।"

कुलवीर ने कहा कि "अंगूठी यहीं से ले

लेते हैं।" बिहारी ने तपाक से कहा कि "साहब लाल बाबू सोनार के यहाँ से ले लीजिए। उसका भाव सामान सब ठीक रहता है।" कुलवीर बोले- 'उसें बुलाओ।' बिहारी तो इसी दिन के इंतजार में था। तुरन्त सोनार को बुलाने चला गया। बोला- भाई शाम को दिखाने चले आना मामला सेट कर दिया हूँ। अब मेरा कमीशन कितना...। 40 परसेंट। 'बिहारी ने कहा- ये बड़ा कम है।' वो बोला-भइया कितना दिन का उधारी माल लाया हूँ। कोई नगद दे कर तो लाया नहीं, अब क्या बताऊँ, कितना परसेंट सेठ को देना होगा। चलो फिफ्टी...।

सोनार कुलवीर और यशवीर को अंगूठी दिखाते हुए बोला- साहब एकदम असली है 24 टंच चाँदी है। चेयरमैन साहब के लिए दान करना है। मैं भला पाप करूँगा। कुलवीर ने कहा-20 दे दो। पैसा कितना हुआ।

सोनार कागज पर हिसाब जोड़ने का ड्रामा करते हुए बोला- 'साहब 22 हजार 1 सौ 70 रुपया। 'कुलवीर बोले -ठीक है।' सोनार और बिहारी की नजरें आपस में मिली, चेहरे पर हल्की सी मुस्कराहट आयी, लेकिन दोनों रोक लिये।

राशन पताई से लेकर दान-पुण्य का कपड़ा, बिस्तर सब सामान घर पर आ गया था। यशवीर कुलवीर की पत्नी और दुर्गा सब सामान मिला रही थीं कि कुछ छूटा तो नहीं है। द्वार पर बेड, कुर्सी, मेज, सिंगारदान और साइकिल रखा हुआ था। देखने वाले चकित हो जाते कितना सामान दान कर रहे हैं। गाँव में चर्चा हो रही थी कि दान में बेड का पूरा सेट, साइकिल, अंगूठी और सभी ब्राह्मणों को थाली-लोटा दे रहे हैं। "पंडित तो पूरा मालामाल हो जाएंगे।"

हम लोगों को क्या मिलेगा? बस 'भोजन'

तक साथ है। किसी ने कहा - चिन्ता न करो मशरूम आ रहा है। बोले- तब तो भोज में मजा आ जाएगा।

यशवीर बिहारी से बोले- किसी का निमंत्रण भूले तो नहीं, देख लो बहुत बेइज्जती होगी। बिल्कुल नहीं साहब।

आज दसवाँ था। महापात्र नदी किनारे बगीचा में आ गए थे और अपना टंट-घंट शुरू कर दिये। बिहारी ने उनके लिए सब सामान पहुँचा दिया। घर में उनके लिए पूड़ी-सब्जी, खीर बन रहा था।

घाट पर सभी का मुण्डन हुआ। नदी में स्नान किये। यशवीर ने दाग दिया था। पूजा उन्हें ही करना था। महाब्राह्मण के मुखिया ने यशवीर को मंत्र पढ़ाया और 100 रुपया दान रखवाया। फिर बोला साहब घंट फोड़ना है लड़के को 5 सौ दीजिए।

पूजा पाठ होता रहा ब्राह्मण देवता मंत्र पढ़ते रहे। ये दान... वो दान बोल के पैसा रखवाते रहे। फिर बोले- साहब ई "सर्वदान है" ...मैं चेयरमैन साहब का अच्छा-बुरा अपने ऊपर लेता हूँ। 10 हजार दीजिए। सब कहने लगे, अरे महाराज ज्यादा है। इतना सब कुछ तो आप के लिए ही...। पंडित बोले- साहब मेरा दान ही सफल होगा, जोड़िये सालभर एक आदमी कितना खाता-पीता है। आप लोग तो मेरा मालिक हैं। इतना सब कुछ भगवान ने दिया। अउर आप लोगों को तरक्की देंगे। ब्राह्मण को दान करना बहुते पुण्य है।

कुलवीर ने 10 हजार दे दिया। पंडितजी खुश हो गए। बिहारी ने यशवीर को दूध देकर बोला कि पंडितजी को दीजिए। पंडित दूध लेकर बोला यमराज... माधो चौधरी को... मंत्र बुदबुदाया।

महाब्राह्मण देवता सर-समान, अनाज-पानी

गाड़ी में भर कर चेयरमैन साहब की आत्मा की शान्ति कराकर चल दिये। चेयरमैन साहब के आत्मा को तो किसी ने नहीं देखा लेकिन पंडितजी की आत्मा काफी सालों बाद इतनी प्रसन्न हुई। मुस्कराते हुए जा रहे थे। क्यों न हो, इतना मोटा जजमान कभी-कभी ही मिलता है!

ब्रह्मभोज के एक दिन पहले से ही हलवाई आ गया। मिठाई बनने लगी। उस दिन सुबह से ही लोगों का तांता शुरू हो गया। यशवीर और कुलवीर के जो दोस्त अधिकारी थे नीली बत्ती वाली गाड़ी से हूटर बजाते हुए आते।

आज गाँव में लग रहा था कि कोई वीआईपी कार्यक्रम है। अनजान व्यक्ति बता नहीं सकता कि ये ब्रह्मभोज है। शाम हो गई। विप्रदेवता को खिला दिया जाए तभी भोज शुरू होगा।

उपरेहित पंडित अपने बेटे, भाई, भतीजों को पहले ही समझा चुके थे कि जब मैं इशारा करूंगा तो तैयार हो जाना। पंडितजी खड़े हुए सब उनके पीछे चल दिये। आंगन में टाट-पट्टी बिछी हुई थी। सब ने आसान ग्रहण किया। बाहर और ब्राह्मण खड़े थे। अन्दर से आवाज आई फुल है आप लोग बैठिये।

ये ब्राह्मण बेचारे मन मसोस कर बैठ गए। उन्हें पता था कि असली माल तो आंगन में ही मिलेगा मन ही मन उपरेहित महाराज को गाली देने लगे।

सबको भोजन आए फिर चमकता हुआ थाली का सेट, धोती, तौलिया, छाता, अंगूठी

और 501 रूपया मिला। उपरेहित बाबा ने मंत्र पढ़ा कर भोजन शुरू किया, तो सब भोजन करने लगे।

फिर भोज शुरू हुआ। देर तक चलता रहा। बीच में डोम आ गए उन्हें खाना दिया गया। फिर दान देने की बात आयी तो वे बोले “साहब हमें पइसा नहीं चार बिस्वा खेत दे दिजिये बसे खातिर...”, चेयरमैन साहब की निशानी रहेगी। ये बहुत बड़ी समस्या हो गई कैसे उन्हें मनाया जाए। किसी तरह उन्हें समझाया गया। ...जो चाहो और ले लो। उन्हें समझ में आ गया कि जमीन इतना सस्ती नहीं है। वे बोलें मालिक पाँच हजार दे दीजिये। कुलवीर उन्हें तीन हजार रुपये देते हुए बोले, बोल दो। सभी एक सुर में बोले “जग पूरा ह...।”

भोजन करने वाले खाने का गुणगान करते नहीं थकते। इतना किस्म तो किसी के शादी-ब्याह में भी नहीं बनता है। कितने तरह की सब्जी, खीर, दही, लस्सी, रसगुल्ला जितना चाहो उतना खाओ। सब खाते जाते प्रशंसा करते जाते। कोई कहा दो लाख रूपया खर्च हुआ... होगा दूसरा बोला हूँ तीन लाख से कम नहीं, महंगाई नहीं देखी...।

तभी किसी ने कहा कि चेयरमैन साहब ऊपर से देख रहे होंगे तो उनकी आत्मा कितना कष्ट में होगी, “जीतेजी किसी को चाय नहीं पिलाते थे। अब मरने पर पैसा उड़ाया जा रहा है।” छोड़ो, जब हमारी आत्मा प्रसन्न हो गई तो उनकी आत्मा को भी शान्ति...!

समय की शिला पर कुछ गुनते-धुनते प्रोफेसर साहब बैठे थे। अपने समय और आज के समय के बीच तालमेल मिलाते हुए। अक्सर उन्हें कोपत होती है अपने इस स्वभाव से। जीने दो, जिसका जो समय है, जो स्वभाव है ...अब हस्तक्षेप से क्या मतलब? गलत या सही हर समय का अपना एक तर्क होता है। अब उलझने से फायदा? अपने समय को अपनी तरह वे भी कहाँ जी पाए? अचानक ऐसा हुआ कि कहाँ से कहाँ पहुँच गए? जीवन के मूल्यों और आदर्शों का यह परवर्ती अवरोहण क्या जीवन के अभावों और दुखों की अपनी आत्म-परिणति है या समय के शीत-ताप से आक्रांत हो, सबसे तेज दौड़ने वाला वह घोड़ा परिस्थितिवश परास्त हो गया?

...उतनी ऊँची उड़ान पर उड़ो ही नहीं कि गिर जाओ।

एक औसत जिंदगी का नक्शा अगर पहले से ही रहे, तो किस बात का मलाल? पीढ़ियाँ भी आजाद खयालों की तरह होती हैं, जो बाद में आपकी आशाओं और सपनों से अलग अपनी राह चलती हैं। उनमें उनके समय को देखा जाए या अपने समय को?

दिसंबर की सर्दी से ठिठुरता हुआ महीना। हल्की अधखिली धूप। प्रो. दास अपने छोटे से लॉन में कुर्सी डाल कर बैठे हुए थे। घास की खिली-अधखिली फुनगियों पर ओस की बूँदें लिपटी हुई थीं। जीवन एक तरह से मौसम की तरह रंग बदलता है!

उन्होंने चाय पीते हुए गेट की तरफ निगाह डाली।

...उनके सामने से एक खूबसूरत लड़का जीन्स और ब्लैजर पहने हुए निकला, तो उन्हें मोह हो आया। बड़ी-बड़ी चमकदार आँखें, घुँघराले बाल, गोरा कसा बदन! न सही ऐसा, पर बिजली सी छिटक गई उनकी धमनियों में!

‘आकाश!’ उन्होंने आवाज लगाई।

‘क्या पापा?’ वह वापस लौट आये। कुछ असहज किंतु शालीन। जैसे तेज चलती-भागती इच्छा की गाड़ी पर ब्रेक लगा हो!

‘बाहर ठंड बहुत है बेटे!’ उन्होंने मानो घुमाकर पूछा, ‘कहाँ जा रहे हो?’

‘एक आदमी से मिलना है...’ उसने अधीर स्वर में कहा।

‘जाओ, मगर समय अच्छा नहीं है।’ उन्होंने खाँसते हुए कहा।

‘जी समझता हूँ।’ बेटे ने कुढ़ कर कहा।

‘जाओ।’ उन्होंने सिर घुमाते हुए कहा पर जल्दी लौट आना।’

इन बच्चों को रोकना सचमुच कठिन है। जैसे न तुम वक्त की ठंडी हवा को रोक सकते हो और न गरम हवा के बवंडर को।

शीला ने उनके मनोभावों को पकड़ते हुए, कहा, 'तुम्हें हस्तक्षेप के बजाय आत्म-शोध पर ध्यान देना चाहिए।'

'क्या?' वे चौंके, 'क्या कह रही हो तुम?'

'अपने समय को भी याद करो।'

'अपने समय को याद करना कठिन है मेरे लिए।' प्रोफेसर साहब ने उसाँस लेकर कहा, '...मैं सोचता हूँ मेरी वाली कोई स्थिति नहीं हो उसकी। तुम भी नजर रखो।'

'आकाश बड़ा है।' उसने कहा, 'माधवी और विकास पर भी तुम्हारा अतिरिक्त दबाव रहता है। बच्चों पर इतना अनुशासन ठीक नहीं। कहो वही, जो चले। उनकी जिंदगी को खुद जीने का प्रयास नहीं करो।'

'तुम बच्चों की हर जिद्द को इसलिए पूरा नहीं करो कि तुम्हारे पास पैसे हैं। उनकी शाहखर्ची बिगाड़ देगी उन्हें...उन गरीबों के बारे में सोचो, जो वक्त के बदलने के इंतजार में अभाव से ठिठुर रहे होंगे।'

'तुम अपने द्वन्द्व के साथ जीने के लिए स्वतंत्र हो, पर अपनी कुंठाओं और अवसाद का स्ट्रेस इन बच्चों पर मत डालो।' शीला नाराज हुई।

उनका मन हुआ कि कहे, 'शीला मेरे मन के स्ट्रेस को तुम क्या जानो, कुंठा और अवसाद मत कहो, मेरी पीड़ा और परेशानी गाँव की वह पगडंडी और कच्चे-पक्के मकान हैं, जिनकी धूलें आज भी मेरी आत्मा पर उड़ती रहती हैं। दुख और यातना भोगते वे लोग, जो आज भी शोषण-दमन के नीचे जी रहे हैं। जिनकी लड़ाई कहीं से मुझे आज भी पुकार रही है और मैं...'

'बंद करो।' शीला ने तमक कर कहा, 'मैं नहीं सुनूँगी। घर की बातें घर में। सरकार और पार्टी की बातें घर से निकल कर किया करो।'

अगर ऐसा सोचते हो, तो फिर गलती किसकी है? तुमने विवाह क्यों किया? घर-परिवार क्यों बसाया? वह हथ्थे से उखड़ गई, 'इतनी मोटी बात तुम लोगों की समझ में क्यों नहीं आती? अगर घर-परिवार और समाज नहीं हो, तो पार्टी और विचार का क्या मतलब?'

'अगर पत्नी पढ़ी-लिखी हो, तो घर में भी बहस का खतरा रहता है।' उन्होंने हँसकर कहा, 'वैसे क्या, तुम भी पहले किसी पार्टी में थी?'

'नहीं, बिल्कुल नहीं।' वह भी हँस पड़ी, 'वैसे आज कोई आएगा।'

....

कभी-कभी तुम जो सोचते हो, वही होता है। मन की आँधी कोई प्रतिछवि ढूँढ़ लाती है। फिर भाग भी नहीं सकते। कहावत है, जिसे याद करो, वही हाजिर! दूसरे पहर के बाद किसी ने दिल के दरवाजे पर दस्तक दी। शीला की बात सच निकली।

'प्रणाम सर!' एक मासूम सा लड़का।

'अरे कौन?' जिज्ञासा के भाव से कहा उन्होंने। माथे पर पसीने की बूँद छलक आई, पहले बैठो तो सही।

'आपने पहचाना नहीं?' लड़के ने बैठते हुए कहा।

'मेरी आँखें कुछ धुँधली हो गई हैं।' उन्होंने झेपते हुए कहा।

लड़का पुराने स्वेटर और पैंट पहने हुए था। ठंड में कुछ-कुछ ठिठुरा हुआ सा।

'कोई चादर डाल लेते।' प्रोफेसर साहब ने हीटर जलाते हुए कहा, 'काफी ठंड है।'

'नहीं ठीक हूँ।' उसने किंचित उदास स्वर में कहा।

वे जानते हैं ऐसे समय एक पल की सहानुभूति उथली होती है। एक बार खुद ऐसी

ही स्थिति में वे एक प्रोफेसर साहब से मिलने गए थे, तो उनकी नसीहतें उनकी गरीबी को खरोंच गई थीं। लौटते हुए उन्हें पहले से अधिक ठंड लगी थी।

‘अजय?’ प्रोफेसर साहब ने कुछ याद करते हुए पूछा, ‘मुझे अब याद आ गया सब। तुम पहले भी कई बार मिले हो कॉलेज में।’

‘जी सर!’

‘रहते कहाँ हो भाई?’

‘वहीं, पार्टी दफ्तर में।’ उसने सीधे कहा, ‘खाली वक्त में पार्टी काम भी करता हूँ। पत्रिका के संपादन में भी सहयोग करता हूँ। रविदास मुहल्ले में ट्यूशन देता हूँ।’

‘और तुम्हारी अपनी पढ़ाई-लिखाई कैसी चल रही है?’

प्रोफेसर साहब ने सहज औपचारिक भाव से पूछा, फिर कहा ‘तुम्हें मालूम है दो साल हुए। मैं रिटायर हो गया।’

‘जी मालूम है।’ उसने ठंडे दिल से कहा, ‘पढ़ाई चलती है सर! पर पार्टी का इतना सहयोग है, तो उसकी जिम्मेवारियाँ भी तो मेरी हैं।’

‘पार्टी से कभी मेरा भी लगाव था!’ प्रो. साहब ने कहा।

‘जी चर्चा चलती है।’ उसने बेलाग भाव से कहा, ‘वहाँ उतना आदर नहीं है आपके लिए! कहते हैं आपको जिस मिशन पर लगाया गया था, वहाँ से आप भागआए प्रोफेसर बनने के लिए। फिर सुविधा परस्त हो गए।’

‘क्या?’ उन्होंने कुछ अटकते हुए कहा।

‘जी वे कहते हैं कि आप में यह काइयाँपन और चालाकी पहले से थी। समय की नब्ज पढ़ने की कला में माहिर थे आप। आपने पार्टी को यूज किया, फिर आ गए वहाँ, जहाँ पहले आना था।’ उसकी आवाज उन पर टूट रही थी, इसलिए वे

बुलाते भी नहीं।’

‘यह गलत है।’ उन्होंने दर्द से टूट कर कहाँ, ‘उस समय देश-दुनिया में पार्टी की साख गिर रही थी। गाँव वालों ने मुझसे खुद कहा आप जाइए। पार्टी वालों को गलतफहमी हुई।’

‘आपने फेस किया होता?’

‘मैं किससे कहता।’ वे हकम कर बोले, ‘पूर्वाग्रह से टकराना कठिन होता है, फिर हालात ने भी मुझे तोड़ दिया।’

‘नहीं सर! जिंदगी के मैदान में आप एक भावुक नायक थे। आपकी महत्वाकांक्षा पार्टी और प्रतिबद्धता से बड़ी थी। आपने खुद ऐसी परिस्थितियाँ बनाई कि वहाँ अंतर्विरोध पैदा हुए। आपको जिस संगठन को मजबूत करना था, उसी से आपने किनारा कर लिया।’ अजय ने अनजाने ही उस बवाल पर उंगलियाँ रख दी थीं, जहाँ से आग और धुएँ की दुनिया शुरू होती है। आदमी उन तल्लिखों में उघड़ जाता है अलिफ नंगा!

‘तुम उस हद को छू रहे हो, जिसकी इजाजत किसी को उसका विवेक नहीं देता। तुम होते कौन हो मुझसे यह पूछने वाले? किसने दिया इतना अधिकार तुमको?’ वे लगभग चीख उठे, नहीं वे चुप थे। उन्हें लग रहा था कि आज कोई दबी हुई इच्छा बोल रही हो उनके भीतर से। चार-पाँच दशकों की बीती हुई बातें! स्मृतियाँ उफन रही थीं!

‘नहीं सर! मुझे बोलने दीजिए। जो कल आप में पैदा हुआ...आज मुझमें पैदा होगा, तो हम रहें ही क्यों?’ उसने पूरे उबाल के साथ कहा, ‘आप नहीं समझ सकते। आपके पक्ष में मैं वहाँ तर्क देता हूँ। यह भी कहता हूँ कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी समय अपनी विचारधारा बदलने का अधिकार होना चाहिए। गुलामी चाहे

व्यक्ति की हो या विचारधारा की... वह हमेशा के लिए सही नहीं हो सकती ...लेकिन सर! आप हारे हुए नायक हैं। आपने गलत समय पर गलत फैसला लिया। जितनी खीझ, जितना गुस्सा आपको है। मुझे भी है, पर गरीबों की यह लड़ाई चलनी चाहिए। आजादी के कितने दशक बीत गए। हमारी तरक्की एक जवान सपने के बुझापे की तरह है। परिवर्तन हुए हैं पर सिर्फ स्वरूपात्मक, पर गुणात्मक कुछ नहीं। आज भी गरीब और शोषित लोग अपने अधिकार से वंचित हैं। उनकी बस्तियाँ उजाड़ी जा रही हैं। धर्म और जाति के नाम पर दंगे हो रहे हैं। मजदूर पलायन कर रहे हैं और किसान आत्महत्याएँ... फिर बदला क्या? नव पूँजीवाद का रथ दौड़ रहा है। हम हाथ पर हाथ धर कर कैसे रह सकते हैं?’

प्रोफेसर विजयकांत दास कुछ उद्विग्न हुए। एक तरह से आत्मालोचन के लिए बलात तैयार तो हो गए थे वे, पर युवक इस तरह कठिन विमर्श करेगा, इसकी उम्मीद नहीं थी उन्हें। उन्होंने तल्खी से कहा, ‘कामरेड अजय तुम सही कर रहे हो, पर यह तुम्हारा विमर्श है। अपनी भूल-गलती का तुम खुद आधार हो सकते हो, मेरी भूल-गलती को अपना आधार नहीं बनाओ।’ वे उठ गए, ‘अब तुम जाओ...हाँ तुम आये किस काम से थे?’

‘जी बस ऐसे।’

‘मेरे लायक कोई सेवा?’

‘अभी तो नहीं।’

‘तब ठीक है।’ उन्होंने बदलकर कहा, ‘तुम में मेरा बचपन और तुम्हारे जैसा अपना युवापन दिखा है। बस अपने विवेक और विचार को भी समझो। इस्तेमाल करते हैं ये लोग। दोहरी जिंदगी है हर जगह। अपना रास्ता चुनो।’

...

‘कौन था?’ शीला ने पूछा।

‘मेरा विगत जीवन!’ उन्होंने परेशान होकर कहा।

‘बहुत बक-बक कर रहा था।’ वह हँसी।

‘करने दो।’ उन्होंने बदलकर कहा, ‘पर लड़का है बहुत संभावनाशील!’ फिर कुछ याद कर कहा, ‘आकाश आया?’

‘आ रहा होगा।’ शीला ने कुछ लार करते हुए कहा, ‘माधवी और विकास मॉल जाना चाहते हैं ब्लैजर और जिंस के लिए डिसकाउण्ट चल रहा है।’

‘तुम बच्चों को बिगाड़ रही हो।’

‘तुम पागल हो गए हो क्या?’

‘मतलब!’ उसने झिड़क कर कहा, ‘मैं भी जा रही हूँ। हाँ, आकाश आ रहा होगा। वह अपने दोस्त के साथ पिकनिक में गया है, उससे कोई बहस नहीं करोगे।’

...

रात में हल्का भोजन लेने के बाद प्रो. साहब लिहाफ ओढ़कर सो गए। अचानक अजय नाम के एक लड़के ने आकर उनकी जिंदगी में तूफान उठा दिया था। उन्हें नींद नहीं आ रही थी। स्मृति में मानों पिछली बातें ओस की मानिंद टपक रही थीं... अपना मटमैला गाँव, कच्चे-पक्के घर-मकान... अमराई, पोखर... मुखिया जी, मास्टर जी ...भूख, अभाव, बेबसी... उन्होंने करवट बदली, हत्या... गोलियों की तड़तड़ाहट... चीख - पुकार... भागते-चिल्लाते लोग... उनका मन विचलित हो रहा था!

देर रात उन्हें नींद आई। सपने में एक बंद दुनिया खुली हुई थी। त्याग, समर्पण, आरोप अविश्वास संदेह, उपहास और अभियोग की दुनिया... एक ऐसी दुनिया जिसको बदलने की जिम्मेवारी थी उसकी। पी.जी. करने तक वह लगभग प्रतिबद्ध हो चुका था। एक क्रांतिधर्मी

संकल्प-चेतना से लबरेज। घर के लोगों से वह दूर हो चुका था। एक मुहिम पर...

...पर उस उन्मेषी और आवेशी चेतना की इसमें क्या गलती थी? तुम्हारी जमीन अगर भीतर ही भीतर दरक गई, तो इसमें उसका क्या दोष? आत्म-शोध और आत्म निरीक्षण तो तुम्हें भी करना होगा। अपनी समर-नीति में तुम्हें भी संशोधन करना होगा? तुम किसी दूसरे के सिर यह दोष मढ़कर बरी नहीं हो सकते....

.. बस आ चुकी थी। खुलने में कुछ देर थी।

उसने लुटे-पिटे भाव से पीछे मुड़कर निहारा। मन में एक टीस सी उठी। उसने मुट्ठी को कसकर बंद कर लिया, फिर खोलकर देखा कुछ भी नहीं था। एक उम्मीद जो साँझ की परछाइयों में खो गई... भोर की कोई स्वर्णिम किरण भी जिसे बचा नहीं सकी। उसने पहलू बदला। मन पर तिर आए अवसाद की परतों को तोड़ना चाहा। पराजय-बोध की अकथ पीड़ा!

उसने गमछा से अपना चेहरा पोंछा, जैसे लाली के खून से उसका चेहरा लथपथ हो गया हो! चक्कर धिन्नी सी घूम गई उसके दिमाग में! लाली मरा कहाँ है? संदेह खड़ा है आक्रोश और क्षोभ की मुद्रा में, 'चेतन दा, यही निभाया आपने?'

उसने आवेश और उत्तेजना में पत्नी की पथराई आँखों वाला चेहरा आगे कर दिया, जानवर से डरे-सहमें बच्चों को दिखाकर कहा, 'इन्हें कुछ तो जवाब दो बाबू?'

लावा सा उबला फिर दर्द पत्थर की तरह जम गया उसके सीने में। क्या बोले वह! पर उसने जैसे कहा हो, 'मैं भागा कहा? मुझे भगा दिया उन लोगों ने।'

'किन लोगों ने? 'गोया पूछा हो लाली ने।

'उन लोगों ने जो झूठे सपने की तरह

साथ थे हमारे...वही लोग मिल गए...हमारे अपने लोग।' उसने बेचैन होकर इधर-उधर देखा, उफ! गाड़ी क्यों नहीं खुलती! जल्दी खोलो भाई...उसने पलकें बंदकर ली, आँखों में दूर-दूर तक असंख्य छतरियाँ उग आईं। छतरियों के अन्दर से उठते हैं धुएँ, गूँजती हैं किलकारियाँ। बजती हैं घंटियाँ...प्रोफेसर साहब ने करवट बदली।

'...चेतन दा तुम गाँव छोड़ दो! हमें जीने दो। लाली अब लौटकर नहीं आएगा, फिर तुम्हें क्या? तुम्हारे कौन बाल-बच्चे हैं ...वे कहते हैं बाहर से लाने के लिए भेजा गया है तुम्हें!'

प्रो. साहब की चेतना बादल के टुकड़े की तरह उड़ रही हैं...

...तो आप भाग आए? पार्टी के ट्रस्ट को छोड़कर? आप एक भगोड़ा नायक हैं, भगोड़े नायक के लिए कोई जगह नहीं है...चलिए आप निकलिए... आप को हम छोड़ दे रहे हैं...

... सुबह जब उनकी नींद खुली, तो उन्हें लगा रात कहर बनकर टूटी है उन पर। पर जब उन्होंने कहा, आपके बाल-बच्चे नहीं...और इन्होंने कहा आप गद्दार हैं, तो बचा क्या था विकल्प? वे पार्टी से निकले नहीं, निकाले गए। एक बार संशय और अविश्वास का माहौल बन जाता है, तो फिर आप अपने को भी कुछ नहीं कह सकते! कोई जस्टिफिकेशन सही नहीं लगता किसी को।

... 'तुम उस लड़के के बारे में क्यों सोचते हो?' शीला ने एक रोज उनसे कहा, 'माधवी कह रही थी, लगता है, उसने पापा को गहरे तक हर्ट कर दिया है...'

'नहीं शीला!'

'तब?'

'वह बहुत जहीन लड़का है।' वे बोले, 'मैं उसका बहुत सम्मान करता हूँ, पर मुझे लगता है मैंने उसे...'

‘तो उसे समझाओ।’
 ‘वह आए, तब तो!’
 ‘वह आया था।’
 ‘मिला तो नहीं?’
 ‘मैंने मना कर दिया।’
 ‘क्यों?’
 ‘यूँ ही।’
 ‘तब वह नहीं आयेगा।’
 ‘आयेगा।’ शीला हँसी, मैं क्यों मना करूँगी?
 वह आया ही नहीं।’
 ... प्रोफेसर दास के मन में अजय का
 इंतजार जब खत्म हो गया, तब लगभग एक वर्ष
 बाद वह फिर अवतरित हुआ। पहले से कुछ
 ज्यादा कृशकाय। मगर उत्साहित! उसने आते
 ही कहा, ‘मेरी राय का पार्टी पर कुछ असर हुआ
 है सर...आत्म-शोध और आत्म-निरीक्षण पर अब
 विमर्श कर रहे हैं लोग। अलग से बेहतर जिंदगी
 के लिए विकल्प चुनना अब ‘ब्रिच ऑफ ट्रस्ट’
 नहीं माना जाएगा।

‘हमारे समय में नहीं था।’
 ‘समय बदला है सर।’
 ‘तो तुम बेहतर विकल्प चुनो।’
 ‘नहीं सर!’ उसने कहा, ‘मेरा संकल्प पार्टी
 है। परिवर्तन की लड़ाई है। मैंने अपना जीवन
 संघर्षकामी सामूहिक चेतना के नाम कर दिया
 है। मैं लौट नहीं सकता।’
 ‘तब कहा आए हो?’ उन्होंने दुखी होकर
 कहा।
 ‘एक कविता सुनाने।’
 ‘सुनाओ।’
 अजय ने प्रो. साहब की ओर देख कर
 कहा-
 ‘लो, ज्योति-चक्र पर चढ़ा समय
 आओ फिर से दीप जलाएँ
 किसी किरण को पास बुलाएँ...
 उन्हें लगा यह लड़का और कोई नहीं,
 उनकी ही इच्छाओं का पुनर्जीवन है। उन्हें अपने
 इस रूप से रश्क हो आया।

संपर्क : संजय कुमार सिंह, प्रिंसिपल, पूर्णिया महिला कॉलेज, पूर्णिया-854301, मो. : 9431867283

कविता क्यों लिखता हूँ? मेरे लिए यह एक यक्ष प्रश्न है ? इसका सही उत्तर मुझे नहीं पता है लेकिन, गनीमत है कि उत्तर न देने पर या गलत उत्तर देने पर भी प्राण हरण का संकट नहीं है। इसलिए न चाहते हुए भी दे रहा हूँ।

इसका एक 'रेडीमेड टाइप' का उत्तर है जो मुझे सच भी लगता है, खासकर अपने संदर्भ में कि 'जब दुनिया से नहीं लड़ पाता तो कविता लिखता हूँ।' मेरे लिए कविता 'हारे को हरिनाम' की तरह है। यह मेरी रक्षा कवच है, मेरा 'सेफ्टी वाल्व' है। इसी के सहारे मैंने बहुत कुछ यहाँ तक कि यह जीवन भी 'मैनेज' किया है। नहीं तो मित्र प्रकाश और सुनील की तरह आत्महत्या कर लिया होता। कविता की वजह से खोया बहुत कुछ है, पाया कुछ है लेकिन खोने का गम नहीं पाने के लिए कविता का धन्यवाद कहकर उसे छोटा नहीं करना चाहता। मेरे जीवन में उसकी उपस्थिति बहुत बड़ी है। मुझसे भी बड़ी लेकिन आजकल, कम से कम पिछले नौ-दस महीने से मुझे गद्य लिखने में मजा आ रहा है। लिख भी रहा हूँ। एक किताब तैयार भी की है लेकिन, कविता में ही मेरे प्राण बसते हैं। वही मेरी प्राणप्रिया है।

मेरी कविता की रचना प्रक्रिया भिन्न है। मैं कभी भी सोच कर या नियत समय बाँधकर नहीं लिख पाता हूँ। न डायरी रखा हूँ कि डायरी में लिखूँ। मैं कभी भी, कहीं भी कविता लिख सकता हूँ; बस वो अचानक दिमाग में गिरने लगती है। कई बार रेलगाड़ी में (लोकल ट्रेन) या बस में या खाना बनाते वक्त या नहाने जाने से पहले या फोन पर बात करते-करते कविता की बमबारी होने लगती है। जवानी के दिनों में काफी थका होता था तो बिस्तर पर नींद और कविता एक साथ ही गिरते। मैं नींद को उठाता और कविता को गिरने देता। कई कविताएँ इसी चक्कर में गिरकर बिला गईं। नींद मुझे काफी प्रिय है। कविता और नींद में से मैंने नींद को ही काफी बार चुना है। सोना मेरे लिए सोने की तरह है। वही एक है जिसके खोने का डर बना रहता है। कभी भी, कहीं भी, किसी तरह की पर्ची में लिखने की वजह से कई कविताएँ खो गईं। अफसोस होता है, पर जानता हूँ जो खो गया, वह मेरा नहीं था। जो छपा, वही मेरा है। छपे हुए पर विश्वास के चलते वेब मैगजीन या फेसबुक पर जल्दी कविताएँ नहीं लगाता। न उस तरह पढ़ना पसंद करता हूँ। आजकल मोबाइल में कविताएँ टाइप कर लेता हूँ। अब खोने के डर कम हो गए हैं पर खत्म नहीं हुआ है। इसलिए मोबाइल में टाइप करके अपने ईमेल में रख लेता हूँ। फिर संपादकों को मेल कर देता हूँ।

1. पढ़ने का सुख

लिखने का सुख
पढ़ने के सुख से कम होता है

मन को पसंद आ जाए कुछ पढ़ना
तो बार-बार पढ़ने से
सुख बढ़ता है

लिखना जितना भी पसंद हो
एक ही बात को बार बार लिखने से
दुख उपजने लगता है

विश्वास करने से आता है
नहीं तो नहीं आता
मानो तो देवता, नहीं तो पत्थर

पूछ कर देखो किसी से
जो पढ़ता भी हो
लिखता भी हो
वह कहेगा-
लिखने का सुख
पढ़ने के सुख से कम होता है।

2. मैं मारा भी जाऊँ तो मुस्कुराऊँ।

तुम्हें इतना प्यार करना चाहता हूँ
कि तुम हत्या भी मेरी करो
तो तुम्हें माफ कर दूँ

तुम मुझे गाली दो
तो तुम्हें गले लगा लूँ

तुम्हारे लिए
फूलों का गुलदस्ता जरूर लाऊँ
यह जानते हुए कि
तुम मुझे जलील करने आ रहे हो

कर्मस्थल में तुम से पीछे रहूँ तो कोई गम नहीं
जीवन में तुम से आगे हो जाऊँ तो दुःख हो

तुम एक बेहतर इंसान बन जाओ
मैं मारा भी जाऊँ
तो मुस्कुराऊँ।

3. उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता

याद आती हो तो रात
उस दिन की तरह हो जाता है
दिन, उस रात की तरह हो जाती है

कुछ, कुछ भी हो सकता है।

कितनी शक्ति है
तुम में
तुम्हारी याद में
तुम्हारी बातों में
तुमसे मिलने के बाद जाना

नहीं मिला होता
तो भी कट जाता यह जीवन
मिला हूँ तो कट ही नहीं रहा जीवन
यह समय
यह रात, वह दिन
वह दिन, यह रात
बहुत सारी चीजें बदल गई हैं
इस कायनात में
मेरे अलावा किसी को विश्वास नहीं होता
मेरी बात पर

जो प्यार नहीं करते
उन्हें कोई फर्क ही नहीं पड़ता
उनका भी कट जाता है जीवन
कट जाती है रात।

5. हिटलर आता है

मोहम्मद गोरी मेरा कोई नहीं था
बाबर बाहर से आया था
अकबर से मेरा कोई नाता नहीं था
दिन-ए-इलाही के बारे में किताबों में पढ़ा था
अच्छा लगा था

जवानी में जफर
बचपन में रूतम मेरा दोस्त था
किशोरावस्था में साजिया के लिए कविताएँ
लिखी थी

धर्म से ज्यादा
ईद बकरीद की सेवई और गोश्त अच्छे लगते थे

'थे' को मैं 'है' में बदलना चाहता हूँ
फिर से कविताएँ लिखना चाहता हूँ
सेवई और गोश्त खाना चाहता हूँ

बार बार एक मुख्यमंत्री
एक प्रधानमंत्री

एक शिक्षा विभाग का अफसर
'है' को 'था' कि तरह रखते

'है' जब-जब 'था' कि तरफ जाता है
हिटलर आता है।

6. भगवान और विज्ञान

इस दुनिया में
बहुत कुछ है जिसे
हल कर लिया गया है
हल कर ली जाने वाली घटनाएँ
विज्ञान है
हल न की जा सकी घटनाएँ
भगवान है

मैं भगवान को
भगवान नहीं
विज्ञान मानता हूँ

हल न हो पाया विज्ञान
भगवान है।

परिचय:

जन्म: 4 अक्टूबर, 1978, लालगंज, बस्ती (उ. प्र.)।

'जवान होते हुए लड़के का कबूलनामा 'काव्य संग्रह (भारतीय ज्ञानपीठ, 2009), दूसरा काव्य संग्रह 'जी हाँ, लिख रहा हूँ.. (राजकमल प्रकाशन, 2012), तीसरा संग्रह 'जीवन हो तुम (सेतु प्रकाशन, 2019)। जीवनानंद दास पर हिंदी में पहली आलोचना पुस्तक 'जीवनानंद दास और आधुनिक हिंदी कविता' (नई किताब, 2013) से प्रकाशित।

कविताओं का अंग्रेजी, उर्दू, बांग्ला, ओड़िया, मराठी, गुजराती सहित कई भारतीय भाषाओं में अनुवाद।

कविता के लिए भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार, नागार्जुन शिखर सम्मान, शब्द साधना युवा सम्मान, नागार्जुन प्रथम कृति सम्मान, मलखान सिंह सिसोदिया पुरस्कार से सम्मानित।

संपर्क : सहायक प्राध्यापक, काज़ी नजरूल विश्वविद्यालय, आसनसोल Mob.9239612662/8250412914

उत्साह

शुभ्र शरद बिखरा धरती पर
 निखर आया आसमान
 बिखरी है हवाओं में
 शेफाली की सुगंध
 पसर गया है यहाँ से वहाँ तक
 घासों का राजा कास
 पितृपक्ष के कौवे विदा लेने से पहले
 कर गए आमंत्रित
 नीलकंठ को
 उतने कहीं बचे नीलकंठ
 जो दिख जाए उड़ते
 यहाँ से वहाँ
 करते स्वागत शरद का
 सब मिलकर जिसमें शामिल है खंजन
 वह भी दिखता यदा-कदा ही
 एक मनुष्य है और उसका उत्साह
 अगर कमी होती उत्साहों में
 तो शरद आये या सावन
 उत्सव का माने ही क्या रहता
 यह उत्साह है जिससे अर्थ है
 वस्तुओं और घटनाओं में
 कम न हो जो कभी
 यह ध्यान रखना ।

...

समय के रंग

वहाँ सूर्य था अपनी किरणों के साथ
 ईमानदारी में सबके लिए थी रोशनी
 पारदर्शिता का स्थाई निवास था वहाँ
 जो भीतर था वह दिखाई पड़ता था बाहर भी

गर्दन उठाने पर जो चाँद नजर आता था
 उसमें दिखता धब्बा चाँद की नियति थी
 मगर इससे क्या
 धरती के लिए वह मधुर और शीतल था
 उस ओर मृगमरीचिका थी
 चमक देखकर ललचाए मन कुलांचे भरता था
 लपकता था हिरण की तरह
 एक ओर अंतहीन दौड़ थी वहाँ दूसरी ओर
 हाथ न आने की निर्मम चालाकी
 देखा गया है
 कि हर मौसम के अपने-अपने फूल होते हैं
 कोई बसंत में रहता है सहज तो कोई बरसात में
 कोई सर्दी में खिलता है निश्चित तो कोई गर्मी में
 कुछ होते हैं जिन्हें ऋतुओं के बदलने से
 खास फर्क नहीं पड़ता वो होते हैं सदाबहार
 सक्षम होते ही चिड़िया का बच्चा
 उड़ जाता है माँ का घोंसला छोड़कर
 ढूँढता है अपनी राह
 उड़ सकने की धुन में
 सहेजता है आत्मविश्वास
 फिर एक दिन आती है आँधी साथ में तबाही
 तो क्या वह सोचता है
 बचपन की सुरक्षा और लौटने के बारे में
 उस समय की बात है
 दुनिया एक थी और जीने की आदतें अनेक
 उन अनेक आदतों ने दुनिया को दिया था वैविध्य
 वैविध्य एक जाल था जिसमें फँसा रहता था मनुष्य
 रहने लगा था व्यस्त और बेचैन ।

...

संपर्क : हिंदी विभाग, उत्तर बंग विश्वविद्यालय, राजा राममोहनपुर, सिलीगुड़ी, जिला - दार्जिलिंग
 मो. : 94344 62850

शिवदयाल की तीन कविताएँ

गिरुंगा तो

आजकल चीजें
संभल नहीं रहीं
छोटी से छोटी चीज भी
अक्सर हाथ से छूट जाती है
पकड़ ढीली पड़ रही है
- यह अहसास डिगा रहा
अबतक बड़ी मुश्किलों
और संघर्षों से अर्जित
अपने पर बना भरोसा
कहीं खुद को
संभाल ना सका तो
गिरुंगा न जाने किन
खाई-खंदकों में
फिर कौन उठाने वाला है मुझ गिरे को
उसी तत्परता से
जैसे कि मैं
झट उठा लेता हूँ
हाथ से छूटकर
जमीन पर गिरी चीजें..
और मेरे गिरने की
आवाज़ भी कहाँ होगी..

...

हंसों के साथ

हंसों के साथ
कुछ देर उड़ लेने से
कौवा हंस नहीं हो जाता

कौवा भी यह बात
अच्छी तरह जानता है
कौवे का होना हंस होना नहीं है
धरती पर होती हैं
कितनी वासनाएँ
कितनी कामनाएँ
कितनी तृष्णाएँ
कौवे को उन सबको चुगना है
कितनी मैल जमा होती रहती है
उनको निपटाना है
जमीन को
हंसों के उतरने लायक बनाना है
बनाने वालों ने बना दिया
यह मुहावरा - 'कौवा चला हंस की
चाल'
लेकिन कौवे की विवशता है
और जिम्मेदारी भी
कि वह शुभ्र धवल हंसों के साथ
उनकी तरह दूर तक,
देर तक नहीं उड़ता रह सकता

...

लौटना

कितनी जगहें मिलीं
छूट गईं
कितने लोग मिले
कौन कब कहाँ
छूट गया...

छाया धूप बदली बरखा हवा
- सब छूटते ही तो गए..

कहाँ हम तक वापस पहुँचीं
वही बूंदें वही घेरे छायाओं के
वही टुकड़ा बादल का
वही नरम-गरम धूप और किरणें
झकोरे हवा के वही
जिन्होंने हमको छुआ था
कहाँ लौटे...

मैत्रियों और मनमुटाव
मान और मनुहार
छूट गए सब
छूट गईं इच्छाएँ और कामनाएँ
जैसे साँसें छूटती हैं

वहाँ, उन तक
हम कभी नहीं लौट पाते वापस
जो छूट गए पथ में
या छोड़ दिए गए!

हाँ, कभी-कभी
लौटती हैं यही-यही चीजें

स्मृतियों में
सुधियों का सांकल खटखटाती
सूखी आँखों की कोरों को नम करती
काठ होंठों पर स्मित जड़ती
लौटती हैं।

...

संपर्क : ए 1/201, आर के विला, महेश नगर, पटना 800024, मो : 9835263930.,

Email : sheodayallekhan@gmail.com

मुक्तीचल अप्रैल-जून 2022

लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव की दो कविताएँ

नई परिभाषा...

शनैः-शनैः संवेदना की पीठ पर
नागफनी उग आएगी
संस्कृति और संस्कार के क्षेत्रफल में
दूब घास का कब्जा हो चुका होगा
जिसे कितना भी नष्ट करना चाहे
वो फिर पनप जाएगी
हम एक नई परिभाषा गढ़ रहे होंगे
जिसमें मानवतावादी दृष्टिकोण को
रेतीले मरुस्थल में घसीट कर
रिश्तों को लहलुहान कर
नई फसल का उत्पादन होगा
जिसमें सिर्फ खुद को
बढ़ने और स्थापित करने
का अचूक नुस्खा लिखा होगा
कविताओं की एक नई विधा जन्म लेगी
जिसमें समर्पण, त्याग और तपस्या की पौध
बौने से नजर आएंगे
तात्कालिक व्यवस्था में
लोकतंत्र की खुशबू महकने की बजाए
कंपकंपाती महसूस होगी
हमारे विचारों की रंगत
काली पड़ चुकी होगी
ज्ञान के सारे केंद्रबिंदु धन लोलुपता से
संक्रमित होकर एक नई परिभाषा गढ़ेंगे
शब्दों का पैनापन शायद कहीं गुम हो चुका होगा..

...

जीवन के रंग अलसाए हैं...

तुम्हारे साथ न होने से

समंदर के गहराई जैसा दर्द का एहसास
सचमुच जीवन कितना है उदास
तुम्हारे होने से आएगी वो संपूर्णता
नीर पीने से जैसे तृप्त होती है प्यास...
तुम्हारे बिन क्यारी के ये फूल भी कैसे मुरझाए हैं
खिलकर भी अपनी महक न बिखेर पाए हैं
तुम्हारे न होने की कसक
हर तरफ जैसे नागफनी उग आए हैं
जीवन के रंग कैसे अलसाए हैं...

तुम्हें कब से पुकार रहा हूँ
शायद मेरे दर्द की आवाज तुम सुन नहीं रही हो
या सुन कर अनसुना कर दे रही हो
क्यों मुझसे अजनबी जैसा बर्ताव कर रही हो
जबकि तुम्हारे बिना मेरा कोई अस्तित्व नहीं है
हमारा प्रेम तुम्हारे बिना नहीं ले सकेगा कोई रूप
तुम्हारे साथ ही खुशियों की होगी धूप...

तुम्हारे न होने से मेरे जीवन में
ऐसी रिक्तता का आभास होता है
जैसे सूरज उगने पर बादल से ओझल हो जाता है
तुम सच में मेरे जीवन का प्रकाश हो
मेरे जीने के लिए खुशनुमा एहसास हो
बादल कितना भी कोशिश कर लें
तुम्हें मेरे जीवन में आना होगा
अपना इंद्रधनुषी प्रकाश फैलाना होगा
हमारे जीवन में अब तुम्हें
संगीत का मधुर स्वर सुनाना होगा
मेरे जीवन में छाई उदासी को मिटाना होगा..

...

सम्पर्क : लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, ग्राम-कैतहा, पोस्ट-भवानीपुर, जिला-बस्ती 272125
(उ. प्र.), मो. : 7355309428

राजकुमार जैन 'राजन' की पाँच कविताएँ

अस्तित्व की तलाश

अनकही ख्वाहिशों और
अनचिह्ने परिवेश के बीच
सन्नाटा, खौफ और आशंकाएँ
रह-रह कर डराती है
निर्वासित, स्तंभित
जकड़ा हुआ
मृगमरीचिका -सा हूँ

शायद
जीवन का कोई गुनाह
साथ लाया हूँ
कि हर दृष्टि भरम ने
छला है मुझको

अपने आप से अनजान
एक छटपटाता अस्तित्व
और असफलताओं की पीड़ा
हर क्षण सालती रहती है
अपने आप को
अंधकार के खोजने की चेष्टा
व्यर्थ और अर्थहीन
गुम हो जाती है

चेहरे पर मायूसी, व्यथा लिए
विचलित इस संसार में
सामने खड़े हो जाते हैं
संवेदनाओं, आशाओं के
अनेक बिंब

अनेक संदर्भ आकर

जुड़ने लगते हैं
और न जाने क्यों
अंदर ही अंदर
कुछ पिघलने लगता है
•••

हौसलों के समंदर

हमारे आस-पास
अपेक्षाओं की बहुत बड़ी भीड़
पगडंडी के दोनों ओर
गंतव्य तक पहुँचने की चाह में
बिछी हुई घटनाएँ
और जीवन के गोदाम में
लगी हुई आग

संवेदनाओं की फसल को
कर दिया खाक
मौन और चुप्पी के धुँए में
जख्मों का शहर हो गए आदमी

एकाकीपन की छाया में
स्वार्थ मुखर हो गए
और
विद्रोह से उपेक्षित भीड़ ने
अपनत्व भरे रिश्तों को
कब का ही बेच डाला

शहर की चकाचौंध
और प्रदूषित हवा
ग्रहण लगाने को उतावली है
ऊँच जिंदगी में

चुभता है काँटा बन
मंदिरों का सन्नाटा

शिखर पाने की चाह में
हिलने लगी फिर
बुनियाद की दरारें
सुरक्षित नहीं है अब उजाले
अपने घर-द्वार के

जर्जर-जर्जर कायनात का
साजिश रचता है हर पल
फिर भी
हौसलों के समंदर हैं जो
होकर बेखौफ खड़े हैं
जो स्ख बदल देते हैं
हवाओं का भी।

मोम बन पिघला दे

अस्ताचल में
जमा हुआ ग्लेशियर
पिघल कर भावों की धारा में
चल पड़ा है
मुझे डर है इस धारा में
कहीं डूब न जाऊँ
किसी अनजान
भंवर में फँस कर
कोई इतिहास न बन जाऊँ
उपेक्षाओं की बहुत बड़ी भीड़
नियति की चाल पर
सक्रिय है

इससे पहले कि
पढ़ी हुई किसी कहानी की तरह
कोई होंठ मुझसे छू जाए
और घटनाक्रम के रेले
दिमाग की नसें फाड़कर
मुझे
खून से सराबोर कर जाए
मैं लिख देना चाहता हूँ
बर्फ का पहाड़, दुनिया के नाम

जो जिंदगी की
गुफाओं में तड़फते
मानव को शांति का संदेश दे
सर्वहारा के अधरों की खामोशी को
नई उमंगों से भर दें
स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ को
मोम बन पिघला दे
ग्लेशियर की तरह!!

...

समर्थन

यह जो मील के पत्थर
महज पाषाण नहीं है
गति है, लय है
हमारे चलने के साथ
जीवन के साक्षी भी बनते हैं

जीवन में कुछ पल
अपने अस्तित्व बोध में
ऐसे भी होते हैं

जिनमें हम
बुद्ध बन जाने को
विवश होते हैं

खामोशियों में ही
मन के सूने गाँव में
शब्दों को अर्थ बदलते देख
दिशाहीन इस जीवन में
विक्षिप्त-सी यह काया
कंधों पर चढ़कर
पहाड़ों को रौंदने का
समर्थन करती रही

मील के पत्थर को साक्षी मान
असहायता से अतृप्त
मुड़ियाँ मुड़ती है अपने आप
ही
भीचने लगती है
आँधियाँ इसी तरह उठती है
और न जाने कितने हिस्सों में
बँट जाता है व्यक्तित्व

आँधियों को मिटने दो
कोई तो दिन होगा
जो हमारी मुट्ठी में होगा
प्रकाश देगा ।

...

**सपनों के सच हो
जाने तक**
कई सपने

बाँध कर रखे हैं
जीवन की कुटिया में
रौशनी की छाँह तले
जिसमें संजो रखा था हौसला
नव उत्कर्ष के लिए

पानी के बुलबुलों-सी
उठती हैं छिटपुट स्मृतियाँ
क्या होगा कविताएँ लिखकर
जिंदगी के अहम सवाल जब
शब्दों में ढलते ही नहीं
अक्षरों की कैद से
अर्थ कतराते हो जहाँ

उठो,
बँधे हुए सपनों को
आजाद हो जाने दो
मौसम को करवट लेने दो
मुरझाये चेहरों पर
सपनों के इंद्रधनुष तराशो
आशाओं का सूरज उग जाने तक

अतीत की वादियों में भटकता हुआ
मौसम बेअसर
और उग आया हों पंख पैरों में
उम्मीदों के शिशु थामे हुए
चलते जाना है...चलते जाना है
सपनों के सच होने तक!

...

सम्पर्क : राजकुमार जैन 'राजन', चित्रा प्रकाशन, अकोला-312205 (चित्तौड़गढ़), राजस्थान,
मो. : 98282 19919, Email : rajkumarjainrajan@gmail.com

यह ज्ञान के विस्तार और संवेदना के संकुचन का समय है। इसलिए इस समय समाज को, खास तौर पर हमारे भारतीय समाज को कविता की बहुत जरूरत है, क्योंकि कविता ही संवेदना का विस्तार कर सकती है। दूसरी तरफ, कविता पूरी दुनिया में गैरजरूरी होती जा रही है, उसके पाठक लगातार कम हो रहे हैं और उसकी भूमिका भी बदलती जा रही है। लेकिन, भारत में, विशेष रूप से हिंदी पट्टी में कविता एक नई भूमिका में खड़ी हो रही है। यह अकेला प्रतिपक्ष है। धर्म के राजनीतिक इस्तेमाल, तेल से बनी सत्ता ने पूरे हिंदी समाज को उन्मादी बना दिया है और कई राज्यों में तो विपक्षी पार्टियाँ लगभग ध्वस्त हो गई हैं। ऐसे में केवल साहित्य, विशेष रूप से कविता, ही है, जो प्रतिरोध के अपने स्वर को निरंतर मजबूत कर रही है। लेकिन, दुख की बात यह है कि समाज पर इसका अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ रहा है। कविता क्या यहाँ तो हमारी भाषा का समाज से वह रिश्ता ही नहीं बन सका है, जो दुनिया के अन्य देशों में ही नहीं, भारत के कुछ प्रांतों में भी है। हिंदी आज भी कुछ जनपदों का समुच्चय है और उसका मूल चरित्र कौमी (राष्ट्रीय) नहीं जनपदीय है। यह अलग से बहस का विषय है। यहाँ बस इतना ही कहना है कि हिंदी भाषी जन का अपनी भाषा से वैसा सघन रिश्ता नहीं है जैसा बंगालियों का बांग्ला से या मराठियों का मराठी से अथवा मलयालियों का मलयालम से है।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जब हिंदी का राष्ट्रवाद और खड़ी बोली का साहित्य, एक साथ विकसित हो रहा था, तो समाज में कविता की एक बनती हुई भूमिका दिखाई दे रही थी, जो भक्ति आंदोलन के दौरान बोलियों में लिखी गई कविताओं से बिल्कुल अलग थी। भक्तिकाल की कविता तो आज भी हमारे समाज में अपनी बची-खुची भूमिका के साथ मौजूद है। उसने अपने प्रसार का रास्ता भी बना रखा है। वर्गभेद या दृष्टिभेद उनमें भी है, कबीर और तुलसी की कविता की भूमिका एक जैसी नहीं है। उन्हें गाने और बाचने वालों का सामाजिक आधार भी एक नहीं है।

फिलहाल उद्देश्य भक्तिकाल की कविता का मूल्यांकन करना नहीं है। लेकिन, मैं इतना जरूर कहना चाहूँगा कि जो लोग यह मानते हैं, सामाजिक बदलाव में कविता की कोई भूमिका नहीं होती, उन्हें हिंदी-पट्टी पर भक्ति काल की कविताओं के प्रभाव का अध्ययन करना चाहिए।

बावजूद इसके यह कहना कि कविता से समाज को बदला जा सकता है अथवा सामाजिक परिवर्तन में इसकी कोई प्रत्यक्ष भूमिका होती है—एक प्रकार का सरलीकरण है। गौरतलब बात यह है कि इस तरह के सरलीकरण का

इस्तेमाल इसके विरोधी ही ज्यादा करते हैं। वे आरोप लगाते हैं और उसे प्रमाणित किए बिना फैसला भी सुना देते हैं। मुझ जैसे लोग तो यह मानते हैं कि कविता की 'परिवर्तन का हथियार' 'जैसी कोई भूमिका नहीं होती, यह बस मनुष्य के 'मन को मांजने' का काम करती है। हालाँकि, वर्तमान समय में, कुछ लोग मनुष्य के मन को और कलुषिल करने और फूहड़ मनोरंजन के माध्यम से वैचारिकता को कुंद करने के लिए भी कविता का इस्तेमाल कर रहे हैं।

भूमंडलीकरण के बाद कुछ ऐसी परिस्थिति बनी कि शुरुआती दौर में शासकवर्ग का सबसे क्रूर हमला आदिवासियों पर हुआ। दलित तो पहले से ही उनके निशाने पर थे। 16 मई, 2014 के बाद, सत्ता की प्राथमिकता बदली और अल्पसंख्यकों को सरकार ने लगभग अपना मुख्य शत्रु घोषित कर दिया। एक तरफ, सत्ताधारी दल से जुड़े कई संगठनों ने आपराधिक गतिविधियाँ तेज कर दी, तो दूसरी तरफ, विपक्षी पार्टियाँ हताशा में डूबकर विखराव के कगार पर पहुँचने लगीं। ऐसे कठिन समय में भी हिंदी के ज़्यादातर कवि-लेखक प्रतिरोध की संस्कृति की रक्षा के अपने संकल्प से पीछे नहीं हटे। और अब तो ऐसा समय आ गया है, जब एक बयान देना भी मुश्किल और जोखिम भरा काम हो गया है, चाहे वह बयान कविता के बारे में ही क्यों न हो। यह तो विदित सत्य है कि 'जैसे-जैसे समय जटिल हो रहा है कविकर्म कठिन' होता जा रहा है; लेकिन, हमारे इस बदले हुए समय में, जबकि सीधी-सच्ची बात सुन-सुनाने का धैर्य खत्म होता जा रहा है, कविता को कई ऐसे वांछित दबावों से गुजरना पड़ रहा है, जिसकी कल्पना भी कुछ साल पहले तक हम नहीं कर सकते थे। कुछ लोग हैं, जिनके पास चार-छह सस्ते नारों से बनी

एक कसौटी है, जिस पर वे संस्कृति, विज्ञान, साहित्य, कला सबको कसना चाहते हैं और जो इस पर खरा नहीं उतरता, उसे तत्काल इतिहास से बाहर कर देना चाहते हैं। ऐसे में कविता की मुश्किलें बढ़ गई हैं। क्योंकि, इसमें सायास कुछ भी नहीं किया जा सकता। हम आपसे डर सकते हैं लेकिन, डरकर कविता नहीं लिख सकते। आप अपने इच्छानुसार और कुछ भी लिखवा सकते हैं, कविता नहीं। यह स्थिति ही कविता की भूमिका को बेहद कठिन बना देती है। यहाँ दमन ही नहीं, प्रलोभन भी काम नहीं करता। कवि चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता, और डरकर तो और भी कुछ नहीं। कोई भी अतिरिक्त या अतिरेकपूर्ण कोशिश की, तो सबसे पहले कविता मर जाती है, फिर कवि के जीने का भी कोई मतलब नहीं रह जाता।

एक बात तो सबको समझ लेनी चाहिए कि कविता किसी सरकार या किसी दल या किसी विचारधारा के विरुद्ध नहीं होती, बल्कि सत्ता के उस वृत्त के विरुद्ध होती है जिसके भीतर सभी सत्ताकांक्षी पार्टियाँ और विचारधाराएँ आपस में टकराती हुई दिखती हैं। कविता किसी दल का नहीं, बल्कि पूरी व्यवस्था का प्रतिपक्ष रचती है। इसीलिए दलों से अलग और ऊपर होती है और उसे दलगत भावनाओं से ऊँचे उठकर ही देखा जाना चाहिए। वह जिस ऊँचाई पर होती है, वहाँ तक पहुँचे बगैर उससे संवाद नहीं किया जा सकता। संकट यह है कि जब साहित्य की आलोचना भी उससे संवाद नहीं कर पा रही है, तो भला सत्ता कैसे उस तक पहुँच सकती है? वैसे सत्ता यदि उसके साथ संवाद कर पाती, तो वह एक अच्छी ही स्थिति होती। इससे सत्ता की संवेदना और कविता की सामाजिकता का विस्तार होता। फिर भी, कविता

अपनी सामाजिकता के विस्तार के लिए कम-से-कम एकतरफा संवाद तो कर ही ले रही है, भले ही सत्ता अपनी संवेदनहीनता से उबरने के लिए कुछ नहीं कर पा रही है। हाँ, करना भी नहीं चाहती है, वह एक हाथ में प्रलोभन और दूसरे में दमन लेकर कभी-कभी कविता के सामने प्रकट होती है।

मैं सत्ता की क्रूरताओं की चर्चा नहीं करूँगा, वह तो हर समय होती है, बस उसका स्वरूप बदलता रहता है। कविता सिर्फ इस बदलाव की शिनाख्त ही नहीं करती, वह हर तरह की क्रूरता और साहस के विरुद्ध होती है। वह ताकत के विरुद्ध एक नई ताकत बनने की कोशिश नहीं करती, बल्कि सह-असितत्व के निर्माण का संघर्ष

करती है। यही से उसकी भूमिका अलग और व्यापाक हो जाती है। वह ताकतवर समूह के विरुद्ध एक अन्य ताकतवर समीकरण बनाने के राजनीतिक और सामाजिक संघर्षों या प्रयत्नों को परखने तक ही सीमित नहीं रहती है, ऐसे लोगों की पहचान भी करती है, जो ताकत के इस खेल में शामिल नहीं हैं और जिन्हें समाज से ही नहीं, समय से भी बाहर कर दिया गया है।

कतार में खड़े सबसे आखिरी आदमी को केवल कविता में पहचाना जा सकता है, सबसे कमजोर आवाज केवल कविता में सुनी जा सकती है। समय के उस अँधेरे को, जो स्वार्थ की चमक ही नहीं, विचारों की रौशनी से भी बाहर है, देखने और जानने के लिए कविता को पढ़ा जाना चाहिए।

क्रूर आवाजे होंगी

चीखने-चिल्लाने की
या बमों- बारूदों की
उन कानफाड़ ध्वनियों में
शब्द किंचित भी नहीं होंगे
संगीत का तो सवाल ही नहीं
यह दुनिया वह दुनिया है
जो अपनी भाषा खो चुकी है!

तब भी बचा रहेगा देश

एक दिन तुम नहीं रहोगे
तब भी बचा रहेगा यह देश
खत्म इसे भला क्या कर पाओगे
खत्म तो तुम खुद हो जाओगे

कैसे मरोगे
दुश्मनों की फौज से घिरने के बाद आत्महत्या
कर लोगे

या प्रतिद्वंद्वी की जेल में आखिरी साँस लोगे
जनता तुम्हें सड़कों पर दौड़ाएगी
अथवा किसी विमान दुर्घटना के बाद
एक टूटे दात से तुम्हें पहचाना जाएगा
नहीं पता
हम तो मरने के बाद भी तुम्हें
बस तुम्हारे चहकते झूठ से ही पहचानेंगे

मैंने तो गुलवर्गा सोसाइटी के जले हुए मकान की
भीतरी दीवार पर दस साल बाद भी बची हुई
कालिख में
तुम्हारा चेहरा देखा था
मेरे लेखे वही तुम्हारा पहला और आखिरी चेहरा है
जो तुम्हारे मरने के बाद भी दिखता रहेगा

कोई नहीं मारेगा फिर भी तुम मर जाओगे
और अपूर्ण रह जाएगी देश को मार देने की
दृष्कामना

सरगम के सुर साधे

बचा रहेगा तब भी यह देश
भले ही थोड़ा आहत
किंचित टूटा-फूटा
कुछ-कुछ लहलुहान और हलकान
लेकिन थमेगी नहीं उसकी साँसें

एक दिन यह जयकारा बंद होगा
थालियाँ, तालियाँ भी शांत हो जाएँगी
सम्मोहन टूटेगा
और खुद को ही घायल करनेवाले लोग
लग जाएँगे वापस देश को बचाने में

किसान खेतों में लौटेंगे
फसलें लहलहाएँगी
विनिर्माण कारखानों में गूँजेंगे मशीनों के संगीत

रात होगी इतना अँधेरा नहीं होगा
दिन होगा इतनी निराशा नहीं होगी
धीरे-धीरे पटरी पर लौटेगा देश
प्रतिहिंसा से मुक्त होकर परंपरा को पहचानेंगे
लोग
और इतिहास के खलनायकों के गहवर में
एक पिंडी तुम्हारे नाम की भी बना देंगे।

परिचय :

जन्म : 29 मई, 1954, बिहार के वैशाली जनपद में।, शिक्षा : बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर से एम.ए. (हिंदी)।, लेखन : कविता, वैचारिक और आलोचना के अलावा, सामाजिक विषयों पर अखबारों में नियमित लेखन। कई स्तंभ चर्चित।

अब तक छह कविता संग्रह प्रकाशित :

1. लेकिन उदास है पृथ्वी, 2. नीम रोशनी में (2000), 3. रुपुद (2006), 4. दूर तक चुप्पी (2014), 5. अपना ही देश (2015), 6. पनसोखा है इंद्रधनुष (2019)।

आलेखों के चार संकलन प्रकाशित : 1. मतभेद (2002) समीक्षा प्रकाशन दिल्ली, 2. लहलुहान लोकतंत्र (2006), प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 3. राष्ट्रवाद का संकट (2014) प्रकाशन संस्थान दिल्ली, 4. लॉकडाउन डायरी (2022) सेतु प्रकाशन दिल्ली से।

कार्यक्षेत्र एवं संपादन : शुरुआत पत्रकारिता से की। फिर कोई 20 वर्षों तक धनबाद तथा पटना के सार्वजनिक उपक्रमों में नौकरी। नवंबर, 2000 में उपप्रबंधक (राजभाषा) पद से इस्तीफा। तब से विभिन्न अखबारों और पत्रिकाओं में सामाजिक-राजनीतिक-सामयिक मसलों पर लगातार लिखते रहें। धनबाद प्रवास के दिनों में मजदूर आंदोलन की चर्चित पत्रिका 'श्रमिक सौलिडैरिटी' के शुरुआती 16 अंकों के सहयोगी संपादक। वहीं से 'अंतर्गत' नाम से एक लघुपत्रिका भी निकाली। समकालीन जनमत, सहयात्री, पुरुष, समकालीन कविता, अभिधा, किरणवार्ता आदि कई पत्रिकाओं के संपादक मंडल अथवा परामर्श मंडल के सदस्य। नौकरी के दौरान कंपनी की गृहपत्रिका का भी संपादन किया।

सम्मान एवं पुरस्कार : कविता में उल्लेखनीय योगदान के लिए कई संस्थाओं से पुरस्कृत और सम्मानित। कुछ चुने हुए सम्मान : 1. नागार्जुन पुरस्कार (2016), 2. केदार सम्मान (2015), 3. शमशेर सम्मान (2009), 4. बनारसीप्रसाद 'भोजपुरी' सम्मान (1994) इत्यादि।

संपर्क : मदन कश्यप, बेटिना-2786, महागुण मॉडर्न, सेक्टर-78, नोएडा-201306,

मो. 9999154822, Email : madankashyap0@gmail.com

मुक्ताचल अप्रैल-जून 2022

भिन्न परिवेश के सचाइयों की दास्तान : अंतिम साक्ष्य

संजय देसाई

प्रस्तावना

चंद्रकांता हिंदी की प्रसिद्ध लेखिका है। उनके द्वारा लिखित अंतिम साक्ष्य उपन्यास का दूसरा संस्करण 2015 में अमन प्रकाशन, कानपुर द्वारा प्रकाशित हुआ। जो लोग विवशताओं को अपनी शक्ति बनाना चाहते हैं, उन्हें यह उपन्यास लेखिका ने समर्पित किया है। चंद्रकांता का यह उपन्यास मात्र स्त्री विमर्श की रचना नहीं बल्कि इसे पारिवारिक विमर्श की रचना मानना अधिक मुनासिब होगा। चंद्रकांता ने अपने लेखन द्वारा जम्मू और कश्मीर के वातावरण को चित्रित किया है। वहाँ के सांस्कृतिक और आँचलिकता के रंगों को उपन्यास में भर दिया है। उनके अधिकतर उपन्यासों में कश्मीरी परिवेश का सफल अंकन हुआ है। वहाँ का जनजीवन, वहाँ की संस्कृति, वहाँ की प्रकृति को उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। लेखिका का बचपन कश्मीर की प्रकृति की छाया में बीता। इसलिए वह अपने-आप को भाग्यशाली मानती हैं। दो साल की नौकरी के बाद लेखिका स्वतंत्र रूप से लेखन कर रही हैं।

भिन्न परिवेश की सचाइयाँ

‘अंतिम साक्ष्य’ उपन्यास जिस प्रकार मीना मौसी की कहानी है, वैसे ही वह बाऊँ जी और बीजी के टूटते परिवार की कहानी है। लेखिका ने यह उपन्यास पूर्व दीप्ति शैली में लिखा है। पूरे उपन्यास में भिन्न-भिन्न परिवेश का चित्रण आया है। चाचा-चाची के घर की सचाई, बुढ़े लाला के घर की सचाई, जगन के घर की सचाई, शीलू के अड्डे की सचाई, संगीत शिक्षा की सचाई, संगीत मास्टर के जीवन की सचाई, मीना और प्रताप सिंह के संबंधों की सचाई, बीजी की मृत्यु के बाद की सचाई, बच्चों की आवारागर्दी की सचाई, प्रताप सिंह की मृत्यु के बाद की सचाई जैसी भिन्न-भिन्न सामाजिक परिवेश की सचाइयों का परिचय ‘अंतिम साक्ष्य’ उपन्यास में मिलता है।

1. चाचा-चाची के घर की सचाई

मीना एक अनाथ लड़की है। वह चाचा-चाची के घर कपड़े धोती, बर्तन मलती और छोटी-छोटी गलतियों पर गालियों और हाथों के कोड़े खाती। पूरी रात आँखों से आँसू निकलते आकाश निहारती रहती। नीले आकाश से आँखमिचौली खेलते हुए सितारों से अपने माँ-बाप को संदेश भेजती है, ‘तुम्हारी मीनू अकेली है माँ! तुम्हारी मीनू रो रही है बापू! तुम मीनू की आवाज नहीं सुनते?’ (पृ.14) इस तरह मीना हमेशा अपने माँ-बाप के साथ भगवान को भी

कोसती रहती है। अनाथ मीना की एक भी बात चाचा-चाची नहीं मानते बल्कि चाचा-चाची जैसा चाहते हैं वैसा ही बर्ताव मीना को करना पड़ता है।

2. बुढ़े लाला के घर की सचाई -

एक दिन चाचा-चाची बारह साल की इस लड़की को पचास साल के विधुर के पल्ले बाँध देते हैं। शादी के बाद यह बुढ़ा आदमी जब मीना का घूँघट उठाता है, तब उसे नन्हीं मीना के चेहरे में उन्हें अपनी नन्हीं पोती का मुखड़ा दिखाई देता है। तब बुढ़े लाला को बहुत गुस्सा आता है। जब मीना इस बुढ़े के आँखों से आँखे मिलाती है, तब मीना के दीपों की लौ भक से जलकर बुझ जाती है। शादी के बाद कई रात लाला ऊँहापोह में रहता है। अब लाला का तीसरा बेटा भी नर्स भीगने के साथ ही जिस्म का मोल समझने लगा था। लाला अपने जवान बेटों की बुरी नजर से भयभीत था। इसलिए लाला उम्र-भर की पूरी जमा पूँजी चाची को देकर मीना को वापिस घर लौटाता है। मीना और बुढ़े लाला के अनमेल विवाह की सचाई उपन्यास में सफलतापूर्वक चित्रित है।

3. जगन के घर की सचाई

छह-आठ महीने बाद चाची के प्रयास को सफलता मिली। चाची मीना के लिए जगन नामक दूसरा दुल्हा ढूँढ़ लाई। इस बात की खबर मीना को लगते ही उसने चाची के पैर पकड़ लिए और कहने लगी, "मुझे पड़ी रहने दो घर में चाची! सब काम करूँगी। खाना पकाऊँगी, कपड़े धोऊँगी, रात को तुम्हारे पाँव दाबूँगी। 'तब चाची कहती है, 'हट पगली! अब अपने घर खाना बनाना। कोई लड़की कभी हमेशा अपने माँ-बाप के घर रही है? तेरी किस्मत अच्छी थी कि जगन ब्याह के लिए राजी हो गया। नहीं तो एक बार जो

मंडप चढ़ी उसका हाथ कौन थामता है?' (पृ.16) मीना ने जब जगन को देखा तब उसे वह यमदूत जैसा ही दिख रहा था। शादी के बाद उसका 'अपना घर' जो बन गया था। जगन उसका 'अपना आदमी' था, अपना पति जो उसके तन-मन का संपूर्ण रूप से हकदार था। जगन मीना को सोने का अंडा देनेवाली मुर्गी समझ रहा था। शादी के एक वर्ष बीतते ही जगन ने अपनी योजनाओं को कार्यरूप देना चाहा। जगन ने मीना को तवायफों का अड्डा चलाने वाली औरत को बेच दिया। वर्तमान युग में भी जगन जैसे लोगों से आज की नारी किस तरह शोषित है? यह लेखिका ने बताया है।

4. शीलू के अड्डे की सचाई

एक दिन जगन पार्टी के बहाने मीना को लेकर मदनसिंह के घर जाता है। वहाँ से मीना, जगन और मदन सिंह टैक्सी में बैठकर शीलू के अड्डेपर जाते हैं। वहाँ मदन सिंह और जगन अभी आते हैं, कहकर मीना को वहीं पर छोड़ गए जो दुबारा वापिस नहीं आयी। वहाँ के सजे-धजे कमरे, जालीदार पर्दे और वहाँ लटकते झाड़-फानूसों को वह अचंभित होकर देखती रही। दुल्हन सी सजे कमरों में एक अधेड़ महिला ने मीना का स्वागत किया। वह महिला सिर से लेकर बाल तक उसे निहारती रही। तब मीना ने महिला से मदन सिंह के बारे में पूछा। महिला ने कहा, 'आएगा, आएगा। तुम आराम से बैठो। इसे अपना ही घर समझो। यहाँ बहुत सखी-सहेलियाँ मिल जाएगी। मन लगा रहेगा।' (पृ.19) तभी कमरे की काँच वाली खिड़की से दो-चार लोग मीना को झाँक रहे थे। भदे हावभाव के साथ इशारे कर रहे थे, कुहनियाँ मार-मारकर कनबतियाँ कर रहे थे। मीना ने आखिर साहस बटोरकर महिला से कहा, 'मौसी! मैं घर जाना चाहती हूँ।' घर शब्द के

साथ उसे अपना झोपड़ीनुमा कमरा याद आ गया था। छोटी-सी रसोई, छोटे-छोटे बर्तन, कढ़ाई, चदर, अपना पति जगन याद आया। मीना ने घर जाने की जिद पकड़ ली। तब अड्डे की मालकिन ने कहा, 'बिट्टो! यहाँ जो एक बार आता है? वापस नहीं जाता। इस घर के दरवाजों के सिवा अब सभी दरवाजे तुम्हारे लिए बंद हो गए। तुम्हें मदन दलाल ने नहीं बताया?' (पृ.19) यह बातें सुनकर मानो उसका रक्त प्रवाह रुक गया। उस दिन पहली बार मीना को अपने आप से नफरत हो गई थी। इस तरह शीलू के अड्डे का परिवेश लेखिका ने स्पष्ट रूप से चित्रित किया है।

5. संगीत शिक्षा की सचाई

तवायफ अड्डे की मालकिन मीना के मासूम चेहरे पर तरस खा गई। उन्होंने मीना को धंधे में लगाने से पहले संगीत सीखने के लिए इजाजत दी। मीना को संगीत मास्टर के हवाले कर दिया और गाना सिखाने का आदेश दिया। एक-दो प्रकार की गजलों से ही संगीत मास्टर मीना की आवाज पहचान गए। एक दिन बाई के विश्वासपात्र मास्टर जी अपने मालकिन की अनुपस्थिति में मीना को लेकर शहर से बाहर चले गए। मीना भी बिना मुड़कर देखे मास्टर जी के साथ चली गई। संगीत मास्टर मानो अपने आजतक के दुष्कर्मों का प्रायश्चित्त करने के लिए मीना की सहायता कर रहे थे। साल भर में मीना को जितना सिखाया जा सकता था, उन्होंने सिखाया। वह भी दिन-रात मन लगाकर रियाज करती रही, मास्टर जी के प्रयासों को और अपने श्रम को सार्थक बनाने का काम कर रही थी। संगीत सिखते समय मीना अपने समस्त दुःखों को भूलकर अलौकिक आनंद उठा रही थी। इस प्रकार संगीत शिक्षा की सचाई लेखिका ने अपने उपन्यास में चित्रित की है।

6. संगीत मास्टर के जीवन की सचाई

संगीत मास्टर एक सामान्य आदमी है। वह अपने छोटे से घर में पत्नी और दो बच्चों के साथ रहता है। मास्टर का पूरा परिवार काफी बुरी हालात में अपना जीवन-यापन कर रहा था। परिवार के सभी सदस्य हप्ते भर मात्र एक वक्त का खाना खाकर अपनी साँसों को बरकरार रखने का प्रयास कर रहे थे। मास्टर जी संगीत की उपाधि लेकर नौकरी के लिए दर-दर भटकते रहे। काम की तलाश में उनका तन और मन टूटा था। तभी उनको अड्डे की मालकिन के साथ अपनी कला का सौदा करना पड़ा। सौदा नहीं करते तो परिवार के सदस्य भूखे मर जाते। अड्डे की तवायफों को कुछ चटपटा सिखाने के लिए उन्हें नियुक्त किया था। परिवार के अस्तित्व का प्रश्न और बाई के पास धन की कमी नहीं थी, इसलिए न चाहते हुए भी मास्टर जी को नौकरी के लिए समझौता करना पड़ा। इस प्रकार लेखिका ने गरीब परिवार की कठिनाइयों का वास्तविक चित्रण अपनी रचना में किया है।

7. मीना और प्रताप सिंह के संबंधों की सचाई-

मीना अपनी सहेली कैलाश के माध्यम से प्रताप सिंह से जुड़ गई और उसके बाद तो जुड़ने और जुड़कर टूटने में उसके साथ और लोग भी शामिल हो गए। मीना पहली बार सुरेश की मँगनी पर प्रताप सिंह के घर आई थी। वह इस समारोह में गजल गा रही थी और प्रताप सिंह संगीत के रसिया आदमी थे। बीजी और बाऊँ जी का सुखी परिवार था। घर-गृहस्थी के सारे सुख परिवार के सभी सदस्यों को प्राप्त हो रहे थे। बाऊँ जी मीना के संपर्क में आते ही, दोनों में अनैतिक प्रेम संबंध स्थापित होता है। प्रताप सिंह के दिल का कोई खाली कोना फोड़े की तरह उन्हें दुःख देने लगता है। इस बात का

पता बीजी को होते ही वह मीना को सर्पिणी कहकर संबोधित करती है। जिसका जहर उसने उसके पति पर उकेरा था। इस घटना से बीजी जीते जी मर जाती है। अपने में होनेवाली कमी को तलाशते-तलाशते हमेशा के लिए उनकी आँखें बंद हो जाती हैं। मीना के कारण ही उनका सुखी दाम्पत्य जीवन, दुःख में तब्दील हो जाता है। पति का मीना के प्रति आकर्षण पत्नी को कमजोर बनाता है। इस प्रकार विवाह बाह्य संबंधों के कारण से भी परिवार टूटकर काँच के समान बिखर जाता है। आज भी समाज में ऐसे सुखी परिवार किसी तीसरे के आगमन से टूटते-बिखरते दिखाई दे रहे हैं। यह सचाई चंद्रकांता ने इस उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत की है।

8. बीजी की मृत्यु के बाद की सचाई

जैसे ही बीजी को पति के अनैतिक संबंधों का पता चलता है, वैसे ही उन्होंने बिस्तर पकड़ा। मामूली सा बुखार तपेदिक का रूप धारण कर गया। उसकी भूख मरती गई और शायद जीने की इच्छा भी। बीजी की मृत्यु से घर की एक ईंट क्या खिसक गई, पूरा घर ही ढहने लगा था। उसकी मृत्यु से केवल माँ की जगह खाली नहीं हुई, बल्कि घर की आत्मा भी घर छोड़कर चली गई थी। सभी नाते-रिश्तेदार अफसोस जताकर अपने-अपने घर चले गए। तब बाँऊ जी पैरों में चप्पलें डालकर मीना मौसी को बुलाने चले गए। मीना मौसी घर तो आ गई लेकिन बीजी न बन सकी। बीजी की मृत्यु के बाद बाँऊ जी का घर जो टूट गया, सो अंत तक जुड़ न पाया। समाज की यह सचाई लेखिका ने उपन्यास में प्रस्तुत की है।

9. बच्चों की आवारागर्दी की सचाई

बीजी की मृत्यु के बाद दोनों बच्चों ने हद कर दी। बड़ा बेटा सुरेश आवारागर्दी में अपना

समय काटने लगा। छोटा बेटा विक्की बिना खाए-पिए दोस्तों के यहाँ पड़ा रहता। माँ की मृत्यु के बाद बाँऊ जी के दफ्तर जाते ही वह घर में यार-दोस्तों की महफिलें जमाता। उसके स्वभाव में बेअदब, लापरवाही आ रही थी। वह जान-बूझकर घर में हंगामा खड़ा कर रहा था। प्रोफेसर गुप्ता ने सुरेश के आवारागर्दी की खबर बाँऊ जी को दी, तब वह अपने दो दोस्तों के साथ रामपुरी चाकू लेकर गुप्ता सर पर धावा बोल देता है। एक दिन वह घर छोड़कर दीवान साहब की बेटी को लेकर लापता हुआ। आवारागर्दी करने वाले सुरेश से बाँऊ जी को अधिक उम्मीदें नहीं थी; पर विक्की के घर छोड़ने पर उन्हें काफी धक्का लगा था।

10. प्रताप सिंह की मृत्यु के बाद की सचाई

सुरेश को फौज में भर्ती हुए छह महीने भी नहीं हुए थे कि बाँऊ जी की सड़क-दुर्घटना का तार मिल गया। वे तीन दिन मृत्यु से लड़ते रहे। फिर भी सुरेश घर नहीं आया। बाँऊ जी के क्षत-विक्षत शरीर को देखकर वह भी अपने-आप को संभाल न पाया। पिताजी के जाने के बाद घर की स्मृतियाँ विक्की को पीछे खींचती रही, पर विक्की तो आगे बढ़ना चाहता था। नई जिंदगी जीने के लिए विगत की घटनाओं से कटना चाहता था। इसलिए मीना मौसी उसका हाथ पकड़कर उसे आगे बढ़ाती है। तब वह भी पीछे मुड़कर नहीं देखती, क्योंकि वह जानती द्वध-कटना, जुड़ना, जख्मी होना सभी अनिवार्य है, जीने के लिए। जीवन की यह वास्तविकता चंद्रकांता ने 'अंतिम साक्ष्य' उपन्यास में चित्रित की है।

निष्कर्ष :

'अंतिम साक्ष्य' चंद्रकांता का प्रारंभिक उपन्यास है। यह उपन्यास पारिवारिक विघटन

और नारी द्वारा अपने अस्तित्व को बनाए रखने की कोशिश करनेवाले पात्रों की कहानी है। इस उपन्यास के पात्र टूटते हैं, बिखरते हैं और बड़ी उम्मीद से फिर से खड़े होने का प्रयास करते हैं। लेखिका ने इस उपन्यास में रिश्तों और प्रेम संबंधों को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास यानी मीना मौसी की त्रासदी की कहानी है। इस उपन्यास में नारी के दर्दनाक जीवन को चित्रित किया है। यह उपन्यास भिन्न पारिवारिक परिवेश की सचाईयों से परिचित कराता है। पारिवारिक परिवेश की गहरी पकड़ चंद्रकांता के उपन्यासों की महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जाती है। जो उन्हें समकालीन कथालेखन में अपनी एक अलग पहचान देती है। कश्मीर का प्राकृतिक वर्णन इस उपन्यास की कथावस्तु को सजीव

बनाता है। पारिवारिक विघटन की बात को लेखिका ने उद्देश्य तत्व के रूप में प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास नारी की दर्दभरी व्यथा को चित्रित करता है। चंद्रकांता का यह उपन्यास विभिन्न परिवेश की सचाईयों को चित्रित करने में सफल रहा है।

आधार ग्रंथ-

1. चंद्रकांता, अंतिम साक्ष्य, अमन प्रकाशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण-2015

संदर्भ ग्रंथ-

1. डॉ. ममता रावत, 'चंद्रकांता सम्पूर्ण साहित्य का अनुशीलन, विनय प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण-2021

2. सं. संतोष गोयल 'चंद्रकांता का सृजन संसार, अमन प्रकाशन, कानपुर. प्रथम संस्करण-2018

पुस्तक का नाम : अंतिम साक्ष्य, लेखक : चंद्रकांता
प्रकाशक : अमन प्रकाशन, कानपुर मूल्य : 55/-
दूसरा संस्करण : 2015

संपर्क : संजय देसाई, सहायक प्राध्यापक, कर्मवीर हिरे महाविद्यालय, गारगोटी, जिला-कोल्हापुर (महाराष्ट्र), Mob. : 9421287284, Email : sanjaydesai38@gmail.com

मधुपुर आबाद रहे गीता दूबे का सद्य प्रकाशित काव्य संग्रह है। जिसमें कुल 53 कविताएँ हैं। अपने समय से वार्तालाप करती हुई इन कविताओं को प्रेम के महीन डोर से बुना गया है। लेकिन, यह प्रेम नितांत भावनाओं में बह जाने वाला कोई कोरा प्रेम नहीं है, बल्कि यह प्रेम शक्ति का ही प्रतिरूप है जो विनाश में भी नए का सृजन करने का सामर्थ्य रखता है। अपने समय की पड़ताल करती हुई इन कविताओं में कवयित्री का मन बरबस चाहता है कि अपनी तमाम विद्रूपताओं के बावजूद प्रेम के पावन रंग से सब कुछ यथासाध्य ठीक हो जाए। वर्तमान विसंगतियाँ इन कविताओं में बार-बार घूम फिरकर आई हैं और तमाम नकारात्मकताओं के बावजूद एक स्वस्थ रागात्मक कलेवर से प्रकृति, मानव और समाज के अंतर्संबंध को बनाए रखना चाहती हैं। इस कविता संग्रह में प्रेम शब्द बार-बार ध्वनित हुआ है, जैसे तमाम विसंगतियों के बीच संगति का सूत्रधार प्रेम ही है। कवयित्री के लिए प्रेम जैसे अपराजेय शक्ति का प्रतीक है, जैसे कोई हथियार है, परंतु निर्मल, कोमल हथियार जो अपनी निर्मलता से, कोमलता से तमाम वैमनस्यताओं का खात्मा कर शांति और सौहार्द को स्थापित करे। इस काव्य संग्रह की अधिकांश कविताओं में स्त्री पीड़ा के दर्द को मुखर किया गया है। स्त्री पीड़ा का यूँ मुखर होना अनायास भी नहीं है।

पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को कभी स्वतंत्र होने ही नहीं दिया। वह अलग अलग माध्यमों से स्त्री पर अपना शिकंजा कसे हुए है। इस शिकंजे के दर्द को एक स्त्री से ज्यादा भला और कौन महसूस कर सकता है। इस संग्रह की पहली कविता 'स्त्री होना' में स्त्री के इसी दर्द को बयाँ किया गया है। 'चिक्किया' कविता में कवयित्री प्रश्न पूछती है कि लड़कियाँ आखिर इंसान क्यों नहीं हो सकती। 'महिला दिवस पर बेटी के लिए' कविता में तमाम दकियानूसी बातों को दरकिनार कर आजादी के वास्तविक मर्म को समझाने की कोशिश की गई है। 'देवी', मुझे चांद नहीं चाहिए' कविता में स्त्री शक्ति को रूपायित किया गया है। 'विवाह कुक दृश्य', 'सिंदूर', 'मुक्ति कहाँ है' कविता में पितृसत्ता को आड़े हाथों लिया गया है। 'इश्तिहार' कविता में पुरुष की बेवफाई के बाद भी स्त्री को खुद को रचने की, डटकर फिर से मैदान में खड़े होने की बात कही गई है। 'कन्या भ्रूण की प्रार्थना' कविता में पितृसत्तात्मकता की पोल खोली गई है जो गर्भ में ही स्त्री की हत्या कर देता है। 'राज' कविता में विज्ञापन दुनिया पर भी कवयित्री ने निशाना साधा है जो स्त्रियों को फेयरनेस क्रीम के मायाजाल में फँसाकर न जाने कितनी स्त्रियों को बाहरी सौंदर्य की चमक-दमक में भुलाये रखना चाहता है। 'रंग' कविता में भी स्त्री ही है जो बेरंग और बदरंग होती

दुनिया को अपने प्रेम और समर्पण से रंग देना चाहती है। इस तरह इन कविताओं में स्त्री के विविध रूपों को रूपायित किया गया है। इन कविताओं में स्त्री शक्ति का प्रतीक है, और इस शक्ति के रूप में वह विध्वंस नहीं, वरन् सृजन ही करना चाहती है। हिंसा के बदले हिंसा नहीं, समर्पण और प्रेम ही देना चाहती है।

कोरोना महामारी की भयावहता को भी इस संग्रह में उभार दिया गया है। 'घरबंदी 1, 2, 3, 4' कविताओं में महामारी के विकराल रूप का यथार्थ आकलन हुआ है। एक वर्ग ऐसा है जो घरबंदी होकर समय नहीं काट पा रहा है तो दूसरे वर्ग के सम्मुख भूख से निपटने की समस्या है। दिहाड़ी मजदूरों की पीड़ा की अभिव्यक्ति भी इन कविताओं में हुई है। 'शांतिनिकेतन' कविता के माध्यम से कविगुरु को याद किया गया है तो 'सोनझुरी', 'सौंदर्य' कविता में प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य को प्रस्तुत किया गया है तो 'साजिश' कविता में कवियित्री ने सवाल उठाया है कि बुद्ध जो आजीवन मूर्तिपूजा के खिलाफ रहे, किसकी साजिश से जनता बुद्ध की पूजा करने लगी। वास्तव में यह एक साजिश है कि जनता कर्मकांड में उलझी रहे। 'खत' कविता में खत की महत्ता को दर्शाया गया है और यह दुख भी व्यक्त हुआ है कि नई-नई तकनीकियों से खत लिखना भी प्रभावित हुआ है और मैसेज खत की जगह कभी ले नहीं सकता। इसी प्रकार बाजार, न्याय, गीत, रुका हुआ समय, गौरैया उदास है, ऐसा क्यों होता है, नया इतिहास, दुख, प्रतिकार, फासला, कोहरा, काश, शमां मुक्ति कहाँ है, दीवार, थकान, प्रेम, आदि तमाम कविताओं में वर्तमान समय की विसंगतियों को समेटने की कोशिश है। न्याय

और गीत कविता में सत्ता और कानून व्यवस्था पर प्रहार किया गया है। बेबस लाचार जनता को न तो सही ढंग से न्याय मिल पाता है और न ही इनके जीवन स्तर में सुधार की बात सोची जाती है। सत्ता अपने नशे में चूर है जिसे जनसामान्य के हालात नजर नहीं आते। अस्मिता को दागदार किया जा रहा है परंतु कहीं कोई सुनवाई नहीं होती। गौरैया उदास है कविता में बेहद मार्मिक ढंग से गौरैया के दुख का आकलन हुआ कि वस्तुतः बदल रहे सामाजिक परिवेश और मनुष्य के लालच और तकनीकी विकास की होड़ में नहीं गौरैया के लिए भी कोई छोटी सी जगह नहीं बची है। इसी तरह अन्यान्य कविताओं में भी कवियित्री ने अपने समय और समाज को जस का तस रेखांकित करने का प्रयास किया है। दूसरी ओर इन कविताओं में रिश्तों की मिठास भी देखी जा सकती है। चंद्रा मैडम के साठवें जन्मदिवस पर कविता में कवियित्री ने सबकी चहेती चंद्रा मैडम को याद किया है तो सुकीर्ति दी की मृत्यु पर कविता में सुकीर्ति दी को श्रद्धांजलि अर्पित की है। इस तरह इन कविताओं में समय की कड़वाहट और रिश्तों की मिठास दोनों बनी हुई है। अंततः मधुपुर कविता में मधुपुर की अद्भुत सुंदरता का वर्णन है, परंतु मधुपुर की इस सुंदरता की एक बड़ी वजह मधुपुर में निहित प्रेम ही है और प्रेम भी किसका, स्वयं राधा और कृष्ण का। राधा और कृष्ण के प्रेम ने ही मधुपुर को मधुपुर बना दिया है। प्रेम की कसक, प्रेम की महक आज भी मधुपुर में व्याप्त है जिसने मधुपुर को आबाद बना रखा है तो क्यों न इस प्रेम से जीवन का हर कोना महक उठे, जीवन का हर हिस्सा आबाद हो उठे।

पुस्तक का नाम : मधुपुर आबाद रहे, लेखक : गीता दूबे

प्रकाशक : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, मूल्य : 175/-

संस्करण : 2022, समीक्षक : प्रियंका शाह

संपर्क : मकान नं. 742, नूतन ग्राम, रिसड़ा (हुगली), मो. : 7044629171

मुक्ताचल अप्रैल-जून 2022

चार तह लगे कागज के टुकड़े पर बना नक्शा
 बित्ते भर कपड़े पर स्वतंत्र है ।
 नन्हें-नन्हें उजाले कण में
 देश भर छाए तारे,
 छलछल भावना में
 जलजल अपनी हर आस्था में
 कहीं कोई अनुगूँज
 सुनाई पड़ती पूरे देश में ।

पूरे देश के हर घर के आगे
 हर मंदिर, मस्जिद व गिरजा के सामने
 हर विश्वास के आगे
 हर साँस के आगे
 हर आश्वासन के सम्मुख
 हर उच्छ्वास के आगे
 हर प्रेम, प्रीति, प्रतीति, प्रेरणा, प्रोत्साह, उत्साह
 और अनगिनत जीवन-गणित के सामने
 कब कोई खड़ा करता पीड़ा, टीस और कसक ।
 कब कोई बोता बारूद के शब्द,
 और खून की पंखुड़ियाँ ।

चिकिया कभी नहीं मानती सीमा-सरहद,
 यहाँ नदी नहीं मानती कोई भी नक्शा ।
 हर एक संघात में
 कोई अपना लेता बारूद को,
 असहज शब्दपुंज को
 उसकी कोमल, मुलायम अंजलि में
 उसके अपने आँचल में,
 अब आँचल फूल और
 प्यार की तितिलियों से भरा है ।

मिट्टी से उगती है शहत की फसल
 पत्थर से झाग
 नदी की नीरवता
 बैंगनी ऋतु की तंद्रा
 कभी छलक पड़ती मुँड़े पर बैठे
 कौवे-कोयल, मोर और गौरैया के सामने .

इतिहास हाथ जोड़े खड़ा है,
 किसी एक पार्वण में
 मर्दल या वंशी की धुन में
 अल्पना या उदार नृत्य में
 गड़रिया या गिरजे का ईश्वर
 इतिहास के नाम पर
 लिखता विश्वास की शीलालिपि !

बहुत सी बाढ़ें बह चुकीं
 बहुत से तूफ़ाँ बेइज्जत हो चुके,
 बहुत सारे चौराहों से
 हटा दिया गया सोने का यह देश ।
 अस्त्र से आहार
 शस्त्र से शिष्टाचार
 विभीषिका से भय
 पराजय से जय
 कौन-से अभिमंत्रित जल से
 मनुष्य बन बैठा ईश्वर ।

नन्हें-नन्हें कलियाँ
 और अनगिनत फूलों का माली
 नारी है ईश्वरी

चाँद पर घर बनाने वाली
परियाँ कभी-कभी समुद्री रेत पर
कभी मंदिर की दीवार में
कभी कबूतर या कपोत बन
किले के अंदर
बादल और हरीभरी पत्तियों से
ढके आसमान को भूले
खुद स्थापत्य बनती ।

कभी किसी नसहे हाथ की
अद्भुत कारीगरी में
टिमटिमाते तारों की भाँति
महीन वस्त्र पर
कभी श्लोक बने, मंत्रोचार में
कभी-कभार शरीर धारण करती ।

सरहद पर खून बहता
अश्रु-शोण एक हो जाता
पहाड़ की ऊँबड़-खाबड़ देह को

आगे किए,
कुछ समय तक कोई क्रूर शासक
भले ही लाल सलाम ले लेता,
पर वक्त के साथ
फौरन ही कोई नंगा फकीर
हाथ में लाठी थामे
शांति का, सहावस्थान का
मंत्र पढ़ता ।

जो लोग शहीद बनते
उनकी पवित्र आत्मा
रात के सन्नाटे में
भटकती फिरती सरहद पर ।
और हर जुल्म ढाए हाथ को
जकड़कर कहती
लाखों युग तक
अखंड हमारा यह देश
ऐसे ही बरकरार रहेगा ।
●●●

संपर्क : विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, डी. के. एन. कॉलेज, एरंच, कटक, ओड़िशा,
मो. : 9861508846

सारांश

वर्तमान युग में शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र है जो कि न्यू मीडिया की पहुँच से दूर है। आजकल न्यू मीडिया तेजी से बढ़ता जा रहा है और जब से इंटरनेट क्रांति में रिलायंस जिओ जैसी कंपनियों ने कदम रखा है तब से सब कुछ डिजिटल होने लगा है और अब मोबाइल, टीवी और घड़ी भी स्मार्ट होने लगे हैं। इन सब में मोबाइल फोन एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में उपयोगी साबित हुआ है, इससे चलते-फिरते बिना किसी समय और स्थान की बाधा के समाचार, सूचनाएँ लेख इत्यादि आसानी से देख, पढ़, सुन सकते हैं। इसके अलावा मुख्य रूप से न्यू मीडिया सभी आम और खास के लिए सूचनाओं के प्रकाशन, प्रसारण और प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण उपयोगी साबित हुआ है। न्यू मीडिया के बढ़ते प्रचलन के आगे पारंपरिक मीडिया प्रतिस्पर्धा में काफी पिछड़ गया है। न्यू मीडिया ने हमें वो सब कुछ दिया है जो हम जानना और खोजना चाह रहे हैं। एक पल में हमारी मतलब और सूचि की सूचनाएँ त्वरित गति से हमें मिल जाती है। इसने तमाम दूरियाँ, समय और स्पेस की बाधाओं को खत्म कर दिया है। न्यू मीडिया में प्रत्येक यूजर पाठक है, लेखक है प्रकाशक है और यह सब मोबाइल फोन ने बहुत आसान कर दिया है। न्यू मीडिया वर्तमान की जरूरत और आवश्यकता है। पुरानी कहावत है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है लेकिन इस डिजिटल युग में आविष्कार ही आवश्यकता बनती जा रही है। ब्रांडेड मीडिया संस्थान जो अपने व्यापार को तेजी से बढ़ाना चाह रहे हैं उनको पता है कि एक मोबाइल डिवाइस आज हरेक आदमी के पास है और वो किस तरह से अपने डिजिटल संस्करण के बारे में ग्राहक को उसका उपयोग करना सिखा रहे हैं यह किसी से अछूता नहीं है। हालाँकि इस नए तरह के मीडिया के नफे-नुकसान दोनों हो सकते हैं, फिर भी इसकी उपयोगिता और भविष्य को नकारा नहीं जा सकता। आने वाले समय में न्यू मीडिया कैसा होगा और इसकी किस हद तक उपयोगिता बढ़ जाएगी इसकी कल्पना करना भी मुश्किल है।

प्रस्तावना

न्यू मीडिया एक तरह से डिजिटल सामग्री है, जिसे इंटरनेट द्वारा प्रसारित किया जाता है। न्यू मीडिया एक ऐसा मीडिया है जिसने चित्रों, ऑडियो, वीडियो, बोले गए और लिखित शब्दों आदि को कंप्यूटर व अन्य उपकरणों के माध्यम से विशेषकर इंटरनेट से जोड़ दिया है। न्यू मीडिया एक तरह से पारंपरिक मीडिया का ताजा चरण है जो कि एक ऐतिहासिक विकास

क्रम के चरण का ही परिणाम है। पिछले दशक से न्यू मीडिया संवाद, सूचना और नेटवर्किंग के एक शक्तिशाली प्लेटफॉर्म के रूप में उभरा है। आम-जन के अलावा अलग-अलग क्षेत्रों की हस्तियों, संस्थाओं और समूहों ने ब्लॉग, पॉडकास्ट, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, यूट्यूब, व्हाट्सअप, स्नेपचैट आदि प्लेटफॉर्म को अपनी अभिव्यक्ति और संवाद का माध्यम बनाया है। इसने उन ग्रामीण समुदायों को भी अभिव्यक्ति का अवसर दिया है जिनकी आवाज महत्वपूर्ण मीडिया संस्थान में कम सुनाई देती थी। इन नए तरह के डिजिटल माध्यमों के कारण आम लोगों के लिए सरकार और प्रशासन की जवाबदेही सुनिश्चित करना संभव हुआ है। दूसरी ओर, इन डिजिटल माध्यमों के कारण प्रशासन भी आम आदमी की आवाज के प्रति अधिक संवेदनशील हुए हैं। कम लागत और कम साधनों में समाचार पोर्टल, वेब पत्रिकाएँ, अखबारों, न्यूज चैनलों और मीडिया संगठनों की वेबसाइट ऑनलाइन संस्करण और यूट्यूब चैनल आदि तेजी से अपनी जगह बना रहे हैं। आने वाले समय में हमें मीडिया के अन्य नाम वह प्लेटफॉर्म के दर्शन हो सकते हैं जैसे फेसबुक मीडिया, ट्विटर मीडिया, यूट्यूब मीडिया, टेलीग्राम मीडिया, व्हाट्सअप मीडिया, इंस्टाग्राम मीडिया आदि।

न्यू मीडिया और अवसर

न्यू मीडिया ने इंटरनेट के जरिए न सिर्फ कारोबारी बिरादरी को नहीं बल्कि पूरी दुनिया के बीच संचार को गति प्रदान की है। हर तबके के लोगों को वेबसाइट, ब्लॉग, चैट आदि के जरिए खुद को अभिव्यक्त करने का अवसर भी प्रदान किया है। न्यू मीडिया में आसानी से सूचना या कई तरह के कंटेंट बनाए, देखे, वितरित, संशोधित, सुने और संरक्षित किए जा सकते हैं। न्यू मीडिया

में इमेज, वीडियो, वेब पेज, डिजिटल याटा, डिजिटल ऑडियो, डिजिटल दस्तावेज और डिजिटल किताबें शामिल हैं। न्यू मीडिया प्रिंट मीडिया जैसे मुद्रित किताबें, समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, फोटोग्राफ, ऑडियो टेप, वीडियो टेप आदि का अपडेट व रूपांतरण है। न्यू मीडिया 21वीं सदी का मीडिया है। इस मीडिया ने अब तक के चले आ रहे तमाम पुराने तौर-तरीकों को पूरी तरह से बदल दिया है। आज हम पूरी तरह से इस नए तरह के न्यू मीडिया में घुल मिल गए हैं। यह मीडिया हमारे जीवन को पूरी तरह प्रभावित कर रहा है। आज हम इसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। आज यह मीडिया सूचना, शिक्षा, मनोरंजन, विज्ञान, पत्रकारिता एवं निजी और महत्वपूर्ण सरकारी संस्थान क्षेत्रों में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रहा है। न्यू मीडिया में हर व्यक्ति जिसके पास कंप्यूटर या मोबाइल फोन है वह प्रकाशक हो सकता है, लेखक हो सकता है, और प्रसारणकर्ता भी। आज न्यू मीडिया के जरिए एक देश दुनिया के सभी देशों से जुड़ा हुआ है। आज हर व्यक्ति जो ऑनलाइन है अपनी स्रष्टा की सूचनाएँ इस माध्यम से आसानी से प्राप्त कर लेता है। न्यू मीडिया ने रिपोर्टर और संपादक की परंपरागत भूमिकाओं में भी कई तरह से बदलाव किये हैं और यहाँ कोई डेडलाइन नहीं है। सूचनाएँ हर पल नए कलेवर और अपडेट के साथ साझा होती रहती हैं। आजकल सभी बाजारों में तकनीकी वस्तुओं की भरमार है। तकनीकी इतनी सस्ती हो रही है कि हर कोई इसको आसानी से अपना लेगा है। शहर के कारोबारी से लेकर गाँव के किसान तक तकनीकी वस्तुओं का उपयोग कर रहे हैं। जिससे न्यू मीडिया को लगातार बढ़ावा मिल रहा है मीडिया के अन्य माध्यमों की तरह इसे किसी स्थान विशेष की

बंदिश में बाँधा नहीं जा सकता। आज का न्यू मीडिया समाज के क्रियाकलापों व संचार के लिए एक बेहतरीन माध्यम बन गया है। आज बड़ी-बड़ी अनेक संस्थाएँ और स्थानीय संस्थाएँ भी इस मीडिया का बहुत आसानी से उपयोग कर रही हैं। मसलन सामान्य लोगों द्वारा भी यूट्यूब, फेसबुक और अन्य सोशल मीडिया नेटवर्कों का उपयोग बहुत आसानी से किया जा रहा है। राजनीतिक दल भी इस तरह के प्लेटफॉर्म का बहुत ही आसानी से अपने हित में प्रयोग कर रहे हैं। यह अन्य मीडिया की बजाय बहुत ही सस्ता पड़ता है तथा इसकी सक्रियता और तीव्रता की वजह से परिणाम बहुत जल्द और सटीक मिलते हैं। कई प्रकार के राजनीतिक और आर्थिक सर्वे भी इस माध्यम से बहुत ही आसानी से किए जाते हैं और इन मामलों में इस माध्यम को लगातार तवज्जो दी जा रही है।

न्यू मीडिया और चुनौतियाँ

इस डिजिटल युग में आज स्मार्टफोन के चलते हर कोई अपने आप को पत्रकार समझता है। लोकतंत्र में मीडिया को जितनी स्वतंत्रता होती है उतनी ही जवाबदेही भी होती है। ऐसे में न्यू मीडिया का चलन कई अवसरों के साथ नई चुनौतियाँ भी लेकर आया है। इसने एक ओर संचार को नई दिशा उपलब्ध करवाई है वहीं दूसरी ओर अपराध और साइबर क्राइम को भी बढ़ावा दिया है। पत्रकारिता को विकसित रूप और आमजन तक पहुँच बनाने के साथ ही झूठी खबरों और अनावश्यक सामग्री प्रकाशित, प्रसारित करने का काम भी किया है। पत्रकारिता में सत्यापन पहला आधार होता है जिसके लिए पाठक या दर्शक मीडिया पर भरोसा करता है परंतु, जिस प्रकार न्यू मीडिया का विकास होता गया उसके साथ ही झूठी खबरें और अफवाहों के संदेश

तेजी से वायरल, होने लगे। अनेक बार बिना सत्यापन के बहुत सारी खबरें मीडिया में फैल जाती हैं या वायरल हो जाती हैं तब उसके परिणाम बहुत घातक होते हैं। आज मीडिया में काम कर रहे लोगों को इस नए टेक्निकल मीडिया में बहुत परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। मीडिया संस्थानों में काम करने वाले पेशेवर लोगों को अपनी नौकरी सुरक्षित रहने की चिंता हमेशा बनी रहती है, कि पता नहीं कब उनको बाहर का रास्ता दिखा दिया जाए। मीडिया संस्थानों में संपादकों की भूमिका भी कम होने लगी है। टेक्नोलॉजी और मार्केटिंग विभाग का संपादकीय विभाग पर लगातार दबाव बना रहता है। संपादकों की ओर से पत्रकारों को अब विज्ञापन लाने के लिए भी कहा जाने लगा है। एक तो पत्रकारों को कम वेतन दिया जा रहा है तो दूसरी तरफ न्यू मीडिया का लगातार चलन पेशेवर पत्रकारों के लिए चिंता का विषय साबित हो रहा है। इसके साथ ही छोटे-छोटे मीडिया संस्थानों को इस टेक्नोलॉजी के दौर में बड़े संस्थानों की शरण में जाने को मजबूर होना पड़ा है। नौकरी की चिंता के साथ ही पत्रकारों को रिपोर्टिंग के दौरान अपने क्षेत्र में भी कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है। कई बार पत्रकारों पर जानलेवा हमले होते रहते हैं। नौकरी और काम के साथ ही उन्हें कई तरह से मानसिक और शारीरिक पीड़ाएँ झेलनी पड़ती हैं। कई बार तो नौकरी बचाने के चक्कर में पक्षपात और झूठी खबरों के साथ भी समझौता करना पड़ता है। इन बढ़ते तनावों के कारण पत्रकारों की औसत आयु कम होने लगी है और मीडिया की साख भी लगातार गिरती जा रही है। यह मीडिया निष्पक्षता और विश्वसनीयता जैसे मुख्य तत्व खोने लगा है। न्यू मीडिया की सबसे मुख्य कमी यह है कि इससे लोगों को

लत लगने लगी है। लोग इंटरनेट की दुनिया में खोए रहते हैं। बच्चे और किशोर परिवार से दूर हो रहे हैं और इस नए माध्यम में कई अवैध और हानिकारक सामग्री देखने, पढ़ने की ओर रुख कर लेते हैं। इसके अलावा इस मीडिया से जुड़े ऐसे बहुत सारे नुकसान हैं जो सीधे कानूनी दायरे में आते हैं जैसे हैकिंग, फर्जीवाड़ा, वित्तीय घपला, साइबर सेक्स, साइबर पोर्न, अवांछित शब्दावली, अश्लीलता और किसी की गरिमा का हनन, यह मुद्दे इस मीडिया को एक नाजुक जगह बनाते हैं। यहाँ कोई गेटकीपर की व्यवस्था नहीं है, यहाँ फालतू के सूचना, संदेशों की भरमार हो जाती है और यह अफवाह सामग्री का कचरा लगातार बढ़ रहा है। यहाँ लोगों की गुप्त सूचनाओं को निकालकर उनके साथ खिलवाड़ किया जाता है। न्यू मीडिया की सबसे बड़ी चुनौती है एक ऐसी अर्थ पूर्ण भाषा का विकास जो गहरे और टिकाऊ संचारपरक या अभिव्यक्तिपरक स्त्रों को जन्म दे सके। न्यू मीडिया को थकान, अनिद्रा, अनिच्छा, भटकाव, चिड़चिड़ापन, रक्तचाप और डायबिटीज की बढ़ती समस्याओं के पीछे एक महत्वपूर्ण वजह भी माना गया है।

निष्कर्ष

न्यू मीडिया ने सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक अंतरराष्ट्रीय मुद्दों आदि को नई दिशा प्रदान की है। आज देश का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो कि न्यू मीडिया के प्रभाव से अछूता हो। यह सुविधा भी है और दुविधा भी। समय के

साथ कदम ताल मिलाते हुए न्यू मीडिया की परिभाषा और रूप दोनों बदलते जा रहे हैं। जो आज नया है भविष्य में वह नया न रह जाए इससे इनकार नहीं किया जा सकता। भविष्य में इस न्यू मीडिया को नए नाम के साथ भी स्वीकारा जाएगा और इस न्यू मीडिया की अनेक शाखाओं की कल्पनाएँ अभी से होने लगी है। न्यू मीडिया वर्तमान युग की जरूरत और आवश्यकता है आज हर बड़े संस्थान और खास तौर पर मीडिया संस्थान में डिजिटल होने की होड़ सी लगी हुई है। क्योंकि यह संस्थान इस बात से परिचित हो चुके हैं कि वर्तमान युग में अगर टिके रहना है तो इस ओर जल्दी रुख करना होगा और यही सब आज देखने को मिल रहा है। आज लगभग सभी अखबार और चैनल डिजिटल होने लगे हैं। भारत को विकास और नवाचार के अगले चरण को विकसित करने के लिए केवल युवा प्रतिभाओं में वृद्धि पर आधारित योजनाओं पर विचार करना चाहिए, बल्कि देश दुनिया की श्रेष्ठ प्रतिभाओं को आकर्षित करने की दिशा में भी काम करना चाहिए। इसके लिए कौशल विकास को बढ़ावा देने वाली संस्कृति को अपनाने की भी आवश्यकता है। एक सुदृढ़ डिजिटल माहौल का निर्माण हमें भविष्य के लिए तैयार रहने और डिजिटल भविष्य के अवसरों का लाभ उठा सकने में सक्षम करेगा। न्यू मीडिया में कितना बदलाव और नयापन होगा यह कहना अभी कल्पना से परे होगा लेकिन, इसकी वास्तविकता तो समय ही बता पाएगा।

संपर्क : : C-123 , Residential Colony, RIICO Area Kukas, Delhi Road Jaipur, (Raj.)

Pin-302028, Mobile : 9414222436, Email : kumarashokam@gmail.com

क्षेत्रीय सिनेमा की उलझनों को सुलझाती 'ग्रुप-डी सीजन 2'

तेजस पुनिया

'स्टेज एप्प' हरियाणा का अपना ओटीटी प्लेटफॉर्म जो अपने क्षेत्र की कहानियाँ कहता है अपने ही अंदाज में, अपनी ही भाषा में। यानी हरियाणवी बोली में। बोली के लिहाज से यह लठ मार बोली भले ही कही जाती हो लेकिन 'स्टेज एप्प' लगातार अपने प्रांत के किस्सों को फिल्मी रूप में बताकर, दिखाकर क्षेत्रीय सिनेमा को जरूर ऊपर ले जाने की कोशिश में लगा हुआ है। हालाँकि अपने बेहद ज्यादा प्रचार-प्रसार पर जोर देने के कारण यह कंटेंट को टेक्निकल स्तर पर उतना ऊपर ले जाकर पेश नहीं कर पाया है अभी तक।

फिर इस बीच 'ग्रुप डी' वेब सीरीज का पहला सीजन हो या ताजातरीन इसका दूसरा सीजन या फिर 'प्रेम नगर'। इस ओटीटी प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध ओरिजनल कंटेंट के नाम पर ये दो ही टेक्निकली बेहतर नजर आते हैं।

'ग्रुप डी' के पहले सीजन में हमने देखा कि हरियाणा प्रांत के एक गाँव में महेश नाम का लड़का है जो एक ऐसी भीड़ का हिस्सा बना हुआ है जिसके जीवन का अंतिम ध्येय केवल सरकारी नौकरी पाना है। शहर जाकर वह तैयारी भी करता है। लेकिन जब कहीं सफलता हाथ नहीं लगती तो मन मारकर 'ग्रुप-डी' की भर्ती परीक्षा देता है और सफलता भी हासिल करता है। अब उसकी 'ग्रुप डी' के मुताबिक चपरासी की नौकरी लगी। अब यहाँ भी कई उलझनें वह सुलझाता रहता है।

पहले सीजन को देखते हुए आगे क्या होने वाला है उसके बारे में बीच-बीच में आपको संकेत भी मिलते रहते हैं, उन्हीं संकेतों के आधार पर जब पहला सीजन खत्म होता है तो इसके दूसरे सीजन का इंतजार भी बराबर बना रहता है। 'स्टेज एप्प' की इस दूसरी सीरीज में अब महेश नाम का यह लड़का ग्रुप-डी में ही रहते हुए ही ग्राम सचिव की परीक्षा में बैठता है। वह न केवल बैठता है इस परीक्षा में बल्कि, सफलता भी उसके हाथ लगती है और इस बीच जो उसकी प्रेम कहानी चल पड़ी थी पहले सीजन में उसे देखने के बाद दर्शकों को लगता है कि इस दूसरे सीजन में सब अच्छा होगा और हमेशा की तरह हैप्पी इंडिंग।

लेकिन, थोड़ा रूको, ठहरो, जल्दी क्या है? अभी तो नायक की जिंदगी के कई इम्तिहानों की बारी आनी बाकी है। ग्राम सचिव की परीक्षा लीक होने के बाद क्या वह अफसर बनने के अपने सपने को पूरा कर सकेगा? क्या वह अपना यह मुकाम हासिल करके ही अपनी प्रेमिका पारो से शादी करेगा? या कुछ और ही तरफ ऊँट बैठेगा करवट लेकर? या ग्राम सचिव का ख्याल दिल से निकाल कर वह इससे भी आगे के सपने देखेगा या वहीं अपने अरमानों का

दम घोट कर कत्ल कर देगा?

ऐसे कई सवाल के जवाब यह प्यारी-सी वेब सीरीज देते हुए नजर आती है, बड़ी ही खूबसूरती के साथ। पहली बार 'स्टेज एप्प' के किसी कंटेंट को देखने के बाद उम्मीद जगती है कि ऐसा काम वे करते रहें जिसमें टेक्नोलॉजी, कंटेंट, कलाकार, कास्टिंग, डायरेक्शन, कहानी, बैकग्राउण्ड स्कोर, सिनेमेटोग्राफी जैसी तमाम बातें खूबसूरत तरीके से देखने को मिलेंगी। 'स्टेज एप्प' पर पहले रिलीज हुई कुछ वेब सीरीज के रिव्यूज में मैंने यह बात कही थी कि यदि यह ओटीटी प्लेटफॉर्म सचमुच कुछ क्षेत्रीय सिनेमा के नाम पर करना चाहता है तो इसे निर्देशकों को संसाधन अच्छे से उपलब्ध करवाने ही होंगे।

वरना खूब करीने से सजाकर भले ही इंस्टाग्राम पर रील्स पेश करे 'स्टेज एप्प' या अपने मात्र ट्रेलर में वह दमखम दिखाकर अपने ग्राहक बटोरना चाहे तो बटोर लें। लेकिन, एक समय बाद इसे उसका खामियाजा भुगतना पड़ जाएगा। महसूस होता है 'स्टेज एप्प' इस बात को गम्भीरता से ले रहा है।

खैर 'ग्रुप-डी' के दूसरे सीजन में फिर से पहले सीजन के लीड रहे, थियेटर के मंझे हुए कलाकार 'सुमित धनखड़' का काम देखकर हमेशा आपके मुँह से तारीफें ही निकलती हैं। यह लड़का अपनी अभिनय क्षमता के दम पर वह कर दिखाने की कुव्वत रखता है। जो इसे कभी किसी बड़े निर्देशक की नजर पड़ जाने के बाद एक्टिंग की दुनिया में एक आला मुकाम दिला सकती है।

'निशा शर्मा' भी अपना भरपूर सहयोग देती हैं। वहीं 'जोगिंदर कुंडू', 'सरोज जांगड़ा',

जे डी बल्लू', 'हरिओम कौशिक', 'दीपक शर्मा', 'मधु मलिक', 'तेजी सिंह' आदि सभी मिलकर सीरीज को दर्शनीय बनाए रखते हैं अपने अभिनय से। विशेष तौर से बात की जाए तो 'जे डी बल्लू' स्थानीय सिनेमा वालों के लिए एक चर्चित नाम बन चुके हैं। वहीं 'तेजी सिंह' के चेहरे की मासूमियत इस बार उनकी मजबूती बनकर सामने आई है। वहीं 'दीपक शर्मा' का काम भी आपको उनके पात्र के मुताबिक सटीक बैठता नजर आता है। 'मधु मलिक' तथा 'सरोज जांगड़ा' ने भी सीरीज में भरपूर दमखम दिखाया है।

डायरेक्टर ऑफ फोटोग्राफी का काम 'शुभ संधू' के हिस्से जो आर्य उन्होंने उसे इस कदर शिद्धत से निभाने की कोशिश की है कि छिटपुट जगहों को छोड़ यह सीरीज प्यारी बन पड़ी है। एडिटर 'ज्ञानेश' की एडिटिंग और साउंड सिस्टम में 'नीरज रोहिल्ला' बैकग्राउंड स्कोर के मामले में 'दीपन दास' का काम भी उम्दा के आस-पास ठहरता है।

इस सीजन और सीरीज के लिए स्क्रीनप्ले तथा डायलॉग्स लिखने वाले 'राजेश भादू' जो 'इंफिनिटी क्रिएटर्स' के साथ जुड़कर इसे लेकर आए हैं उसके लिए इस सीरीज ने स्टेज एप्प की सब्सक्रिप्शन को बढ़ाने में उनकी उलझनों को सुलझाने का काम किया है। उसके चलते इसे एक बार अवश्य देखा जा सकता है। लेकिन, 'स्टेज एप्प' वाले इस मुगालते में न रहें कि एक-दो अच्छी वेब सीरीज बना देने से उनका ओटीटी चल पड़ेगा। बल्कि, यह उसी तरह से रेंगते हुए चलता रहेगा जिस तरह से अब तक की इसकी हालत रही है।

संपर्क : 177 गणगौर नगर, गली नंबर 3, नजदीक - आर एल जी गेस्ट हाउस, श्री गंगानगर-335001 (राजस्थान), मो. : 9166373652, ईमेल- tejaspooniam@gmail.com

कविता समाज को बदलने का एक औजार है : जितेंद्र श्रीवास्तव

प्रदीप कुमार

1. प्रदीप कुमार - क्या आपको लगता है कि प्रतिबद्धता और विचारधारा को लेकर लिखी जाने वाली कविता को आज पहले की अपेक्षा अधिक महत्व मिल रहा है? अगर नहीं तो क्यों?

प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव - दो चीजें हैं प्रदीप जी एक तो यह कि प्रतिबद्धता के बिना तो कुछ हो नहीं सकता। कवि अनिवार्य रूप से प्रतिबद्ध होता है। उसकी प्रतिबद्धता वंचितों के प्रति होती है, समाज के शोषित वर्ग के प्रति होती है, प्रकृति के प्रति होती है, पर्यावरण के प्रति होती है और एक तरह से कह लें तो पूरे मनुष्य समाज के प्रति होती है। इस प्रतिबद्धता के बिना कोई कवि नहीं हो सकता। अतः प्रतिबद्धता तो अनिवार्य रूप से थी। जहाँ तक विचारधारा का मामला है तो मैं एक चीज मानता हूँ कि कोई किसी भी विचारधारा का रहते हुए बड़ा कवि हो सकता है। बशर्ते, उसकी यह प्रतिबद्धता जिसका अभी मैंने संकेत किया; विश्वास हो उसका इस प्रतिबद्धता में। मतलब मनुष्य में विश्वास हो, आपके हित में विश्वास हो, वंचितों में विश्वास हो, शोषितों के हित में विश्वास हो, प्रकृति, पर्यावरण और मनुष्यता में विश्वास हो। कहने का मतलब है कि कवि किसी भी विचारधारा से जुड़ा हो; वह अच्छी कविता लिखेगा। आपको मैं एक उदाहरण बताता हूँ। बालजाक फ्रांस के एक बड़े लेखक थे। वे फ्रांस की राजशाही के समर्थक थे। लेकिन, जब उन्होंने उपन्यास लिखा तो उन्होंने किसानों के पक्ष में लिखा और राजशाही के विरुद्ध लिखा। यानी लेखक यदि ईमानदार है तो वह अपनी रचना में बेईमानी नहीं कर सकता और जो रचना में बेईमानी कर रहा है; वह लेखक कैसे हो सकता है? वह तो एक तरह का मुंशी हुआ, वह तो एक तरह का कारीगर हुआ। चूँकि, उसको कला आती है तो उसने इस कला के जरिये कुछ शब्द फिट कर दिए। लेखक तो वही है जो ईमानदार है और सत्य कहता है। यह भी जरूरी नहीं कि हर समय कोई खास विचारधारा में बंधकर ही कवि लिखता है। कबीर के समय कोई विचारधारा नहीं थी लेकिन, मनुष्यता में उनकी प्रतिबद्धता थी। इसलिए कबीर बड़े कवि हुए, तुलसी बड़े कवि हुए। अपनी तमाम तरह की बहसों के बीच। मीरा बड़ी कवियित्री हुईं, रैदास बड़े कवि हुए। उनके समय कोई विचारधारा नहीं थी। इसलिए विचारधारा आपके साथ है और यदि वह मनुष्यधर्मी विचारधारा है तो अच्छी बात है। कवि स्वभाव से प्रगतिशील होता है। अगर वह प्रगतिशील नहीं है तो कवि नहीं है। अगर वह प्रगति और उत्थान के बारे में सोच नहीं सकता तो वह कवि नहीं हो

सकता। इसलिए मुझे लगता है कि अच्छी कविताएँ आज भी महत्व पा रही हैं। कविता को समझने वाली जनता समझदार होती है। वह जल्दी किसी भ्रम का शिकार नहीं होती। कविता अपनी जगह स्वतः बना लेती है। अचानक कोई कविता निकलकर आती है और वह चर्चित हो जाती है। यहाँ तक कि कई बार लोग उस कवि को जानते-पहचानते तक नहीं। बच्चा लाल 'उन्मेष' की एक कविता 'कौन जात हो भाई' आई और चर्चित हो गई। कविता में हमारे समय का यथार्थ है, कवि में कहने का शऊर है इसलिए, कविता को लोगों ने पसंद किया। अंततः मेरा यही मानना है कि प्रतिबद्धता मनुष्य के प्रति होनी चाहिए, मनुष्यता के प्रति होनी चाहिए। किसी भी तरह की वंचना हो किसी भी प्रकार का शोषण हो; उसके विरुद्ध होनी चाहिए। कोई फिर कविता को किसी भी विचारधारा से जोड़ ले उससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

2. प्रदीप कुमार- समकालीन हिंदी कविता में विचार युक्त राजनीति और आर्थिक असमानता से उपजे विषयों पर बहुत कुछ और लिखा जा रहा है। लेकिन, सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि पर आधारित अस्मितावादी लेखन की तथाकथित मुख्यधारा के साहित्य में ठोस उपस्थिति नजर नहीं आती। आपके अनुसार इसके पीछे क्या कारण है?

प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव - यह एक महत्वपूर्ण सवाल है। मैंने बराबर इस विषय पर बातचीत करने की कोशिश की है। एक समय ओमप्रकाश वाल्मीकि पर लिखते हुए भी मैंने कहा था कि मेरे लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि को आप हिंदी के दलित लेखन में कहीं फिट कीजिए। मेरे लिए यह महत्वपूर्ण है कि समूचा

हिंदी का जो लेखन है उसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि की क्या अवस्थिति बनती है? उसको रेखांकित किया जाए। यह एक बड़ा सवाल है क्योंकि, टुकड़े-टुकड़े में पढ़ेंगे तो वह टुकड़े में ही रह जाएगा। दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य, स्त्री साहित्य को इसी तरह से देखा जा रहा है। हिंदी का तो समूचा ही लेखन है। होना तो यह चाहिए कि अगर हिंदी के पच्चीस साहित्यकारों की बात हो रही हो तो उसमें स्त्री, दलित, आदिवासी साहित्य के रचनाकारों का नाम भी आना चाहिए। क्योंकि वे अच्छा लिख रहे हैं। केवल इसलिए कि एक अलग खाना बना दिया गया है ताकि वहीं उनका नाम आए या न आए; यह सही नहीं है। मैं सदा से ही इसका विरोधी रहा हूँ। सबको महत्व दिया जाना चाहिए। उनका हस्तक्षेप तो भाषा में है, हमारे साहित्य में है। धीरे-धीरे प्रदीप, जी यही स्थिति बन रही है। अब तो उसका एक अलग खाना बन ही गया है। किंतु, तथाकथित 'मुख्यधारा' के साथ इसकी आवाजाही शुरू हो गई है। लोग इसपर बात कर रहे हैं। आज देख सकते हैं कि 'मुख्यधारा' की पत्रिकाएँ भी इन्हें प्रकाशित कर रही हैं। अब ऐसा नहीं है कि केवल स्त्री/दलित आदिवासी साहित्य पर केंद्रित पत्रिकाएँ ही उन्हें छाप रही हैं। नए विमर्शों को भी जगह मिल रही है। पिछड़ा विमर्श पर भी इधर बात हो रही है जिसे फॉरवर्ड प्रेस छापता रहा है। अब एक अलग ही धारा के रूप में यह मुख्यधारा को टक्कर दे रही है। जरूरत इस बात की है कि हर लेखक को पूरे हिंदी के लेखन के बीच रखकर उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए। अब ट्रेंड बदल रहा है। कोई कवि कहीं से भी आ रहा हो अंततः वह हिंदी का कवि है। मुख्यधारा कोई विशेष धारा थोड़े ही है। कोई

किसी से भी प्रभावित होकर लिख सकता है। मैंने पहले ही कहा कि अगर उसका लेखन वंचना और शोषण के खिलाफ है तो वह प्रतिबद्ध रचनाकार है। समय बदल रहा है। अब अस्मितावादी लेखन को भी लोग मुख्यधारा के अंतर्गत गंभीरता से देखने और स्वीकार करने लगे हैं। अब 'हंस' पत्रिका को ही देखिए। एक समय स्त्री और दलित आदि को लेकर उसके विशेषांक प्रकाशित हुए। वह भी तो मुख्यधारा की ही पत्रिका थी। यदि मुख्यधारा के रचनाकार प्रायः उसमें छपते थे तो बाकी लेखक भी उसमें छपते ही थे। यदि आज 'वागर्थ' पत्रिका में तथाकथित मुख्यधारा के लेखक छप रहे हैं तो उसके साथ दूसरी धाराओं के लेखक भी तो छप रहे ही हैं; अस्मितावादी लेखन को तो महत्व मिलना ही चाहिए क्योंकि, वह हमारे समाज की सचाई है। हम जितनी जल्दी इसे स्वीकार करेंगे सामंजस्य की स्थितियाँ उतनी जल्दी बनेंगी और बेहतर बनेंगी।

3. प्रदीप कुमार - 'माटी' पत्रिका के एक अंक में मदन कश्यप कहते हैं कि - 'हम' एक ऐसे समय में रच और बस रहे हैं, जब एक बयान देना भी मुश्किल और जोखिम भरा काम हो गया है, चाहे वह बयान कविता के बारे में ही क्यों न हो। क्या आपको लगता है कि कविता के लिए यह समय मुश्किलों से भरा है? और क्या आज कविकर्म कठिन होता जा रहा है?

प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव-देखिए, यही बात आचार्य शुक्ल ने कहा था कि ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता जाएगा त्यों-त्यों कविकर्म कठिन होता जाएगा। यह बात सही भी है। यही चिंतक की दूरदृष्टि होती है। कविकर्म कभी भी सहज नहीं था। इसमें दो बातें हैं। एक कवि कर्म यह है कि आप केवल प्रेम की कविता लिख रहे हैं और

दैहिक वर्णन तक सीमित हैं। यहाँ कोई खतरा नहीं है। किंतु प्रेम में भी आप यदि मुक्ति की कविता लिख रहे हैं तो उसमें खतरा है। प्रकृति की कविता में यदि आप केवल पेड़-पौधे की बात कर रहे हैं तो को कोई खतरा नहीं है। किंतु, यदि आप प्रकृति के माध्यम से मुक्ति की बात कर रहे हैं तो खतरा है। वही वास्तविक कविता है। यदि पंत की कविता-“प्रथम रश्मि का आना रंगिणी, तूने कैसे पहचाना..” को देखें तो यह मुक्ति की कविता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हर कालखंड में पहरें रहे हैं और रहेंगे क्योंकि साहित्य अंततः मुक्ति की बात करता है और सत्ताएँ अपने तमाम काम के बावजूद, अपनी प्रगतिशीलता के बावजूद, अपने जनधर्मी कार्यक्रमों के बावजूद मुक्ति का वह स्वरूप नहीं स्वीकार कर पाती जो साहित्य देता है या कविता देती है। जैसे टैगोर कहते हैं न कि 'कहीं कोई भय न हो' (ह्वेयर द माइंड इज विदाउट फियर) कविता भी ठीक वैसे ही मनुष्य तैयार करती है जहाँ कोई भय न हो। कोई भी समय नहीं चाहेगा कि निर्मम लोग रहें। इन सबके बावजूद कवि तो अपनी बात कहेगा ही। गोस्वामी जी को देखिए, उन्होंने स्त्रियों की पराधीनता को लेकर जो कहा है (कत बिधि सृजी नारि जग माही। पराधीन सपनेहुँ सुख नाही?) उसपर आप हजार पृष्ठ की किताब लिख दीजिए फिर भी वह बात नहीं आती, जिस तरह से यह बात चुभती है। कवि तो कहता ही है, हर युग में कहता है, हर कालखंड में कहता रहा है। यदि कवि कहता नहीं है तो वह कवि नहीं है। कवि के कहे को सत्ताएँ अपनी आलोचना मान लेती हैं। जबकि, कवि के कहे को आईना मानना चाहिए। इस आईने को देखकर कोई अपने में सुधार कर सकता है। कवि के कहे को लक्ष्य कर उसकी

उपेक्षा करना और उसे दंडित करने की सोचना गलत है। देखना चाहिए कि कवि जिस ओर इशारा कर रहा है शायद उस ओर कोई कमी होगी। उसे दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए। किंतु, कोई कवि यदि एकदम अतिवादी है और अपने देश और समाज की भावभूमि के उलट कुछ कह रहा है तो वह बात किसी को भी स्वीकार्य नहीं होगी। भारत की अपनी पृष्ठभूमि है, उसकी अपनी संस्कृति है। उसमें कुछ कमियाँ रही हैं जिसे दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। हमारी संस्कृति के भीतर सकारात्मक चीजें भी रही हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा हमारी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। हम भाईचारे में यकीन करने वाले लोग हैं। हमने कभी विभाजन में यकीन नहीं किया। यह कैसे और क्यों हो गया कि हमारा समाज इतने भागों में बँट गया? धीरे-धीरे इसी को दूर करने की जरूरत है। एक वास्तविक समता जैसा कि गांधी, अंबेडकर और बड़े महापुरुषों ने चाहा था वैसा समाज बनाने के अनुकूल बातें आईं तो उसको स्वीकारा जा सकता है। कविता का काम मनोरंजन तो नहीं है जो आपको सुला दे। उसका काम तो चेतना को जागृत करना और तीक्ष्ण बनाना है। सिनेमा के भी वही गीत अर्थपूर्ण हैं जो समाज को जगाने लायक हैं। जैसे गीत की यह पंक्ति देखिए- 'पंछी बन्न उड़ती फिरुँ मस्त गगन में आज मैं आज़ाद हूँ दुनिया के चमन में....।' यह स्त्री चेतना की कविता है। अंग्रेजों के दौर में जब 'हर जोर जुल्म के टक्कर में संघर्ष हमारा नारा है' जैसी कविताएँ लिखी गईं तो ऐसी कविताओं ने व्यक्ति की चेतना को जगाने का ही काम किया था। बहुत सुरक्षित दिमाग से चलने वाला व्यक्ति इस तरह की कविता

क्यों लिखेगा? इसके खतरे हैं। इस तरह की चीजें बनी रहती हैं और कवि लिखता रहता है।

4. प्रदीप कुमार - तकनीक, अर्थशास्त्र, राजनीति तथा अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप जिस तरह का बदलाव घटित हो रहा है। उसका साहित्य के सृजन के साथ कैसा संबंध बन रहा है?

प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव - वही जो पिछला प्रश्न आप कर रहे थे। लगभग वही उत्तर है। जैसे-जैसे मनुष्य के बीच की दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं वैसे-वैसे व्यक्ति स्वकेंद्रित होता जा रहा है। अपना सुख, अपनी दुनिया, अपने बच्चे सब कुछ अपने लिए चाहिए। निश्चित रूप से ऐसे समय में एक कवि के लिए सामूहिक चेतना की कविता लिखना ही अपने आप में एक घटना है। अगर आप चाहते हैं कि एक सामूहिक चेतना बने, आपस की दूरियाँ मिटें; तो ऐसे में कवि-कर्म तो कठिन हुआ ही है। जैसे तुलसीदास, कबीर, रैदास का समय आसान नहीं था। आज़ादी के समय जो लिख रहे थे उनका समय भी आसान नहीं था। बावजूद इसके कि हम लोकतंत्र में हैं, समाज में बहुत उठा पटक है। वैश्विक स्तर पर बहुत उठा पटक है। अभी देखिए रूस ने यूक्रेन पर आक्रमण कर रखा है। ठीक है कि हमारा सीधे-सीधे उससे लेना-देना नहीं है। लेकिन, जब मनुष्य वहाँ मारे जा रहे हैं तो मनुष्यता तो खंडित हो ही रही है न। एक कवि जब मनुष्यता के लिए कविता लिखता है तो केवल अपने गाँव के लिए नहीं लिखता है। वह पूरी दुनिया के लिए लिखता है। टैगोर लिख रहे हों या केदारनाथ सिंह लिख रहे हो, या चाहे कोई भी कवि लिख रहा हो, वह उससे अप्रभावित नहीं रह सकता। खून का छीटा कहीं भी अगर गिर रहा हो तो कवि की आत्मा

पर तो पड़ता ही है। वह फ्रेंच में लिख रहा है अथवा रूसी में लिख रहा है या किसी और भाषा में लिख रहा है; यह महत्वपूर्ण नहीं है। तो मुश्किलें कई तरह की हैं। दूसरी चीज यह भी है कि आर्थिक असमानता तो और बढ़ती ही जा रही है। ऐसे में सिर्फ आलंकारिकता से काम नहीं चलने वाला और न ही सिर्फ नारों से काम चलने वाला है। वास्तविक मुद्दों को टटोलना होगा तभी कविता बनेगी और वह कविता काम की होगी। आप इधर देखिए दलित कविता में भी बदलाव घटित हो रहा है। नब्बे के आसपास जिस तरह की कविताएँ लिखी जा रही थीं उसमें भी बदलाव आया है। नए कवियों में भी बदलाव आया है। इसलिए, समय को पहचानना ही पड़ता है और आवाज भी उठानी ही पड़ती है। समय का स्पष्ट दबाव कविता पर पड़ता ही है। भूमंडलीकरण के कारण जो बदलाव आया उसको भी कविता ने अपने छंदों में कैद किया ही है। कहने का मतलब यह है कि पहले से अभी के समय और समाज में बहुत तरह के बदलाव घटित हुए हैं और कविता ने उसे पहचाना भी है।

5. प्रदीप कुमार - राजेश जोशी अपने एक साक्षात्कार ('कविता बिहान' पत्रिका में) में कहते हैं कि समकालीनता - 'फ्लैक्सिबल' शब्द बनकर रह गया है। लंबे अरसे से अब कविता के किसी पीरियड विशेष का नामकरण नहीं हो रहा है। क्या आप इस तरह के उद्यम को आवश्यक समझते हैं?

प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव - इस विषय पर मैंने कई जगह अपनी बात रखी है। सोशल मीडिया पर भी इससे संबंधित मेरे व्याख्यान उपलब्ध हैं। एक बार वाणी प्रकाशन ने इतिहास लेखन की योजना में व्याख्यान करवाया था उसमें भी है।

देखिए यह सही है कि हिंदी में 1960 से लेकर अब तक की कविता के लिए समकालीन कविता का पद चल रहा है। कुछ उत्साही लोग तो नई कविता को भी इसी में शामिल कर लेते हैं और आजादी के बाद की कविता को समूची ही समकालीन कविता मान लेते हैं। मोटे तौर पर जिसे साठोत्तरी कविता कहते हैं वह समकालीन कविता का मामला है। वैसे यह भी यह एक तरह की कविता नहीं है। उसमें नक्सलवाड़ी से प्रभावित कविता भी है, इसमें आपातकाल से प्रभावित कविता भी है, जो वैश्विक परिवर्तन होते रहे हैं उससे प्रभावित कविता भी है। इसके अलावा उसमें अस्सी के आसपास जो स्त्री विमर्श का उभार आया, उससे प्रभावित कविता भी है। नब्बे के बाद जो दलित विमर्श आया, उसकी कविता भी है। आदिवासी कविता भी है, जो पिछड़ा विमर्श आया है उसकी कविता भी है। कहने का मतलब यह है कि समकालीन कविता नाम का पद जरूर एक है लेकिन वह एकरस नहीं है और न ही एक ढंग की कविता है। उसमें विविधता है। नक्सलवाड़ी कविता के तुरंत बाद कविता का स्वर बदल गया। यहाँ से कई कवि निकले जो अस्सी के दशक के कवि कहलाए। स्वयं राजेश जोशी जिसके कवि हैं। अरुण कमल का नाम भी इसमें शामिल है। इन लोगों के यहाँ वह स्वर नहीं है जो नक्सलवादी कविता का है। आलोक धन्वा और वेणुगोपाल का जो स्वर है वह राजेश जोशी और अरुण कमल का नहीं है। राजेश जोशी और अरुण कमल का जो स्वर है वह कुमार अंबुज, अनामिका और गगन गिल का नहीं है। कुमार अंबुज, अनामिका और गगन गिल का भी स्वर एक सा नहीं है। कविता अपने

को बदलती रही है। एक स्वर जनवादी कविता का भी रहा है। नामकरण का जहाँ तक मामला है मुश्किल यह है कि नामकरण करें तो कैसे करें? इसलिए, सुविधा के लिए लोगों ने इसको दशकों में बाँट दिया। किंतु इसे भी पूर्ण स्वीकृति नहीं मिली। उसमें भी वही प्रवृत्ति देखने को मिलती है जो परवर्ती कविता में थी। एक ही दशक के अंदर बहुत सी प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। जाहिर है कि सबके स्वर अलग-अलग हैं। समकालीन शब्द एक जरूर है किंतु, उसमें अलग-अलग विचारधाराओं से प्रभावित कवि शामिल हैं। नामकरण में मुश्किल तो है किंतु, करना तो पड़ेगा ही। नामकरण में एक मुश्किल यह है कि जो गौण प्रवृत्तियाँ होती हैं वे खो सी जाती हैं। एक प्रवृत्ति को सामने कर देते हैं तो बाकी प्रवृत्तियाँ हाशिएँ पर चली जाती हैं, धीरे-धीरे हाशिएँ से भी हट जाती हैं और विस्मरण में चली जाती हैं।

6. प्रदीप कुमार - क्या आपको लगता है कि आज कविता को एक तरफ़ अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है और दूसरी तरफ भाषा, स्मृति, इतिहास और कल्पना को बचाने की जिम्मेदारी भी निभानी पड़ रही है। क्या वह अकेली प्रतिरोध की भूमिका और एक संभव वैकल्पिक यथार्थ का स्वप्न निर्मित करने में संलग्न दिखती है?

प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव - मेरा यह बराबर मानना है और बहुत बलपूर्वक मैं कहता रहा हूँ कि किसी को भी यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि कविता क्रांति करेगी। कविता क्रांति नहीं करती। जैसा मैंने पहले कहा कि कविता केवल चेतना का निर्माण करती है और कई बार किसी की चेतना निर्मित है तो उसे तीक्ष्ण बनाती है। यानि वह एक औज़ार का काम करती है। कविता

समाज को बदलने का एक औज़ार है। इससे न कम है और न इससे ज्यादा है। इसकी एक निश्चित भूमिका है। वह भूमिका वह निभा रही है। आज भी अच्छी कविताएँ लिखी जा रही हैं। यह सही है कि अच्छी कविता की पहुँच जरूर कम हुई है। चलताऊ किस्म की क्षणिक प्रभाव वाली कविताएँ भी लिखी जा रही हैं। किंतु वह अमृत की तरह नहीं है। कविता का अमृत अगर मिल जाए तो जीवनभर साथ निभाता है। कविता साथ नहीं छोड़ती। यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि अच्छी कविता की पहुँच बढ़े। यह कवियों की भी जिम्मेदारी है और जो लोग कविता से प्रेम करते हैं, सामाजिक परिवर्तन के आकांक्षी हैं, उनकी भी जिम्मेदारी है कि अच्छी कविताएँ लिखी जाएँ और उनका प्रचार-प्रसार भी हो। चाहे वह छंद में लिखी जा रही हों या मुक्त छंद में लिखी जा रही हो।

7. प्रदीप कुमार - आपकी कविताएँ लोक से गहरे जुड़ाव की कविताएँ हैं, जिसमें लोक संपृक्ति बहुत ही तीक्ष्ण है। क्या आपको लगता है कि अब यह लोक सिमटता जा रहा है? क्या शहरी दबावों से कविता के कहन-लिखन पर कोई असर पड़ा है?

प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव - देखिए प्रदीप जी लोक को मैं हमेशा श्रम से जोड़कर देखता हूँ। मेरे लिए लोक का मतलब गाँव नहीं है। अगर इसको एक सैद्धांतिकी दीजिएगा तो लोक का मतलब गाँव नहीं है। लोक का मतलब है श्रम करने वालों का - 'संसार'। श्रम करने वाला जो समुदाय है वह लोक निर्मित करता है। चाहे वह गाँव में हो या शहर में, श्रमिकों का भी तो लोक है जो शहर के किनारे दिखते हैं। ये कौन लोग हैं? वही लोग हैं जिन्हें हम गाँव में देखते हैं। तो मूल चीज यह है कि लोक की खोज करते समय

यह देखा जाना चाहिए कि श्रम है कि नहीं? लोक का मतलब केवल चिवियाँ, नदी, पहाड़ नहीं है। यह सब लोक का हिस्सा हैं किंतु, यह असल में अकेले-अकेले पूर्ण लोक नहीं है। लोक का सबसे महत्वपूर्ण फैक्टर है श्रम। जहाँ भी श्रम होता है वह मुझे आकर्षित करता है। इसलिए आप देखेंगे कि मैं केवल गाँव की कविता नहीं करता। मेरी कविता में वह सायास आता है क्योंकि, वह मेरे रक्त में समाया हुआ है। लेकिन, वह उनसे जुड़कर आता है जो लोग वहाँ छूट गए हैं, जो लोग वहाँ कष्ट सह रहे हैं, जो लोग वहीं रहना चाहते हैं मगर रह नहीं पा रहे हैं। वे सब मेरी कविता में आते हैं तो लोक बनकर आते हैं। असल बात यह कि कवि का कंसर्न क्या है? दबाव शहर का नहीं रोजगार का है। जीविका का दबाव है, जीवन का दबाव है। एक समय था कि रघुवीर सहाय स्कूल और केदारनाथ सिंह स्कूल की दो धाराएँ बन गई थीं। लोक चेतना और नागर चेतना को लेकर किए गए विभाजन को सही नहीं मानता। केदारनाथ स्वयं एक अच्छे राजनीतिक कवि हैं। राजनीतिक कविता वही नहीं होता जो नारा लिखता है। प्रकृति पर लिखते-लिखते वह कब कहाँ प्रवेश कर जाता है, कहना मुश्किल है। कवि के निहितार्थ को समझा जाना जरूरी है। केदारनाथ सिंह जी की भी कविताएँ राजनीतिक चेतना से युक्त हैं। मेरा मानना है कि बिना किसी राजनीतिक चेतना के कोई अच्छा कवि हो ही नहीं सकता। राजनीतिक चेतना के बगैर अपने समाज और समय को पहचानना मुश्किल है। किसी राजनीतिक व्यक्ति का नाम लेकर लिखने मात्र से ही कविता राजनीतिक होगी यह जरूरी नहीं है। यह जरूर है कि जो शहर में रह रहा है वह शहरी यथार्थ को बेहतर

तरीके से जानता है और उसके बारे में लिख सकता है। यही कारण है कि गिरमिटिया प्रवासियों के लेखन को ही मैं असली प्रवासी लेखन मानता हूँ। मेरा मानना है कि जो अच्छी रोजी-रोटी और अच्छी सुविधा की तलाश में देश से बाहर जाकर बस गए और वहाँ जाकर जब वे भारत के बारे में लिखते हैं तो अविश्वसनीय होता है। लेकिन, अगर वे अमेरिका, इंग्लैंड या जहाँ वे बसे हैं, वहाँ की कहानी-कविता लिख रहे होते हैं तो ज्यादा विश्वसनीय होते हैं। कहने का मतलब जिसकी जिस समाज या परिवेश से गहरा जुड़ाव है, वह वहाँ के बारे में लिखता है तो प्रामाणिक होता है। कविता को विश्वसनीय होना चाहिए। चाहे वह शहर के बारे में लिखी जाए या गाँव के बारे में। यह सही है कि हिंदी कविता में किसानों की उपस्थिति, गाँव की उपस्थिति कम हुई है।

8. प्रदीप कुमार - बेटियों पर आपकी कई कविताएँ हैं।- 'सोनचिरई' कविता जो मुख्यतः एक सोहर पर आधारित है और जिसमें आपने स्त्री-शोषण के स्याह पक्ष को उजागर किया है। यदि इसका संदर्भ लें तो कृपया बताएँ समकालीन स्त्री-विमर्श को आप किस रूप में देखते हैं?

प्रो. जितेंद्र श्रीवास्तव - बेटियों पर मेरा एक पूरा संग्रह है। देखिए! स्त्री विमर्श तो बहुत जरूरी चीज है ही। हालाँकि, मैं मानता हूँ कि कोई भी विमर्श हमेशा नहीं रह सकता। यह हमेशा रहेगा इसका मतलब कि जिस उद्देश्य (समता, बराबरी) से ये विमर्श आया वह पूरा ही नहीं हुआ। एक समय के बाद तो इनको समाप्त हो जाना चाहिए और वह स्थिति आनी चाहिए जिसके लिए ये सारे विमर्श अस्तित्व में आए। यानी उनके सपनों का समाज बने। आज अगर

प्रेमचंद होते तो आज के समाज को देखकर दुखी होते। वह यह नहीं चाहते कि उनका साहित्य इस तरह प्रासंगिक रहे। वे यह तो चाहते कि उनके साहित्य का एक ऐतिहासिक महत्त्व रहे किंतु, उसकी अपेक्षा उनके सपनों का भारत होता तो ज्यादा प्रसन्न होते। तो कोई भी जो अस्मितावादी विमर्शों से जुड़ा रचनाकार है उसका भी यही सोचना होगा कि एक समय आया जब उसके लिखे का सिर्फ ऐतिहासिक महत्त्व रह जाए और समय-समाज बदल चुका हो। कोई यह न ढूँढ़े कि इसकी आज क्या प्रासंगिकता है? ये विमर्श जरूरी हैं क्योंकि समाज में कई दिक्कतें हैं, समाज में विभाजन है। उस विभाजन को दूर

करने के लिए ये जरूरी विमर्श हैं। मैंने जब - 'सोनचिरई' कविता लिखी तो मेरे जेहन में कोई विमर्श नहीं था। वही जो आरंभ में मैंने कहा कि कवि की प्रतिबद्धता समाज के प्रति होनी चाहिए और समाज में जो भी विसंगति है कवि को उनपर उंगली रखनी चाहिए।- 'सोनचिरई' कविता मैंने उसी विसंगति पर उंगली रखने के लिए लिखी थी। मूल रूप से यह कविता पुरुष नपुंसकता पर है जिसका सारा दोष स्त्रियों पर मढ़ दिया जाता है। इसके अलावा यह कविता सामाजिक मनोविज्ञान की भी बात करती है। अंततः चीजें प्रेम से ही बचेंगी, सामंजस्य से बचेंगी; यह कविता यह भी बताती है। मुझे लगता है सारे विमर्श प्रेम और सामंजस्य ही तलाशते हैं।

संपर्क : 9330561518 (प्रदीप कुमार)

email : jitendra82003@gmail.com (Jitendra Srivastava)

मुक्तांचल - 33 का लोकार्पण

15 अप्रैल, 2022 को **मुक्तांचल - 33** वें अंक के लोकार्पण के अवसर पर **हावड़ा विद्यार्थी मंच** के तत्वावधान में **साहित्यिक पत्रिका दशा और दिशा** विषय पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया, इस गोष्ठी में प्रो. अरुण होता, डॉ. पंकज साहा, डॉ. प्रकाश अग्रवाल, डॉ. शुभ्रा उपाध्याय, डॉ. विनय मिश्र, डॉ. मृत्युंजय पाण्डेय, श्री प्रकाश गुप्ता, सरिता खोवाला, विनीता लाल, नगीना लाल दास, परमजीत पण्डित लिली साह, इब्रार खान, दिव्या गुप्ता, दिलीप कुमार साव, अभिषेक पाण्डेय, बलराम साव आदि उपस्थित थे। सभी लोगों ने खुलकर अपने विचारों को रखा। शोध, समीक्षण एवं सृजन के प्रति नई पीढ़ी में रुझान तीव्र करने की चेष्टा ही **मुक्तांचल पत्रिका** का उद्देश्य है। यह समारोह प्राध्यापक, अध्यापक, संस्कृति कर्मी, लेखक एवं शोधार्थी तथा विद्यार्थियों का सुन्दर सम्मेलन था, मुक्त विचारों का आदान-प्रदान हुआ, समारोह के अन्त में विनोद यादव ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

विश्व के सर्वश्रेष्ठ कथाकार है संजीव : नरेश सक्सेना

हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार संजीव के पचहत्तरवें वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर पश्चिम बंगाल के आसनसोल से जिस संजीव अमृत महोत्सव की शुरुआत हुई उसका पाँचवा चरण लखनऊ के ऑल इंडिया कैफ़ी आज़मी अकेडमी में इंडिया इनसाइड राष्ट्रीय हिंदी पत्रिका एवं संजीव अमृत महोत्सव समिति के तत्वाधान में 15 मई को सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम में संजीव का सम्मान और उन पर 'हिंदी कथा साहित्य में संजीव की उपस्थिति' विषय पर विभिन्न विद्वानों, साहित्यकारों, संपादकों और संस्कृतकर्मियों ने वक्ता के तौर अपने विचार रखे।

कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ कवि-साहित्यकार नरेश सक्सेना ने किया तो मंच का संचालन युवा कवि-आलोचक ज्ञान प्रकाश चौबे ने किया। अतिथियों का स्वागत करते हुए इंडिया इनसाइड के संपादक अरुण सिंह ने बताया कि आज भी संजीव ययाति की तरह जीवन जीना चाहते हैं सिर्फ लिखने के लिए। लिखना ही जीवन जीने का पर्याय है उनके लिए। आगे उन्होंने सभागार में उपस्थित साहित्य प्रेमियों का आभार जताते हुए कहा कि ऐसे विपरीत मौसम में इतने सारे लोग यहाँ आए और विभिन्न क्षेत्रों से आए, केवल साहित्य से जुड़े हुए नहीं, साहित्य से इतर भी। मैं देख सकता हूँ - इतनी विविधता बहुत कम ही देखने को मिलती है। लखनऊ ही नहीं पश्चिम बंगाल और कानपुर तक से उनके चाहने वाले शोधार्थी आए हैं। ये कार्यक्रम की सफलता से ज्यादा संजीव की लोकप्रियता को दर्शाता है। वरिष्ठ कवि-कथाकार और सहयोग पत्रिका के प्रधान संपादक शिव कुमार यादव के धन्यवाद ज्ञापन के साथ कार्यक्रम की समाप्ति हुई।

प्रस्तुति : अमित कुमार साव।

कविता पर केंद्रित कार्यक्रम 'एक साँझ कविता की - 8' संपन्न

देश की प्रतिष्ठित साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था नीलांबर द्वारा - 'एक साँझ कविता की' आयोजन 12 जून रविवार की शाम हावड़ा के शरत सदन सभागार में किया गया।

नीलांबर सर्वदा ही हिंदी साहित्य में नवीन प्रयोग एवं आधुनिक तकनीक के समावेश से साहित्य को आम जन तक पहुँचाने के लिए प्रयासरत रहा है। इसके अंतर्गत कोलकाता एवं देश के विभिन्न हिस्सों में संस्था द्वारा कार्यक्रम आयोजित किए गए हैं। इसी कड़ी में यह आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता हिंदी के प्रतिष्ठित कवि देवी प्रसाद मिश्र ने की। आमंत्रित कवियों में सविता सिंह, पूनम विश्वकर्मा, वासम और नेहा नरुका शामिल थीं।

कार्यक्रम के आरंभ में नीलांबर के संरक्षक मृत्यंजय कुमार सिंह ने स्वागत वक्तव्य में कहा कि हम संवेदना के सेंसर वाले लोग खूब सीझते हैं दुःख में, विरह में, वेदना में, लेकिन सब कुछ फिर गाते हैं कविता में। कवियों से सुनते हैं उस आस की ध्वनि जिनके भाव हमारे पाथेय और संबल बनेंगे। संस्था के अध्यक्ष यतीश कुमार ने कहा कि हम सबके भीतर मनुष्यता की लौ जलाए रखने की जरूरत है। नीलांबर प्रतिबद्ध है यह लौ जलाए रखने के लिए। इस मुश्किल घड़ी में कविता से बढ़िया जवाब और क्या हो सकता है। कार्यक्रम की शुरुआत युवा गायिका ममता शर्मा द्वारा काव्य गीतों की प्रस्तुति के साथ हुई। नीलांबर की टीम द्वारा आमंत्रित कवियों की कविताओं पर आधारित कविता कोलाज की प्रस्तुति की गई। सुपरिचित नृत्यांगना रश्मि बंदोपाध्याय और टीम ने विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं पर आधारित नृत्य की प्रस्तुति की। संस्था के सचिव ऋतेश कुमार ने धन्यवाद ज्ञापन दिया।

प्रस्तुति : आनंद गुप्ता

इस पार तक

उमेश पंकज

(जन्म 1959)

कितना दूर है हमारा गाँव

ठहरे हुए समय में
उनके पाँव चल पड़े
कई सौ किलोमीटर चल चुके थे
कुछ सौ किलोमीटर बाकी था चलना
कितना दूर है हमारा गाँव



माथे पर मोटरी गठरी और
बीबी बच्चों के साथ भूख भी पीछे पीछे
बाबू भइया ने जब फोन पर बताया
कि खेतों में गेहूँ खूब झरे थे इस साल
घर में ले आया गया है बीनकर
रोटी की कोई कमी नहीं होगी
तो उसे लगा उसके पाँवों में
कोई रेल इंजन जुड़ गया है
वह पटरियों पर दौड़ने लगा है पहियों की तरह

चाँदनी बिखेरती मगर सन्नाटा बुनती
पूर्णिमा की दूधिया रात
सांय सांय बहती ठण्डी हवा में
सियारों की हुआं हुआं का भयावह शोर
पाँव आखिर पाँव ही तो!
क्यों नहीं थकते, क्यों नहीं लुढ़कते?
जाने कब थकान ने भूख को पटक दिया पटरियों पर
और घुस गई गहरी नींद में
सपने में वह अभी माँ के पाँव छू ही रहा था
कि गुजर गई एक मालगाड़ी दनदनाते हुए
बिखर गयी गठरी, बिखर गयी दुनिया उनकी
कटी गर्दन, कटे हाथ और कटे पाँव
रेल पटरियों पर उछड़ते हुए
पूछ रहे हैं अभी कितना दूर है हमारा गाँव।

जो मुट्ठी में है
2022

RNI NO. WBHIN/2014/70173

POSTAL REG. NO. WB/HWH-90/2018-2020

स्मृतिशेष



रामनिहाल गुंजन
(9 नवंबर 1936 - 19 अप्रैल 2022)

हावड़ा विद्यार्थी मंच (8/2L No. 8053 of 20/3-2014) 6/2/1, आशुतोष
मुखर्जी लेन, सलकिया, हावड़ा-711106 द्वारा प्रकाशित एवं गोपी कृष्ण पालुई,
शिक्षण द्वारा 50 सीताराम घोष स्ट्रीट, कोलकाता से मुद्रित

संपादक : डॉ. मोरा सिन्हा